ઓ૩મ્

શ્રી. વિક્રમસિંહ શૂરજીવલ્લભદાસ

સ્મારક ગ્રંથમાળા.

મહર્ષિ પતંજલિ કૃત

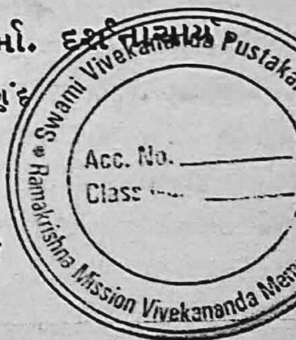
યોગદર્શન

ગુજરાતી ભાષ્ય

ભાષ્યકાર

પં. મયાશંકર શર્મા. દર્શનાચાર્ય

આણંદ





પ્રથમાવૃત્તિ : પ્રત ૧૦૦૦

૧૯૬૪

મુદ્રક : રમણભાઈ ભાઈલાલભાઈ પટેલ.
ગંગા મુદ્રણાલય વલ્લભ વિદ્યાનગર.
પ્રકાશક : શ્રી. પ્રતાપસિંહ શૂરજી વલ્લભદાસ
કચ્છ કેસલ મુંબઈ—૪

: प्राक्कथन :

प्रातः स्मरणीय मारा स्वर्गीय पूज्य पिताजी श्रीयुत शूरजी वल्लभदासे परमपिता प्रभुनी असीम कृपाथी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीनिर्दिष्ट स्वाध्यायने पोताना जीवनमां अग्र स्थान आपेलुं, जेना परिणाम स्वरूप वेदादि शास्त्रोनुं वाचन मनन आदि अमारा घरमां प्रतिदिननुं जीवनसाथे परोवाएलुं एक अंग बन्यूं छे। पूज्य पिताजीए अमने शास्त्रज्ञान आपी अमारामां पण स्वाध्याय प्रत्ये अभिरुचि केळवी सुसंस्कारोनुं सिंचन कर्युं छे। नानाविध साधु सन्यासीओ, पंडितो अने विद्वानोना समागममां आववानुं अने तेमना अमृतमय उपदेश श्रवण करवानो सुअवसर अमने वखतोवखत प्राप्त थतो रह्यो छे, अने ए रीते अमारा कुटुम्ब उपरान्त अनेक व्यक्तिओ पण ते रीते लाभान्वित थती रही छे। ए प्रभुकृपाना फलस्वरूप ज छे, तेम हूं मानूं छुं। जेथी आज पण धार्मिक वातावरण अने संस्कारोथी सिंचित अमे तेमज अमारा परिवारना बालको एक अनोखा वातावरणमां पालित पोषित बनीने अनेरा आनंदनो रसास्वाद मेळवी शकीए छीए।

मारा पूज्य पिताजीए अनेक सुयोग्य विद्वानो द्वारा चारे वेदोना सुलभ संस्करणो उपरान्त शास्त्रीयग्रंथो तैयार करावी जनता जनार्दननी सेवार्थे छपावी प्रसिद्ध कर्यां छे। अने विना मूल्ये वितरण पण कराव्यां छे, जेमां वैदिक सम्पत्ति, आदर्श

सुधारक दयानन्द, समस्त दर्शन ग्रन्थो, सत्यार्थ प्रकाश आदि मुख्य छे, जेनो सुन्दर लाभ लेवाई रह्यो छे, ते सन्तोषप्रद छे।

ऋषिनो आदेश छे के 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' ऋषि मुनीओए स्वाध्यायनो महिमा गायो छे। अने 'स्वाध्यायस्तपः' स्वाध्याय ने तपनुं स्वरूप मान्युं छे। ए स्वाध्याय एटले शुं ? स्वः = पोतानुं –आत्मानुं, अध्याय–अनुशीलन, चिन्तन, आत्मचिन्तन = पोतानी वात. ए आत्मचिन्तन अथवा स्वाध्यायनुं प्रयोजन शुं ?

वैदिक शास्त्रोना अनुशीलन द्वारा सत्यासत्यनो विवेक के जे मनुष्यमात्रने अन्ते परमात्मा प्रत्ये दोरी जवानुं साधन छे। एने आपणे ईश्वर प्राप्ति अथवा मोक्ष कहिए छीए। एज मुक्तिना नामे पण ओळखाय छे। मुक्ति ए सापेक्ष शब्द छे। तो ए मुक्ति शेनाथी ?

ज्ञानीओ कहे छे के शरीरना बन्धनथी आवागमनना चक्रावाथी मुक्त थवुं तेनुं नाम मुक्ति।

ए परथी एम फलित थयुं के आवागमन ए दुःखरूप छे, अने ए दुःखथी छुटी जवुं तेनुं नाम मोक्ष।

स्वाभाविक ज हवे ए प्रश्न उद्भवे छे के त्रिविध ताप आध्यात्मिक, आधिदैविक अने आधिभौतिक दुःखथी छुटी शी रीते शकाय ? आ प्रश्नने उत्तर भगवान वेद आपे छे, "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।" सत्यज्ञान विना मुक्ति प्राप्त थती नथी। न्यायदर्शन आ विशे वधु प्रकाश आपता कहे छे के :

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः । मिथ्या ज्ञानना नाशथी प्रवृत्ति शमे छे, तेथी जन्म मरणना फेरा टळे छे, तेथी दुःख नष्ट थाय छे, अने अन्ते अपवर्ग–मोक्ष साधी शकाय छे । आथी एम स्पष्ट थाय छे के मोक्षना अवरोधनुं कारण मिथ्या ज्ञान छे । हवे ए प्रश्न उद्‌भवे छे के ए मिथ्या ज्ञाननो नाश केवी रीते शक्य बने ?

सारा नरसा कर्मोनुं करनार प्रत्येकनूं मन छे । जे अत्यन्त चंचल छे । श्रीकृष्ण भगवाने गीतामां पण ते अनुभव्युं छे :–

असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम् । ए मनना चांचल्य माटे अर्जुन जेवा महारथीने पण कहेवुं पड्युं केः

चंचलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।

वायुने पकडवुं जेटलुं दुष्कर छे ते रीते मन पर संयम केळववो पण कठिन छे । त्यारे करवुं शुं ? ए प्रश्न आवी उभो रहे छे । परन्तु फरी तेनो उत्तर पण गीतामां ज आपणने मळी रहे छे "अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते" । हे कुन्तिपुत्र, कंई अशक्य नथी । अभ्यास अने वैराग्यथी मनने पण वश करी शकाय छे। "मनएव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" । बन्धन अने मोक्षनुं कारण मनज छे । परन्तु संसारने आ रीते जीतवुं कंई सहेलुं छे ? तेनो प्रत्युत्तर हकारमां आपतां एक अनुभवीनुं कथन छे के "जितं जगत्केन ? मनो हि येन" । जेणे मन जीत्युं, तेणे जगत आखुं जीत्युं !

योगमार्गगामिओनो ओ अनुभव छे। ऋषिओनी ऋतंभरा प्रज्ञानो अे चमत्कार छे। संसारनुं मनोविज्ञान अहींथी शरू थाय छे। पौर्वात्य मनोविज्ञान माटे योगदर्शन अे अद्भुत ज्ञाननी सामग्री छे।

पाश्चात्य जगतमां फ्रोईड सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक गणाय छे, जेना प्रभावमां आपणा देशना विद्वानो पण आव्या छे।

परन्तु फ्रोईडनुं मनोविज्ञान कामपर आधारित छे। आर्य संस्कृति तेने अधूरूं गणे छे। काम अे तो पुरूषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम अने मोक्षनुं अेक अंग मात्र छे। आ रीते समग्रतया ते पुरूषार्थ नथी। पाश्चात्य मनोविज्ञान कामनी स्थूल बाजु मात्र जुअे छे। ज्यारे आर्य विचार–सरणी तेनी पूर्वे धर्मने मूकी 'धर्ममूलं तु कामः' जणावे छे। ए रीते धर्मथी अनुबंधित काम उपभोग्य छे, अेम जणावी आपणने ऊंचे मार्गे ते लई जाय छे।

कामने स्थूल अर्थमां ल्यो के कामना अर्थमां ल्यो, पण तेनुं उत्पत्ति स्थान पाछुं **मन** आवे छे। योगशास्त्रमां जेने चित्तने नामे ओळखावेल छे, अे मन अर्थात् चित्तने वशमां राखवाथी अपवर्गनी प्राप्ति थाय छे। अे कई रीते? तेनुं समाधान हिरण्यगर्भनी परम्पराथी उतरी आवेला समग्र मनोवैज्ञानिक योगशास्त्रनुं प्रणयन परम कारूणिक महर्षि पतंजलिअे कर्युं छेः

योगेन चित्तस्य, पदेन वाचां
मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां
पतंजलिं प्रांजलि रानतोऽस्मि ॥

योग दर्शननी रचना द्वारा जेणे चित्तनो मल, व्याकरणना महाभाष्यादि ग्रंथो रची वाणीनो मेल, अने वैद्यकनी रचना करीने शरीरनो मेल दूर कर्यो छे अे मुनिपुंगव पतंजलि महर्षिने आपणा कोटिशः प्रणाम हो !

'योग' अे महत्वनो शब्द छे। तेनो अर्थ जाणवो आवश्यक छे। योग अेटले प्राप्ति। योगनो उद्देश्य परमात्मानी प्राप्ति करवानो छे। अने ते प्रकृति पुरुष आत्माना विवेक द्वारा परम पुरुष ईश्वरनुं ज्ञान प्राप्त करी तेनो साक्षात्कार करवो ते। ते माटे चित्तनी समाहित दशा प्राप्त करवी रही।

विचित्ररचनेयं सूक्ष्मा प्रकृतिः, ततश्च सूक्ष्मतरः
पुरुषः, ततोऽपि सूक्ष्मतमो जगतां पतिरीश्वरः

इति तु किमु वक्तव्यम् ? अेटला माटे तो बृहदारण्यकोपनिषदे जणाव्युं छे : समाहितो भूत्वा आत्मन्येवात्मानं पश्यति। ४-४-२३। समाहित (चितनी अेक अवस्था विशेष,) थईने आत्मामां परम आत्मानु दर्शन करवु। अे समाहित अवस्थाने प्राप्त करवा माटे योग दर्शननु प्रथम सूत्र भगवान पतंजलि रचे छे के 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' चित्तनी वृत्तिनो निरोध करवो ते योग। आ अेकज सूत्रमां सूक्ष्मरुपे योगदर्शन आखुं समावी शकाय। आ सूत्रनुं विशदीकरण अेटले योगदर्शननां चार पादखण्डो : समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद अने कैवल्यपाद। अे चित्तवृत्ति निरोधने कठोपनिषदे आम वर्णव्यो छे:

यदा पंचावतिष्ठंते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥
तां योग मिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रयधारणाम् ।
अप्रमंत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥

अे परमगति समाधिना संप्रज्ञात अने असंप्रज्ञात अेम बे विभागो पडे छे । ऋग्वेदमां अे योगनुं सूक्ष्म वर्णन प्रतीत थाय छे, यथाः

युञ्जते मन उत, युञ्जते धियो विप्रा
विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । ५-८१-१ ।

युञ्जते मन अे संप्रज्ञात योग अने युञ्जते धियः अे असंप्रज्ञात योग । विप्र अेटले योगी मेधावी । तेज सर्व मेधाविओमां मेधावीस्वरूप अने गुणमां सर्वथी बृहत्, सर्वज्ञ होवाथी विपश्चित् अेवा परमात्मानो मन, बुद्धि, चित्त द्वारा योग-मेलाप साधवो अे अर्थ उपली ऋचामां विवक्षित छे।

आ योगदर्शन सर्व दर्शनोमां नानुं छे। तेमां वाद विवाद, खंडन मंडन के तर्कनुं अधिष्ठान नथी। अे तो आत्मसाक्षात्कारने वरेलुं छे, अने समाधिद्वारा चर अचर, जड चेतन, समस्त ब्रह्माण्डनुं ज्ञान मेळववानी ते महाशाला समु छे। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय अने अपरिग्रह अे यम द्वारा चित्तने निर्मल करी शौच-पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय अने ईश्वर-प्रणिधान अे नियम द्वारा आत्माने उन्नत बनाववानो प्रशस्त मार्ग छे.

योगना बे प्रकार छे। (१) राजयोग अने (२) हठयोग। आमां राजयोग अे ज राजमार्ग छे। तेमां चित्तनिरोध अे मुख्य बाबत होई ते माटे महर्षि पतंजलिअे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान अने समाधि अे अष्टांग योगनो उपदेश करेल छे. यम, नियम, आसन, प्राणायाम अे सर्वविदित छे। प्रत्याहार अेटले विषयो तरफथी इन्द्रियोने पाछी वाळी आत्माभिमुख करवी ते। धारणा अेटले चित्तने अमुक स्थानमां परोववुं ते। अर्थात् नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्धा ज्योति, नासिकाग्र इत्यादिमांथी कोई अेक साथे चित्तने जोडवुं ते। ध्यानना संबन्धमां जनसमाजमां भ्रांत विचारो छे के आंख बंध करी मूर्ति आदिमां मन लगाडवुं ते। पण ध्यान ते नथी 'ध्यानं निर्विषयं मनः'। ध्यानमां तो कोई मूर्त पदार्थ होवो न जोईअे। फलतः मूर्ति पूजा द्वारा ध्यान थाय छे अे योगदर्शनसंमत नथी। अे ध्यान साकारनुं न होतां निराकारनुं होवुं घटे। अने छेल्ले समाधि दशा, जे योगीनी विवक्षित अवस्था छे ते दशाने प्राप्त थवुं :

समाधि निर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥

समाधि द्वारा चित्तना तमाम आवरणो दूर करनार आत्माने जे सुख थाय छे तेनुं वाणी द्वारा वर्णन अशक्य छे। अे समाधिमां ईश्वर साक्षात्कार थाय छे। अे ईश्वरनुं स्पष्ट वर्णन योग शास्त्र करे छे के :

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टपुरूषविशेष ईश्वरः

ए क्लेश, कर्म, फलभोग आदिथी जे कदी संयुक्त थतो नथी ते ईश्वर. आ रीते योग अने सांख्य भिन्न न होवाथी सांख्य दर्शन पण आस्तिक दर्शन छे अने तेणे पण ईश्वर सिद्धि मानी ज छे, ओ फलित थाय छे। ओ रीते क्रमशः संप्रज्ञात समाधि प्राप्त थता यथेच्छ गमनागमन, अणिमा, गरिमा, लघिमा, ब्रह्माण्ड संचरण अने परकाया प्रवेश आदिनी सिद्धिओ योगीने वरे छे, जेनु विशेष वर्णन विभूतिपादमां जोवा मळे छे। हालनु भौतिक ज्ञान हजी सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रो सुधी पहोंच्यु नथी। आर्योनु विज्ञान तो कहे छे के योगिओ सूर्यमां पण जई शके छे अने दरेक ग्रह उपग्रहमाँ यथेच्छ विहार करी शके छे। जाते उडी शके छे अने ब्रह्मांडना दूरतम छेडानो अवाज पण सांभळी शके छे। भूगर्भमां पण माईलो सुधी उंडाणमां जोई शके छे। ओ विज्ञाननी सिद्धिओ पासे आजनु विज्ञान हजी तद्दन बालक छे। अस्तु। पण योगीओ ए अद्भुत सिद्धिओनी जालमां जो लपटाई रहे तो अंतिम साध्यथी ते रखडी पडे छे, अने त्रिशंकुनी दशा पामे छे। तेनु ध्येय तो असंप्रज्ञात समाधि द्वारा परमात्मानो साक्षात्कार करवानु छे। अेटला माटे विवेक अने वैराग्यनी आवश्यकता योग-दर्शनकार जणावे छे।

विशेष तो जिज्ञासुओ स्वयं आ योग दर्शन भाष्यमांथी जाणी शके छे अने ते जाणी जीवन सिद्धिने पामी शके छे। आ भाष्यनु पारायण मनने शान्ति आपनारूं निवडशे ज।

गुजराती भाषामां केटलाक योगदर्शनो प्रगट थयां छे। पण आ भाष्यनी जुदी परिपाटी छे। तेना रचनार वीतराग पूज्य पण्डित मयाशंकरजी दर्शनाचार्ये आमां प्रथम अवतरणिका सूत्र, पदार्थ, भावार्थ अने विवरण ओ क्रम राखी पोतानी अनोखी रीते पाठकोने अत्यन्त लाभ आपवा प्रयत्न कर्यो छे। विवरणमां पण उपयोगी शास्त्र प्रमाणो यत्र तत्र आपी पोताना विषयने वधुमां वधु प्रामाणिक अने सरल करवा प्रशस्त पुरूपार्थ कर्यो छे। पूज्य **आचार्य श्री मयाशंकरजीना** आ पूर्वे, १ वेदान्तदर्शन, २ मीमांसादर्शन, ३ वैशेषिकदर्शन, ४ सांख्य दर्शन, अने ५ न्यायदर्शन ओ पांचेय भाष्यो प्रसिद्ध थई चुक्यां छे। जेना सागरोपम गंभीर ज्ञाननो आस्वाद गुजराती आर्यो अने अनेक जिज्ञासुओ माणी चुक्या छे, अने माणी रह्या हशे।

विद्या व्यासंग अने समाजसेवाना क्षेत्रमां म्हारा साथी स्नातक श्री सत्यव्रतजीनी विनंतीथी आचार्यश्रीओ आ छेल्ला योगदर्शननुं पण गुर्जर भाष्य करी आपी जनताने आजीवन ऋणी करी छे। ओ रीते तेमना शुभ हस्ते छ ओ दर्शनोनां भाष्य थई केवल दर्शनाचार्य नहीं पण आज **षड्दर्शनाचार्य** बने छे, जे तेमना स्वाध्याय, तप अने ब्राह्मणत्वने अनुरूप छे।

संसारनी भाषाओमां कदाच ओकज विद्वानने हाथे छ ओ दर्शनो ऊपर संपूर्ण स्वतन्त्र भाष्यो थयां होय तो ते गुजराती भाषामां थयां छे। गुजराती भाषा माटे ओ अत्यन्त गौरवनो अने अभिमाननो विषय छे। "स्वाध्यायादृषि तर्पणं" ओमनूं आ ऋषि–तर्पण सार्थक हो !

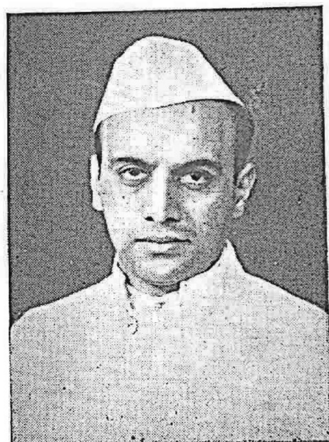
म्हारा प्रिय अनुज विक्रमसिंहनो आकस्मिक असह्य स्वर्गवास अमारा सहु माटे अत्यन्त आघातजनक छे । आ ग्रन्थ तेना स्मारक तरीके प्रसिद्ध करवानी इच्छा सहज रीते अेक दिवस स्नातक **सत्यव्रत**जी अे व्यक्त करी अने में तुर्त तेनो स्वीकार कर्यो । परिणामें आ योगदर्शननुं गुजराती भाष्य, स्वर्गस्थ प्रिय बन्धु **विक्रमसिंहना स्मारकमां** छपाईने जिज्ञासु जनोना हाथमां मूकतां नानुंशुं कर्तव्यसंपादन कर्यानो थोडो सन्तोष अनुभवूं छुं ।

संसारदीर्घरोगस्य, सुविचारो महौषधम् -अे सुविचारोने जन्मावनार आ योगदर्शन योगमार्ग-गामिओना आत्म-कल्याण माटे थाव, अेवी प्रभु प्रार्थना साथे विरमतो

कच्छ केसल, मुंबई ४
प्रजासत्ताक दिन,
ता. २६ जान्युआरी १९६४

विदुषां वशंवदः
प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास

श्री विक्रमसिंह शूरजी वल्लभदास

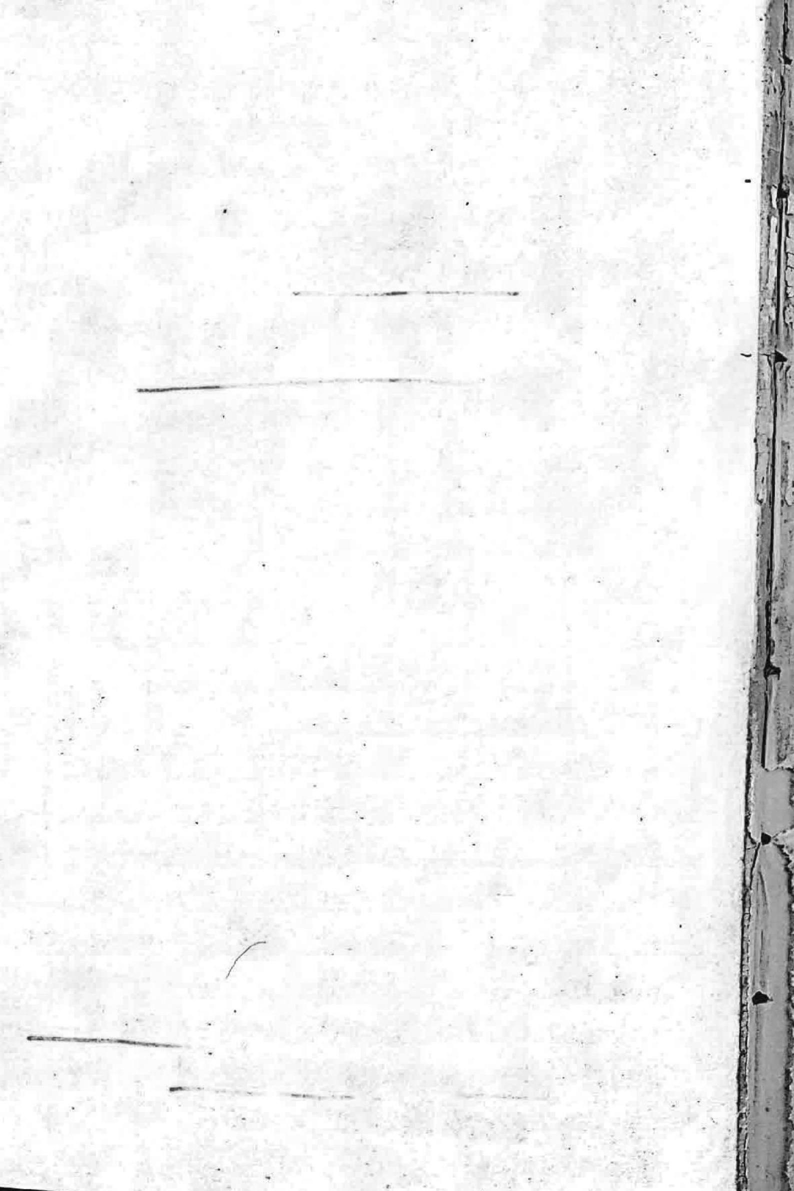


अवतरण

११-५-१९२३

स्वर्गारोहण

१४-१०-१९६१



ओ३म्

स्व. बिक्रमसिंह शूरजीभाईनी जीवन झरमर

स्वर्गस्थ शेठ शूरजी वल्लभदासनुं नाम मुंबईना नागरिकोमां जाणीतुं छे। अेक अग्रगण्य व्यापारी अने वहाणवटी होवा उपरान्त तेओश्री वेद अने उपनिषदोना अभ्यासी हता। आर्य समाजना तेओ प्रसिद्ध नेता हता। स्वदेशी तेओश्रीनूं प्रिय व्रत हतूं। भारतना स्वातंत्र्य संग्राममां तेमणे खूबज महत्वपूर्ण सेवाओ आपी छे ते जाणीतूं छे, अनेकवार कारावास पण सेवेल छे। भारतना क्रांतिकालमां स्वदेशी बजार नामे संस्था तेमणे स्थापेली। उथलपाथलना वर्षोमां आ संस्था धारेली प्रगति करी शकी नहिं अने आजे तेनी मात्र अेक प्रवृत्ति आयुर्वेद ओषधि भण्डार छे जे द्वारा जनताने शुद्ध आयुर्वेदी ओषधिओ किफायत भावे मलती रहे छे। जीवनना लांबा काल पर्यन्त तेओ मात्र फलाहार ऊपर रहेला अने संसारमां सरसो रहे पण मन म्हारी पास अे भगबद्गीताना आदेश मुजब संसारमां रह्या हता छतां साधक तेम सन्यासी जेवूं तेओश्रीनूं जीवन हतूं। सन्यास लेवानी तेओनी उत्कट इच्छा हती पण ते पूरी पडे ते अगाउ असाध्य मांदगीमां तेओ सपडाई गया अने स्वर्गवासी थया। तेमना सुपुत्रोअे तेओना पुण्य स्मरणमां मुंबईमां जाणीता उपनगर विला पारलामां अेक विशाल साधनाश्रम अने भव्य सभाग्रह स्थाप्यां छे, ज्यां अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों, तथा वार्ताओ, धार्मिक प्रवचनो वगेरे

प्रवृत्तिओ अविरत चाल्या करे छे अने जनतानी उन्नति साधवामां मदद रूप बने छे।

श्री शूरजीभाईना जीवननी महेच्छा वहाणवटाना क्षेत्रमां भारत स्वावलम्बी रहे तेवुं अने तेनी पूर्ति अर्थे तेमणे त्रण स्टीमर कंपनी स्थापना करी जे अनेक झंझावातोंमांथी पसार थईने आजे पण जनतानी यशस्वी सेवा करी रहेल छे।

स्वर्गीय शूरजीभाई पोतानी पाछल त्रण पुत्रो अने पांच पुत्रिओनो बहोळो कुटुंब विस्तार मुकी गया हता। श्री विक्रमसिंह तेमना द्वितीय पुत्र हता। तेमनो जन्म सने १९२३ मां थयो हतो। शैशवथी ज श्री अने सरस्वतीनो संगाथ तेमने सांपडयो हतो। पिताश्री पासेथी अने संस्कृत बिद्वानो मारफत तेमने संस्कृत भाषा तथा साहित्यनो अभ्यास कर्यो। साथे साथे गुजराती, हिन्दी अने अंगरेजीनुं ज्ञान शाला अने कालेज द्वारा संपादन कर्युं। अंते विज्ञानना स्नातक थई मुंबई विद्यापीठनी B. Sc. पदवी प्राप्त करी। कालेजमां जता थया ते समयथी ज श्री विक्रमसिंह पिताजीना वहाणवटाना व्यापारमां ध्यान देता। अे परिचय स्नातक थया बाद दिन प्रतिदिन गाढ थतो गयो। सत्तावीशमें वर्ष तो तेओश्री पोतानी न्यू धोलेरा स्टीमशिप कंपनी माटे आगबोट खरीदवा आस्ट्रेलिया गयेला। अे आगबोटनूं नाम तेमणे जयशूर पाड्युं। त्रण वर्ष बाद युरोपना प्रवासे तेओं गया अने त्यांथी बीजी स्टीमर खरीदी लाव्या, जेनूं नाम ज्योति पाडयुं। वहाणवटाना क्षेत्रे तेओ हवे अग्रस्थान धरावता थया हता। सन १९५४

–५६ मां भारतना जहाजी कंपनिओना मंडलना नाणामंत्री तरीके तेमने पसन्द करवामां आव्या हता। त्यारबाद तेओश्रीओ राष्ट्रनी जहाजी कंपनी मंडलनूं उप प्रमुखपद अने प्रमुखपद १९५७ थी १९६० पर्यन्त शोभाव्युं। तेओना लेखो तथा व्याख्यानो सरकार तेमज जहाजी व्यापार साथे सम्बन्ध धरावता सर्वे जनो आदरथी वाचता अने तेमांथी मार्ग दर्शन मेळवता। स्टीमरोनी रचना विषेनूं तेमनुं ज्ञान मोटा अेन्जीनिअरोने आश्चर्यमां नाखे अेवुं विशाल हतुं। सन १९५९ मां भारत सरकारे वहाणवटा उद्योग परिषदनी स्थापना करी त्यारे आ उद्योगना अेक प्रतिनिधि तरीके तेमने पसन्द कर्या हता। भारतीय व्यापारी परिषद, व्यापारिक वहाणवटा शिक्षण समिति अने देशना युवकोने वहाणवटानी तालीम आपती डफरिन जहाजनी समितिमां पण सरकारे तेमने नियुक्त कर्या हता।

युवानवय छतां तेओश्री अनेक कंपनिओना नियोजनमां शक्य साथ देता। तेमांथी केटलीक नीचे मुजब छे :

१ : मलबार स्टीमशिप कंपनी लि. ना बोर्ड आफ डायरेक्टरना सभ्य,

२ : न्यू घोलेरा स्टीमशिप कंपनी लि. ना प्रमुख,

३ : शूरजी वल्लभदास लि. ना डायरेक्टर,

४ : नेशनल स्टीमशिप कंपनी लि. ना डायरेक्टर,

५ : प्रतापसिंह लिमिटेडना प्रमुख,

६ : विक्रमसिंह लिमिटेडना डायरेक्टर,

७ : दिलीपसिंह लिमिटेडना डायरेक्टर,

८ : शूरजी वल्लभदास ओषधि भण्डार लि. ना डायरेक्टर,
९ : पिताश्री वल्लभदास कर्मसिंह स्मारक निधिना ट्रस्टी
१० : मातुश्री वीरमति वल्लभदास स्मारक निधिना ट्रस्टी
११ : भगिनी चन्द्रप्रभा वल्लभदास स्मारक निधिना ट्रस्टी
१२ : श्री कच्छ लोहाणा केलवणी मंडलना मंत्री अने ट्रस्टी इत्यादि ।

सम्पत्तिना सागरमां उछरेल श्री विक्रमसिंह अनेक होद्दा धरावता छतां अेवा तो नम्र अने निराडंबर हता के अजाण्या मनुष्य तो भ्रममाॅ पडी जाय । तेओश्रीनो पाणिग्रहण संस्कार सने १९५० मां श्री ज्योत्स्ना साथे थयेल जे संस्कारी पिता स्व. शेठश्री प्रागजी दयाल हरियाणीना पुत्री छे । तेओ पण पति जेवा ज नम्र अने सेवाभावी सन्नारी छे।

वहाणवटाना व्यवसायमांथी विशेष श्री विक्रमसिंह घणी सामाजिक सांस्कृतिक, शैक्षणिक अने कला विषयक संस्थाओमां सेवा आपता रहेता । भारत सेवक समाज अने आर्य विद्या सभाना तेओ अग्रगण्य कार्यकर हता । आम तेओश्री अनेक देशहितनी प्रवृत्तिओमां सक्रिय रस लेई पोताना ज्ञान तथा अनुभवनो लाभ जनताने आपता ।

१४ मी अकटोबर १९६१ नी मध्यरात्रीअे हृदयरोगना हुमलाथी अेकाअेक ज तेमणे जीवन लीला संकेली लीधी ।

आशास्पद युवान तारक सदा माटे विलीन थई गयो । श्री विक्रमसिंहना अकाले थयेला देहविलयथी स्वदेशी वहाणवटाने तेम ज अन्य उपयोगी संस्थाओने मोटी खोट पडी छे ।

જન્મ

સંવત ૧૮૮૧



નિર્વાણ

સંવત ૧૯૩૮

આસો વદિ ૩૦

સમર્પણ

. પવિત્ર જ્ઞાન અને કર્તવ્યને ઉત્પન્ન કરનાર તથા ચારિત્ર્યનાં બળોને વધારનાર ઋતંભરા પ્રજ્ઞામાંથી જન્મતા જેમના ઉપદેશોથી મારામાં વૈદિક શાસ્ત્રો ભણવાની પ્રબળ ઈચ્છા થઈ હતી, જેમના સતત ઉપદેશો અને લખાણોથી ભારતવર્ષ અને સમસ્ત વિશ્વમાં અવિવેકનાં વાદળોને વિખેરી નાખનારો પ્રચંડ વાયુ ફુંકાઈ રહ્યો છે, જેમણે આજીવન નૈષ્ઠિક બ્રહ્મચર્ય પાળી યોગને તેના વાસ્તવિક સ્વરૂપમાં જાણી સિદ્ધ કર્યો હતો તથા જેમની અદમ્ય કર્મવીરતાને લીધે વેદો પ્રકાશમાં આવ્યા, તે યુગવિધાતા રાષ્ટ્રપુરુષ મહર્ષિ શ્રી સ્વામી દયાનંદ સરસ્વતીજીના અધ્યાત્મ પવિત્ર ચરણમાં આ પાતંજલ યોગદર્શનનું ગુજરાતી ભાષ્ય વિનમ્ર ભક્તિભાવે સમર્પિત કરું છું અને ઋષિ-ઋણમાંથી અત્યલ્પ મુક્ત થયાનો સંતોષ સેવું છું.

આર્યસમાજ,
આણંદ.

પં. મયાશંકર શર્મા

*

: ભૂમિકા :

ગુજરાતી ભાષામાં સંસ્કૃતદર્શનશાસ્ત્રોને ઉતારવામાં આ પાતંજલ યોગદર્શનનો ક્રમાંક છઠ્ઠો છે. આ વૈદિક આર્ષ સાહિત્ય દ્વારા ગુજરાતી ભાષાની સેવા કરવાની મને જે અમૂલ્ય તક મળી છે તેને હું 'પરમ દયાળુ મહાન અન્તરાત્માની અલ્પ પણ કોમળ તેજસ્વિ–કિરણાવલી મારા ઉપર ઊતરી છે' એમ સાચા અન્તઃકરણથી માનું છું. દર્શનશાસ્ત્રોનો અભ્યાસ માણસને વિવેક દૃષ્ટિ આપે છે. વહેમ અને અંધશ્રદ્ધાનો એ નાશ કરે છે. કોઇ પણ સમ્પ્રદાયને ઋષિઓ ધર્મ માનતા ન હતા. એમની ધર્મની વ્યાખ્યા તો બહુ જ વિશાળ અને સત્યથી ભરેલી છે. મહર્ષિ કણાદે ધર્મની વ્યાખ્યા કરતાં જણાવ્યું છે કે 'યતોऽભ્યુદયનિઃશ્રેયસસિદ્ધિઃ સ ધર્મઃ' જેનાથી અભ્યુદય અને મુક્તિ મળે તે ધર્મ છે. અભ્યુદય એટલે સાંસારિક સુખ, શાંતિ, અને નિઃશ્રેયસ એટલે દુઃખનો અત્યન્ત અભાવ. આધુનિક વિજ્ઞાન કેવળ ભૌતિક સુખની પાછળ પડયું છે અને રાગ, દ્વેષ તથા દુઃખને વધારી રહ્યું છે, આત્મા જેવી વસ્તુ એના ધ્યાનમાં આવતી નથી. દાર્શનિક ઋષિઓ આત્મજ્ઞાન સાથે ભૌતિક સુખ મેળવવાનું અને ભવિષ્યમાં આવતા દુઃખને અટકાવવાનું જણાવે છે. તેના ઉપાયો પણ બતાવે છે. મહર્ષિ

પતંજલિ કહે છે કે हेयं 'दुःख मनागतम्' અનાગત દુઃખ અર્થાત્ હવે પછી આવતા દુઃખોને અટકાવો. ઉપાયો એવા વિવેકપૂર્ણ હ્યો કે જેથી દુઃખો સદૈવ ભવિષ્યના ગર્ભમાં જ રહે, વર્તમાનકાળમાં ઊતરવા જ ન પામે.

એક વરસના પ્રયત્ને આ 'યોગ ભાષ્ય' રૂપ મધુર ફળ પરિપક્વ બન્યું છે. આ સમય દરમ્યાન કોઇ પણ વિઘ્ન ન આવવું એ શું આ વર્ષીયસ શરીરમાં વસતા આત્મા ઉપર ઈશ્વરીય દયા ન ગણાય ?

મુંબઈ પ્રદેશ ભૂતપૂર્વ ગુરુકુળની વિદ્યાસભા, મુંબઈ પ્રદેશ પ્રતિનિધિ સભા તથા ચરોતર પ્રદેશ-સભાએ મારી જરા-અવસ્થાને ધ્યાનમાં લઇ મને નિવૃત્તિ આપી અને સાથે સાથે મારા ભરણપોષણ અને નિવાસની પણ સગવડ કરી આપી. આ સમય દરમ્યાન મેં દર્શનશાસ્ત્રોનાં ભાષ્યો કર્યાં અને સમાજની બનતી સેવા હું કરતો રહ્યો છું. મારા જીવનમાં જો કોઇ ઉજ્જવલ અંશ હોય તો તે આર્ય-સમાજને લીધે છે. સદ્ગત મહર્ષિ દયાનંદ સરસ્વતીજી મારા જીવનનું આકર્ષણ સદૈવ બનતા રહ્યા છે. આને માટે હું એમનો જેટલો આભાર માનું તેટલો ઓછો છે.

યોગદર્શન મેં ગુર્જરગિરામાં ઉતાર્યું તો ખરૂં પણ હવે એના મુદ્રણ માટે શું કરવું ? એવા બહુ થોડાક લેખકો હશે કે જેની પાસે લેખન અને મુદ્રણ બંનેની અનુકૂલતા હોય. હું પછીની અનુકૂલતાથી રહિત રહ્યો છું. વળી શાલીનતા અને અપ્રગલ્ભતા મારા જીવનપટના વાણા તાણા

બનેલા છે. ગાઢ પરિચયમાં નહીં આવેલા એવા લક્ષ્મીનંદનના દ્વાર આગળ જવાની પણ મારામાં હિંમત નથી. આ સ્થિતિ હોવા છતાં પ્રભુની દયાના જે વિષય બને છે તેનાં કાર્ય કદી પણ અધુરાં રહેતાં નથી.

આ લેખન-સેવાની કદર કરવા એક ઉદાર-ચરિત, ઉમદા વિચારવાળા, વિદ્યાપ્રિય, વિદ્વાન લક્ષ્મીનંદન પણ મળી આવ્યા. સદ્ગત આર્યરત્ન શ્રી શૂરજી વલ્લભદાસના ગુણોદધિ, મહામના અને સચ્ચારિત્ર્યના ઉજ્જવલ પ્રતીક સ્વરૂપ પુત્ર શ્રી પ્રતાપસિંહ ભાઈએ આ ગ્રંથને પોતાના વહાલા સ્વર્ગસ્થ અનુજ વિક્રમસિંહભાઈના સ્મરણાર્થ મુદ્રિત કરી લ્હાણી કરવાનું શ્રી સ્નાતક સત્યવ્રતજી વેદવિશારદને વચન આપ્યું. આ પ્રશસ્ત કાર્યમાટે મારી સાથે ગુણાનુરાગી આર્યજનતા પણ તેઓશ્રીને ધન્યવાદ આપ્યા વગર રહી શકે નહિ. કર્મવીર અને કર્મદક્ષ સ્નાતક શ્રી સત્યવ્રતજીને તો પરોપકારાય સતાં વિભૂતયઃ સિવાય બીજું કશું ય કહેવા મારી પાસે નથી.

'યોગ' બહુ જૂનો વિષય છે, સૃષ્ટિ–જૂનો છે એમ કહું તો પણ ખોટું નથી. કોઇ પણ આર્ય (હિંદુ) વ્યક્તિએ યોગના મહિમાને શ્રવણનો વિષય બનાવ્યો જ હોય છે. ઇતર જનતા પણ નામાન્તરે યોગના મહિમાને જાણતી જ હોય છે. અનાદિસિદ્ધ વેદોમાં એનું પ્રતિપાદન છે, તો પછી એની પ્રાચીનતમતામાં કહેવાનું જ કયાં રહ્યું ?

વેદમાં યોગને માટે આ પ્રમાણે લખ્યું છે :—

युञ्जते मन: उत युञ्जते धियः :........।

ઋગ્વેદ. ૫-૮૧-૧

આત્માના જ્ઞાન અને પરમાત્માની પ્રાપ્તિ માટે વિદ્વાન્ લોકો યોગનું આચરણ કરે,

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियम् ' अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥

યજુર્વેદ--૧૧--૧

વિદ્વાન માણસે આત્મતત્ત્વ જાણવાને માટે મન અને મનની વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો જોઇએ અને પ્રકાશ સ્વરૂપ પરમાત્માની જ્યોતિનો સાક્ષાત્કાર કરી પાર્થિવ શરીરનો ત્યાગ કરી મુક્તિ મેળવવી જોઇએ.

મુનિ પતંજલિએ યોગનાં આઠ અંગો ગણાવ્યાં છે, તેનાં સૂચનો પણ વેદ અને ઉપનિષદ આદિ સત્ય શાસ્ત્રોમાં જણાય છે. જેમકે :- तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ઋગવેદ ૩--૬૨--૧૦

આ મંત્ર ચારેય વેદોમાં પ્રસિદ્ધ છે. આમાં પરમાત્માના તેજનું ધ્યાન કરવાનું કહ્યું છે. આ ધ્યાન આઠ અંગોમાંનું એક અંગ છે.

પ્રણવનો જપ અને એના અર્થની ભાવના કરવાનું પણ આ જ મંત્રમાં સ્પષ્ટ સૂચન છે. આઠ અંગોમાંનું પહેલું અંગ 'યમ' છે અને યમનું પ્રથમ અંગ અહિંસા છે.

અહિંસાનું આચરણ કરવાનું આ મંત્રમા સ્પષ્ટ છે

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मानो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः
ઇત્યાદિ. યજુર્વેદ--૧૬--૧૬

અમારાં બાળકો ઉપર અમારી આયુષ ઉપર અમારાં પશુઓ ઉપર હિંસા ન હો. मा हिंस्यात् सर्वाणि भूतानि કોઇપણ પ્રાણીની હિંસા કોઇએ ન કરવી.

મૈત્રી કરુણા આદિ જે યોગનાં પરિકર્મો બતાવ્યાં છે તેનું પણ સૂચન વેદમાં છે. જુઓ યજુર્વેદ અધ્યાય ૩૬–૧૮ दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ઈત્યાદિ. અમે બધા તરફ મિત્રની દૃષ્ટિથી જોઇએ અને બધાઓ અમારી તરફ મિત્રની દૃષ્ટિથી જુએ. त्यक्तेन भुञ्जीथाः યજુર્વેદ--૪૦--૧ આ મંત્રમાં અપરિગ્રહ સૂચવાયો છે.

'નિયમ' એ યોગના આઠ અંગોમાંનું બીજું અંગ છે. એમાં તપનું સ્થાન ત્રીજું છે. જેમ કે: शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः । યોગ. ૨–૩૨. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत । ઋગવેદ--૧૦--૧૯૦--૧ ઉત્કૃષ્ટ તપમાંથી ઋત અને સત્યનો આવિર્ભાવ થાય છે.

અહીં 'તપ' નું આચરણ સૂચિત થયું છે. સત્ય કે જેનો સમાવેશ 'યમ'માં થાય છે તેનું પણ સૂચન છે.

ઉપનિષદોમાં પણ યોગનું પ્રતિપાદન છે. શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદનો બીજો સંપૂર્ણ અધ્યાય યોગનું પ્રતિપાદન કરે છે. કઠોપનિષદમાં પણ યમાચાર્યે નચિકેતાને યોગની બધી જ

વિધિઓ શિખવાડી હતી એવો ઉલ્લેખ છે. જુઓ :
यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम् । કઠોપ=૨--૩--૧૦ तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् કઠોપ–૨–૩–૧૧

જયારે પાંચેય ઇન્દ્રિયોનાં જ્ઞાન મનની સાથે સ્થિર થઈ જાય છે અને બુદ્ધિ વિવિધ ચેષ્ટાઓ કરતી શાંત થઇ જાય છે ત્યારે તેને 'યોગ' કહે છે. અહીં 'ધારણા' નામનું અંગ પણ બતાવ્યું છે.

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् । કઠોપ–૩–૩–૧૮

યમાચાર્યે ઉપદેશેલી વિદ્યાને તથા સંપૂર્ણ યોગવિધિને મેળવીને નચિકેતા બ્રહ્મને પ્રાપ્ત થયો હતો અને રજો ગુણ અને તમો ગુણથી રહિત થઈ મોક્ષને પામ્યો હતો.

મહામુનિ કણાદ અને ગૌતમ પણ યોગીઓ હતા, અને તેથી જ તેમણે પણ વૈશેષિક દર્શન અને ન્યાયદર્શનમાં યોગનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. આ જોતાં 'યોગ' ની પરંપરા વેદની સાથે અનાદિ છે એમ પ્રતીત થાય થાય છે, પણ યોગનાં અંગો અને તેની ઇતિકર્તવ્યતા વિપ્રકીર્ણ (છૂટાં-છવાયાં) હતાં. મહામુનિ પતંજલિએ આ બધાનું સંકલન કરી યોગદર્શનને જનતા સમક્ષ મૂકયું છે. એવી પ્રતીતિ શાસ્ત્રોના અભ્યાસીઓને થાય છે.

જો ગીતાને મહાભારતનું એક પ્રકરણ માનીએ અને

તે પછીથી સમાવિષ્ટ કરવામાં નથી આવ્યું એમ માનીએ તો મુનિશ્રી પતંજલિ પહેલાં 'યોગશાસ્ત્ર' હતું એમ કહેવામાં કશો વાંધો નથી; પણ 'યોગદર્શન' તરીકેની નિર્માણ-ખ્યાતિ તો મુનિશ્રી પતંજલિને જ વરે છે. જો કે, શાસ્ત્ર અને દર્શન ઉપલક દૃષ્ટિથી એક જ જણાય છે, છતાં અભ્યાસશીલ વિદ્વાનોને શાસ્ત્ર અને દર્શનમાં છુપાયલો ભેદ જણાયા વગર રહેતો નથી. 'દર્શન' પ્રમાણ અને વિશુદ્ધ તર્કોમાં પોતાના તાત્વિક શરીરને ઘડે છે, જ્યારે શાસ્ત્ર તેનાથી જુદું પડે છે. ગીતાશાસ્ત્ર ખૂબ સ્વતંત્રતામાં, કાવ્યના વિવિધ રસોમાં અને વિષયોમાં તરબોળ થતું નિર્માયું છે. જ્યારે દર્શન તો કાવ્યના રસને ઓળખતું પણ નથી.

ગીતા 'યોગશાસ્ત્ર' છે, એવું ગીતાના હરેક અધ્યાયના અંતમાં જણાવ્યું છે. જેમકે :—

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां 'योगशास्त्रे' श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमो ऽध्याय : । ઇત્યાદિ

(૧) 'ગીતા' એ શ્રીકૃષ્ણે ગાયેલાં ઉપનિષદો છે.

(૨) 'ગીતા' એ બ્રહ્મવિદ્યા છે.

(૩) 'ગીતા' એ યોગશાસ્ત્ર છે.

(૪) 'ગીતા' એ શ્રીકૃષ્ણ અને અર્જુનનો સંવાદ છે.

આ છે ગીતા ભક્તોની ગીતાવિષેની માન્યતા.

ગીતાના છઠ્ઠા અધ્યાયમાં યોગનું પ્રતિપાદન છે તેનો વિચાર કરો. મનને સ્થિર કરી ભગવાનના સ્વરૂપમાં યોગી થવા ઇચ્છનારે જોડાઇ જવું. જુઓ. मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः । ૬. ૧૪. પણ મન કોને કહે છે? એનું સ્પષ્ટ પ્રતિપાદન ગીતામાં જણાતું નથી. વિકારવર્ગમાં માત્ર એટલું જ ઉપદેશ્યું છે કે 'इन्द्रियाणि दशैकंच' ૧૩–૫. દસ ઇન્દ્રિયો અને એક મન.' પણ શું એ અનાદિ સિદ્ધ કોઇ પદાર્થ છે, કે કોઇનું કાર્ય છે? મનનું લક્ષણ શુ છે? ઇત્યાદિ જાણવામાં ઉત્કંઠા બની જ રહે છે.

મુનિ પતંજલિ કહે છે કે '<u>योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः</u> । યો. દ. ૧–૨ ચિત્તની વૃત્તિઓનો નિરોધ થવો તે યોગ છે અને ચિત્ત એ મૂળ પ્રકૃતિનું પ્રાથમિક પરિણામ છે. ચિત્ત એ જ મહત્તત્ત્વ છે અને એને જ બુદ્ધિ તત્ત્વ કહે છે, સાંખ્યપ્રક્રિયાને આધારે.

ગીતામાં એક ઠેકાણે <u>समत्वं योग उच्यते</u> । ગી. ૨. ૪૮ સિદ્ધિ અને અસિદ્ધિમાં એકરૂપતા રાખવી એ જ 'સમત્વ' અને એ જ યોગ. બીજે ઠેકાણે કહે છે કે, योगः कर्मसु कौशलम् ગી. ૨. ૫૦ કર્મ કરવામાં કુશલતા હોવી એ યોગ છે.

અધ્યાય છઠ્ઠામાં ગીતાએ યોગનાં સાધન બતાવ્યાં છે. જેમકે :—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥ गी. अ. ६.

પવિત્ર સ્થાનમાં પોતાનું આસન પાથરવું. આસન બહુ ઊંચું તેમ બહુ નીચું ન રાખવું. વસ્ત્ર અને મૃગચર્મ ઉપર દર્ભનું આસન પાથરવું એવા આસન ઉપર બેસી આત્માની વિશુદ્ધિ માટે ચિત્ત અને ઈન્દ્રિયોની ક્રિયાને રોકવી, મનને એકાગ્ર કરી યોગપરાયણ થવું. વળી આગળ જણાવે છે કે

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्। गी. ६-१३

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥ गी. ६.१४.

શરીરને ટટ્ટાર અને સ્થિર રાખવું માથા અને ગ્રીવાને એક સીધી રેખામાં રાખવાં, નજરને પોતાના નાકના અગ્ર ભાગ ઉપર ઠેરાવવી, દિશાઓમાં આડું અવળું જોવું નહિ, કોઈપણ જાતનો ભય રાખવો નહિ. બ્રહ્મચારીના વ્રતમાં સ્થિર થવું. મનને રોકી ભગવાનમાં પરોવવું અને પરમાત્માનો જ વિચાર કરવો.

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता। ६ १९ गी.

વાયુ-રહિત પ્રદેશમાં રહેલા દીવાની સ્થિર જ્યોત જેવી ચિત્તની સ્થિતિ થાય છે. આ છે યોગની ત્રીજી વ્યાખ્યા.

વળી આગળ જતાં જણાવે છે કે तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्। ६-२३-गीता- દુઃખના સંયોગનો

વિયોગ થવો તેનું નામ યોગ છે. આ પ્રમાણે યોગના સ્વરૂપની જુદી જુદી વ્યાખ્યાઓ ગીતા જણાવે છે.

મુનિ શ્રી પતંજલિ ચિત્તની વૃત્તિઓના નિરોધને યોગ તરીકે જણાવી તેના ફળ સ્વરૂપે આત્માની અને ચિત્તની સ્થિતિને આ પ્રમાણે જણાવે છે.

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति । यो. दः ४–३४

પુરુષાર્થથી શૂન્ય થઈ ગયેલા ગુણો (सत्त्व रजस् અને तमस्) કારણ સ્વરૂપ મૂળપ્રકૃતિમાં આવી રહે છે અને આત્મા પોતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠા પામે છે.

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते गी. ६–३५

અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય મનને સ્થિર કરવાના ઉપાયો છે. પણ અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય કોને કહેવા તેનું સ્પષ્ટીકરણ ગીતાના યોગ પ્રકરણમાં નથી.

મુનિ પતંજલિ अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः । १·१२-यो. द. અભ્યાસ અને વૈરાગ્યને ચિત્તની વૃત્તિઓને સ્થિર કરવાના ઉપાયો બતાવી તરત જ તેના લક્ષણો બતાવે છે જેમકે तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः । १–१३–यो. द. ચિત્તની વૃત્તિરહિત સ્થિતિ માટે પ્રયત્ન જારી રાખવો, એ અભ્યાસ. ✓ વૈરાગ્યનું લક્ષણ આ પ્રમાણે કરે છે. दृष्टानुश्रविकविषय वैतृष्ण्यस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् । १–१४–यो. द.

આ લોકના અને પરલોકના વિષયમાં બીલકુલ તૃષ્ણા

ન રાખવી તેનું નામ વૈરાગ્ય. આવા વૈરાગ્યનું નામ વશીકર-સંજ્ઞક વૈરાગ્ય છે. ગીતામાં અસંપ્રજ્ઞાત યોગ માટે કશું જ કહેવામાં આવ્યું નથી.

એકાગ્રવૃત્તિને જ યોગ એવું નામ આપ્યું છે. ગીતામાં સંપ્રજ્ઞાતયોગ અને અસંપ્રજ્ઞાતયોગ શબ્દોના ઉલ્લેખ પણ નથી.

આ રીતે જોતાં ગીતા યોગશાસ્ત્ર હોવા છતાં દર્શન શાસ્ત્રમાં બતાવેલ કડીબદ્ધ ગુથણી ગીતામાં જણાતી નથી. આ કારણને લીધે મુનિ પતંજલિને ગીતારૂપ યોગશાસ્ત્ર હોવા છતાં યોગદર્શન રચવાની જરૂર જણાંઇ એમ કહેવામાં કશું અતથ્ય નથી.

પાતંજલ દર્શન સામાન્ય રીતે જોતાં બે ભાગમાં વિભક્ત થયેલું જણાય છે. (૧) યૌગિક ક્રિયાઓના ઉપદેશ (૨) તત્ત્વજ્ઞાનનો ઉપદેશ.

યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધારણા, અને સમાધિ વગેરે વિશિષ્ટ ક્રિયાઓ કહી શકાય.

પુરુષ, પ્રકૃતિ, મહતતત્ત્વ, અહંકાર, પાંચતન્માત્રાઓ અને તેમાંથી બનતા પાંચ મહાભૂતોના ઉપદેશ એ તત્ત્વ-જ્ઞાનનો ઉપદેશ કહી શકાય. ત્રીજા પાદમાં યોગસિદ્ધિઓ પણ જ્ઞાનમય અને ક્રિયામય બતાવી છે.

ચોથા પાદને 'કૈવલ્યપાદ' નામ આપવામાં આવ્યું છે. કૈવલ્ય શબ્દનો અર્થ યોગ શાસ્ત્રમાં મોક્ષને માટે વપરાયો છે. આ ચોથા પાદમાં મનનો ઝીણવટથી વિચાર કરવામાં

આવ્યો છે. આ પાદ વાંચતાં મનની અદ્‌ભુત શકિતઓનો ખ્યાલ આવે છે. યોગી સિવાય બીજો કોઇપણ માણસ મનના પૂરેપૂરા સ્વરૂપને જાણી શકતો નથી, તદ્દન અજ્ઞાની જંગલી માણસ પાસે કોહિનૂરહીરાની કિંમત હોતી નથી તેમ સામાન્ય માણસને મનની કિંમત નથી. ભૌતિક વિજ્ઞાનમાં રચ્યા પચ્યા રહેલા વૈજ્ઞાનિક માણસો માત્ર મનની એક જ બાજુ જુએ છે અને તેનો લાભ ઉઠાવે છે, પણ તેઓ રાગ, દ્વેષથી મુક્ત થઈ શક્તા નથી, ભય–રહિત થઈ શક્તા નથી અને સંસારમાં દુઃખની પરંપરાને વધારતા જાય છે. જો મનની બીજી બાજુને પણ જોવામાં આવે તો સંસાર અતિસુખ અને અતિશાંતિનું ધામ બની જાય. પ્રભુએ માણસને બે આંખ આપી છે તે વસ્તુની બન્ને બાજુ જોવા માટે અને વિચારવા માટે છે. પ્રકૃતિના રજોગુણમાંથી દુઃખ જન્મે છે અને તેનો આઘાત ચેતન પુરુષને થાય છે. આ દુઃખ મોક્ષમાં રહેતું નથી. મહામુનિ ગૌતમ પણ ન્યાયદર્શનમાં જણાવે છે કે :—तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः न्या. द.१--१--२२

દુઃખમાંથી અત્યંત છૂટા થઈ રહેવું તેનું નામ અપવર્ગ છે, મોક્ષ છે. સ્વામીશ્રી દયાનંદ સરસ્વતીજી પણ સત્યાર્થ પ્રકાશ નામના ગ્રંથમાં જણાવે છે કે ,દુઃખથી છૂટવું' એ જ મુક્તિ છે. વેદે પણ મૃત્યુને દુઃખ જણાવી અતિમૃત્યુ (દુઃખ)-રહિત થવું તેને મોક્ષ કહ્યો છે. तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति પરમાત્માને જાણ્યા પછી મોક્ષ અર્થાત્ મુક્તિ મળે છે.

બુદ્ધિ અને આત્માનું સેળભેળ જે અવિશુદ્ધ દર્શન

છે તે જ આત્માના જન્મનું અર્થાત્ શરીર ધારણ કરવાનું કારણ છે. જન્મ ન હોય તો આત્માને દુઃખ હોય જ નહિ, જન્મ જ દુઃખનું કારણ છે. કારણ ન હોય તો કાર્ય પણ ન હોય. कारणाभावात् कार्याभावः ॥ वै. द. अ. १ आ. २ सूत्र. १ આ મહામુનિ કણાદનું અમર સૂત્ર છે.

આ સમસ્ત જગત્ ભૂતાત્મક અને ઇન્દ્રિયાત્મક એમ બે જ સ્વભાવવાળું છે અને તે પુરુષના એટલે કે આત્માના વિશિષ્ટ સાંનિધ્યથી ગતિવાળું થતું રહે છે. પુરુષવિશેષ અર્થાત્ પરમાત્મા જ જગતનો ઈશ્વર છે. ઈશ્વર શબ્દ નિત્યજ્ઞાન અને નિત્યપ્રયત્નને સૂચવે છે. પુરુષ અપરિણામી છે અને પ્રકૃતિ પરિણામ પામતી હોવા છતાં નિત્ય છે.

ચેતનમાંથી જડ અને જડમાંથી ચેતન કદી પણ ઉત્પન્ન થતું નથી. તત્ત્વસ્વરૂપે જડ અને ચેતન બંને નિત્ય અર્થ છે. ઇશ્વરીય વાણી તરીકે માનવામાં આવતા વેદમાં પણ એ જ ઉપદેશ છે. નાસ્તિક લોકો જડમાંથી ચેતન જન્મે છે એમ કહે છે, જ્યારે નવીન વેદાંતીઓ ચેતનમાંથી જડ જન્મે છે એમ કહે છે, કારણકે, બ્રહ્મ જગતનું ઉપાદાન કારણ છે એમ તેઓ માને છે અને બ્રહ્મ ચેતન છે. આ બંને મતો સત્યથી વેગળાં છે એમ મુનિ પતંજલિ માને છે.

આત્માઓ અસંખ્યાત છે એ શ્રુતિવાકયોથી તથા જગતમાં જણાતી વ્યવસ્થાથીં સિદ્ધ થાય છે. સંસારમાં કોઈ સુખી તો કોઇ દુઃખી એક જ સમયમાં નજરે પડે છે. જો એક જ આત્મા હોત તો આમ બનત નહિ. આ કારણથી

બ્રહ્મ જ એક સત્ય આત્મા છે, બીજો કોઇ આત્મા નથી, જડ વસ્તુ બ્રહ્મની જ પેદાશ છે. આ માનવું તદ્દન અસત્યના પાયા ઉપર ઊભું કરવામાં આવ્યું છે એમ મુનિ પતંજલિ પ્રમાણ આપી ઉપદેશે છે. જો એક જ આત્મા હોત તો તે આત્મા મુકત થયા પછી સંસારનો ઉચ્છેદ જ થઈ ગયો હોત, પણ એમ થયું નથી. એક આત્મા મુકત થયા પછી બીજા ગણ્યા ગણાય નહિ એટલા બધા બદ્ધ આત્માઓ બાકી રહે છે.

મુક્તિ પછી શું ?

કોઈ એક આત્માને ધારો કે મુક્તિ મળી ગઇ, પણ પછીથી એ આત્માનું જીવન છે, કે નહિ? મુકિતમાંથી એ મુકત આત્મા પાછો આવે છે કે આગળ પ્રગતિ કરે છે કે માત્ર એકની એક અવસ્થામાં સદાને માટે રહે છે? આ સંબંધમાં શાસ્ત્રકારોએ કોઈ ખાસ વિચાર કર્યો હોય એમ જણાતું નથી, અથવા એ અલૌકિક વિચાર કરવાની એમને કદાચ જરૂર જણાઈ ન હોય એમ પણ બનવા જોગ છે. જો એ સંબંધે વિચાર કરવાનો હોય તો આ પ્રમાણે કરી શકાય.

ત્રણ ગુણો સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ મુકત આત્મા તરફ દગ્ધ બીજ જેવા થઇ રહે છે, પણ બીજા આત્માઓ પ્રત્યે તો તે ગુણો બીજ–શકિત પોતામાં કાયમ રાખે છે. જુઓ મહામુનિ પતંજલિના યોગદર્શનનું સૂત્ર.

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् २-२२

આ સૂત્રનો અર્થ તો એ થાય કે, ગુણો (પ્રકૃતિ) ખરી રીતે દગ્ધબીજ થતા નથી. દાખલા તરીકે ડોકટર એક દર્દીને રોગમુક્ત કરે એટલે ડોકટરમાં રોગમુકત કરવાની શક્તિ અદૃશ્ય થતી નથી, જો એ શકિત અથવા વિદ્યા અદૃશ્ય થાય, નષ્ટ થાય તો તે ડોકટર જ ન રહે. એક રોગીને સારો કર્યો પછી બીજા રોગીઓને સારા કરવામાં ડોકટરની શકિત કામે લાગે છે. આ જ પ્રમાણે ગુણો તેની શકિતઓ સાથે સદૈવ રહે છે એમ માનવું જોઇએ.

હવે રહી મુકત આત્માની વાત. આત્મા નિત્ય છે એમ સર્વ કોઇ આસ્તિક વ્યક્તિ સ્વીકારે છે. આત્મા અનાદિ બહુ સંખ્યામાં અવિનાશી છે. શ્રી ભગવદ્ગીતામાં કહ્યું છે. જુઓ:—

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् , । २-२२

विनाश मव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति । २-१७

ઉપર બે પંકિતઓ શ્રી કૃષ્ણ કહે છે. એનો અર્થ એમ થાય છે કે. 'હે અર્જુન, મર્યા પછી અપણે બધા નહી હોઈએ એમ નહિ, પણ આપણે જરૂર વિદ્યમાન હોઈશું.

આત્માઓ તો બધાય અવ્યય છે, એઓનો વિનાશ કોઇ પણ કરી શકતું નથી' જો આ સ્થિતિ છે તો નિત્ય આત્માની શકિતઓ પણ નિત્ય જ હોવી જોઇએ. શકિત અને શકિતમાનનો અભેદ સંબંધ છે એમ મુનિ પતંજલિ માને છે. ઉપનિષદો પણ એનું સમર્થન કરે છે. જેમકે:—

कामः संकल्पो, विचिकित्सा श्रद्धा अश्रद्धा, धृतिरधृतिर्ह्रीर्भी र्धीरित्येतत् सर्वं मन एव प्राणोऽपानो, व्यान उदानः समानो ऽन इत्येतत् सर्वं प्राण एव, एतन्मयो वा अयमात्मा, वाङ्मयः प्राणमयः ।

बृहदा. उप. ५--३

અર્થ:- કામ, સંકલ્પ આદિ વૃત્તિઓ મનમાંથી નીકળે છે અને મનમાં જ સમાઈ જાય છે માટે એ બધું 'મન' જ છે. સમુદ્રમાંથી મોજાં ઉછળે છે અને પાછાં સમુદ્રમાં ભળી જાય છે તેમ.

જ્યારે આ સ્થિતિ છે, તો પછી મોક્ષમાં આત્માની શક્તિઓ આત્મામાં નથી રહેતી એ કેમ માની શકાય? શું શક્તિ વગર શક્તિમાન્ હોઇ શકે ખરો ? ચૈતન્યશકિત વગર ચેતન આત્મા મોક્ષમાં પણ હોઇ શકે? જો આનો ઉત્તર નકારમાં આવતો હોય તો એ જીવનની લાંબા ગાળાની ઈશ્વરીય આનંદથી ઊભરાતી આત્મા માટે વિશ્રાંતિ–સ્થિતિ છે એમ સ્વીકારવામાં કોઈ વાંધો જણાતો નથી.

'મોક્ષ' એ આત્માને સદાને માટે ડુબાડી દેવાની સ્થિતિ નથી. નિત્ય આત્માનો ઉચ્છેદ થઇ શકતો નથી. તો પછી સીધો અર્થ એ જ છે કે મોક્ષ ભોગવ્યા પછી પણ આત્મા પોતામાં રહેલાં જ્ઞાન અને શક્તિઓનો ઉપયોગ કરશે જ; એટલે કે કોઈ બીજી અવસ્થા મેળવવા એ પ્રયત્ન કરશે જ. આત્મા નિત્ય છે તો તેનું જીવન પણ નિત્ય છે. અનાદિ અને અવિનાશી આત્મા સાથે તેનું જીવન પણ

તેવું જ સ્વીકારવું જોઇએ. નિત્ય આત્માની મોક્ષ એક અવસ્થા છે તો, મોક્ષ પછી પણ નિત્ય આત્માની એના કરતાં કોઇ ભવ્યતર અવસ્થા શા માટે ન માનવી? મોક્ષ આત્માની શકિતઓનો લોપ કરવા માટે નથી. જો આત્માને આનંદનું નિધાન માનવામાં આવે તો એ સદા સુંદર છે એમ માનવું જોઈએ. રમણીયતા અને સુંદરતાનું લક્ષણ એ જ છે કે क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः । હરેક ક્ષણે નવીનતાનું સર્જન કરવું એ રમણીયતા અને સુંદરતાનું લક્ષણ છે.

આથી એ સિદ્ધ થાય છે પ્રકૃતિ (ગુણો) સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ જેમ તેના પરિણામો સાથે નિત્ય છે તેમ અત્મા પણ તેની શકિતઓ સાથે નિત્ય છે. અને શકિતઓ કંઈ એક જ સ્થિતિમાં રહેવા માટે નથી એ તો કંઈને કંઈ આગળ વધવાનું કામ કર્યા જ કરે છે. આથી સ્પષ્ટ જણાય છે કે મુકિતમાં અને મુકિત પછી પણ અત્મા પોતાની શકિતઓને આગળ વધવા કામે લગાડે છે.

અહીં કેટલાઓને એવી શંકા થાય છે કે, જો મુકત આત્માઓ પાછા પ્રકૃતિ અને તેના કાર્યરૂપ શરીર સાથે જોડાય તો ફરીથી તેઓને વગર કારણે બંધનમાં આવવું પડે.

આનો ઉત્તર એ છે કે, કોઇ પણ પ્રાકૃત શરીર આદિ સાથે જોડાઈ પરોપકારને માટે કાર્ય કરવામાં આત્માને બંધનમાં આવવાની જરૂર નથી. બંધનનું કારણ રાગ' દ્વેષ અને મોહ હોય છે. મુકિતમાંથી પાછા આવનારને

આમાંથી કશુંય બંધનનું કારણ હોતું નથી. દાખલા તરીકે:— કેદખાનામાંથી પૂરેપૂરી કેદ ભોગવી મુકત થયેલો માણસ જો ફરીથી કેદખાનું જોવા અથવા તેમાં કંઈ મજુરી કરવા જાય તો તે કેદી બની જતો નથી.

બીજો દાખલો કાદવમાં ખુંચી પડેલા ગાડાને બહાર કાઢવા માટે ગાડાવાળાએ બે મજુરો કરી તેની સાથે મહેનત કરે છે પણ ગાડું કાદવમાંથી બહાર આવતું નથી એટલામાં કોઇ ધનિક સજ્જન ત્યાંથી જતો જણાય છે. અને તે પેલા ત્રણેને મદદ કરવા જોડાઇ જાય છે એટલે ગાડું કાદવમાંથી બહાર નીકળી જાય છે. ગાડાવાળો રાજી થાય છે પેલા બે મજુરોને એની મજુરીના પૈસા આપી દે છે, પણ ધનિક સજ્જનને તે મજુરીના પૈસા આપતો નથી અને જો તે આપે તો તે ધનિક સજ્જન લે પણ નહિ. ગાડાવાળો તો એ ધનિક સજ્જનનો ઉપકાર માને છે અને એ સજ્જન પોતાનું શ્રમદાન કરવાથી મજુર બની જતો નથી. આ ન્યાય મુકત આત્મામાં શા માટે ન ઘટાડવો ?

કોઈ અજ્ઞાની માણસ ન્યાયાધીશની ખુરશી ઉપર બેસી જાય તેથી તે ન્યાયાધીશ થઇ શકતો નથી. આ ઉપરથી સમજવું જોઈએ કે, વસ્તુનો માત્ર સંબંધ બંધન-કર્તા નથી. બંધન કરનાર તો કોઈ જુદી જ વસ્તુ છે કે જે મુકત આત્મામાં નથી.

સનાતની ભકત હિંદુ–આર્યભાઇઓ ભગવાન્ શ્રીકૃષ્ણને શરીરનો સંબંધ માને છે પણ તેથી તેઓ (શ્રીકૃષ્ણ) બંધનમાં

છે એમ સ્વીકારતા નથી. શરીરના સંબંધને લીધે શ્રીકૃષ્ણ ભગવાન દુઃખી, દ્વેષી, કે રોગી બને છે એમ પણ તેઓ માનતા નથી તો, આ માન્યતા પાછળ ભક્ત સનાતની ભાઈઓ પાસે જે કારણ હોય તે મુક્ત આત્મામાં નથી એમ શા માટે માનવું જોઈએ ?

મહર્ષિ દયાનંદ સરસ્વતી તથા યોગી શ્રી અરવિંદ પણ મુક્તિ પછી પણ આત્મા સપ્રયત્ન જ છે અને એ પ્રયત્ન નિષ્પ્રયોજન છે એમ પણ સ્વીકારતા નથી.

શ્રુતિ પ્રમાણ

કોઇ પણ વિદ્વાને શ્રુતિમાંથી એવો મંત્ર હજી સુધી બતાવ્યો નથી કે, જે જણાવતો હોય કે, મુક્તિમાંથી આત્મા પાછો આવે છે અથવા મુક્તિ મેળવ્યા પછી પણ તે આગળ વધવા પ્રયત્ન કરતો હોય. –આવી જિજ્ઞાસાને શમાવવા માટે આ નીચેની શબ્દાવલિઓ ધ્યાન--પૂર્વક વાંચવા વિનતિ છે.

વેદ–વિશારદ સ્નાતકશ્રી સત્યવ્રતજી આ સંબંધે ઋગ્વેદમાંથી અર્થ સાથે એક મંત્ર ઉદ્ધૃત કરે છે કે, જેથી "આત્મા મુક્તિમાંથી પાછો આવે છે." એ સિદ્ધ થાય છે. આ રહ્યો તે મંત્ર.

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्य ममृतत्व मानशे ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥
ऋग्वेद १०–६२–१

પદાર્થ :- જે મહાત્માઓએ (यज्ञेन) યજ્ઞ દેવપૂજા = ઈશ્વરપૂજા, સંગતીકરણ, વિદ્યાસત્સંગ ધન અને સ્વસ્વત્ત્વના ત્યાગથી (दक्षिणया) દાન, પુણ્ય અને કર્મ કુશલતારૂપ નિષ્કામ કર્મથી (इन्द्रस्य) ઐશ્વર્યસંપન્ન પરમાત્માના (अमृतत्त्वं सख्यम्) મોક્ષરૂપ સમાનગુણને (आनशे) પ્રાપ્ત થયેલ છે એવા હે (सुमेधसः) ઉત્તમ ધારણાવતી બુદ્ધિયુક્ત (अङ्गिरसः) જ્ઞાનીઓ (मानवम्) મનુષ્ય સંબંધી શરીરને (प्रतिगृम्णीत) પાછા જઈને પુનઃ ધારણ કરો. (तेभ्यः, वः) એવા તમારું (भद्रम्) કલ્યાણ (अस्तु) થાઓ.

ભાવાર્થ:-યજ્ઞ, દેવ અને ઇશ્વરની પૂજા કરીને વિદ્વાનો અને સાધુ સંતોના સંગમાં આવી જ્ઞાન મેળવી ત્યાગમય જીવન ગાળી, નિષ્કામ કર્મ કરી મુકિત પામેલા હે મુકત આત્માઓ, તમે ધારણાવતી બુદ્ધિ સેવનાર છો, તો સાંસારિક જનોના ઉદ્ધાર માટે માનવ-શરીરને ફરીથી ધારણ કરો. તમારી પ્રવૃત્તિ કલ્યાણમયી હોય છે, તેથી તમારી પવિત્રતામાં કશો વાંધો પડશે નહિ. (ટુંકમાં મંત્રનો ભાવ આ છે.)

ઈશ્વર-અને યોગદર્શન.

યોગદર્શનમાં ઇશ્વરની સત્તા સ્વીકારી છે, અને એક અનાદિ વિશિષ્ટ આત્મા સિવાય બીજો કોઇ અર્થ આત્મા નથી.

અસંખ્યાત આત્માઓમાં એક જ એવો વિશિષ્ટ આત્મા છે કે જે, ઇશ્વર, બ્રહ્મ અને પરમાત્મા વગેરે નામોથી

ઓળખાય છે. આત્મા યોગશાસ્ત્રમાં પુરુષ નામથી પણ ઓળખાય છે. ઇશ્વરનું મુખ્ય નામ પ્રણવ–'ओम्' છે. યોગને મેળવવા માટે યોગીએ પ્રણવને। જપ અને તેના અર્થની ભાવના સતત કરવી જોઇએ. જેને આત્માને જાણવાની તાલાવેલી લાગી હોય તેણે પણ પ્રણવને। જપ અને તેના અર્થની ભાવના સતત કરવી જોઇએ.

મહામુનિ કપિલ પણ स हि सर्ववित्, सर्वकर्ता । સાં. દ. ૩–૫૬ ઇશ્વર 'સર્વને જાણનાર' અને 'સર્વને। કર્તા છે.' એમ સ્વીકારે છે.

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा । સાં. દ. ૩–૫૭ આવા ઇશ્વરની સિદ્ધિ તો સિદ્ધ જ છે. આમ કહી મહર્ષિ કપિલ ઇશ્વર સ્ત્રી બાળકવાળો નથી એમ સૂચવે છે આની ઉપર પૌરાણિક લોકોએ ધ્યાન આપવાની જરૂર છે.

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा ૨–૫–૧૨. કઠોપનિ. પરમાત્મા એક જ છે. સર્વને વશમાં રાખનાર છે અને તે સર્વભૂતોને। અન્તરાત્મા છે.

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । ૩–૫ તૈત્તિરીય ઉપ. જેનાથી આ ભૂતો ઉત્પન્ન થાય છે, જીવન જીવે છે અને પછી જેની શકિતથી વિલીન થઇ જાય છે તેને જાણવાની તું ઇચ્છા કર તે બ્રહ્મ છે. આ પ્રમાણે ઉપનિષદો પણ કહે છે.

स्वोपकारादधिष्ठानम् लोकवत् । સાંખ્ય. દ. ૫–૩ પ્રકૃતિને ગતિમાં મૂકી પરમાત્મા પર ઉપકાર કરે છે તેથી પરમાત્માનું પ્રકૃતિ ઉપર અધિષ્ઠાન છે.

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता। ५-११६. સાં. દ. સમાધિ, સુષુપ્તિ અને મોક્ષદશામાં જીવાત્મા બ્રહ્મના જેવો થઈ રહે છે એટલે કે પાપ, પુણ્ય, રાગ, દ્વેષ આદિથી રહિત હોય એવો જણાય છે, આ થઇ ભગવાન મહામુનિ કપિલની ઈશ્વરવિષેની માન્યતા.

મુનિ પંતજલિ ઇશ્વરના સંબંધે વધારે વિશદતાથી આ પ્રમાણે કહે છે.

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। ૧-૨૪ યો. દ:

આત્મા માત્ર પુરુષ છે. આ પુરુષોમાં એક વિશિષ્ટ પુરુષ ઇશ્વર છે. કારણ કે આ વિશિષ્ટ પુરુષ ક્લેશ, કર્મ, વિપાક અને આશયના સંબંધમાં કદી પણ આવ્યો નથી, આવવાનો નથી એ સર્વદા શુદ્ધ જ છે.

એ પુરુષ વિશેષનો કોઈ પણ ગુરુ નથી એ પોતે જ સર્વના અનાદિ સિદ્ધ ગુરુ છે.

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। यो. द. १-२६

એ ઇશ્વર પૂર્વ થઇ ગયેલા ઋષિ, મુનિઓ અને અચાર્યોનો પણ ગુરુ છે. સર્વકાળમાં તે એક જ સ્વરૂપે અર્થાત્ સર્વજ્ઞ સ્વરૂપે રહે છે.

तस्य वाचकः प्रणवः। यो. द. १-२७

તે પુરુષવિશેષનું નામ 'પ્રણવ' છે પ્રણવ=ओम्. ઇશ્વરમાં નિત્યજ્ઞાન અને નિત્ય પ્રયત્ન હોય છે એથી તેનું જ સમસ્ત જગત ઉપર કર્તૃત્વ છે.

આ પ્રમાણે મુનીશ્વર કપિલ તથા મુનીશ્વર પતંજલિએ ઈશ્વરની સાચી વ્યાખ્યા આપી છે. આ ઈશ્વર જગતનું નિમિત્તકારણ છે. અને પ્રકૃતિ ઉપાદાન કારણ છે. જેઓ ઉપાદાનકારણતા અને નિમિત્તકારણતા એક જ બ્રહ્મમાં અથવા ઇશ્વરમાં અભિન્નરૂપે માને છે તેઓ વ્યામોહના માર્ગમાં છે.

'યોગ' ચિત્તનો ધર્મ છે કે આત્માનો? ચિત્તની વૃત્તિઓનો નિરોધ થવો એ યોગ છે. વૃત્તિઓ એ જ્ઞાન છે એમ નૈયાયિકો માને છે. વૃત્તિઓ વગર જ્ઞાન ન થાય એમ પતંજલિમુનિના મતને અનુસરનારા પણ માને છે. આત્મા મન અને ઇંદ્રિયોનો વિષય સાથે સંનિકર્ષ થવાથી જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે અને તે જ્ઞાન આત્મામાં જ રહે છે આથી નૈયાયિકો આત્માને જ્ઞાનનું અધિકરણ માને છે. જ્યાં જ્ઞાન હોય ત્યાં જ તેનો નાશ પણ વિભિન્ન કાળમાં હોય છે. નાશ એટલે કાર્ય અર્થનો કારણમાં લય થવો તે. આ કારણથી નૈયાયિકો આત્મા જ યોગનું અધિકરણ છે એટલે કે વૃત્તિઓના નિરોધનું અધિકરણ આત્મા છે અને તેથી યોગ આત્માનો ધર્મ છે એમ ન્યાયનિષ્ણાતો માને છે. મુનિશ્રી પતંજલિના અનુયાયી યોગ ભાષ્યકાર વ્યાસદેવ વગેરે 'યોગ ચિત્તનો ધર્મ છે' એમ માને છે. આ બંને પક્ષમાં કોઈ મહત્ત્વનો ભેદ જણાતો નથી. માત્ર પ્રક્રિયાની ભિન્નતાને લીધે આમ જણાય છે.

યોગનું બીજું નામ સમાધિ છે. યોગ બે પ્રકારના

છે. એક સંપ્રજ્ઞાત યોગ અને બીજો અસંપ્રજ્ઞાત યોગ. સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં એક જ વિષયવાળી વૃત્તિ લાંબા કાળ સુધી રહે છે. અને એ વૃત્તિમાં સત્ત્વગુણોનો જ પ્રધાન ભાગ હોય છે. અસંપ્રજ્ઞાત યોગમાં બધી જ વૃત્તિઓનો નિરોધ હોય છે. યમ, નિયમ આદિ આઠ યોગના અંગો ઉપર વિજય મેળવ્યા વિના 'યોગ' પ્રાપ્ત થઈ શકતો નથી આ અંગોનું પાલન માનવતા ઘડવામાં બહુ ઉપયોગી છે માટે પૂર્ણ યોગ ન મેળવી શકનાર પણ અંગોના પલનથી પોતાનું કલ્યાણ સાધી શકે છે. અને માનવ-સમાજનું પણ કલ્યાણ કરી શકે છે, માટે સર્વ કોઈએ યોગમાર્ગમાં પ્રયત્ન કરવાની જરૂર છે. પાતંજલ યોગ એ 'રાજયોગ યોગ' કહેવાય છે. બીજો હઠયોગ હોય છે તેમાં વિવિધ હઠ-ક્રિયાઓ કરવી પડે છે.

સાંખ્યદર્શન કરતાં પાતંજલ યોગદર્શનમાં વિશેષ શું? ધર્મપરિણામ, લક્ષણ પરિણામ અને અવસ્થા પરિણામ હરેક ભૌતિક અર્થમાં છે. એમ મુનિ પતંજલિ બતાવે છે આ સંબંધે સાંખ્યદર્શનમાં કશું જણાતું નથી.

મુનિ પતંજલિ શબ્દને 'બુદ્ધિગ્રાહ્ય' જણાવે છે. કાન સાથે જે અથડાય છે તે તો માત્ર ધ્વનિઓ છે. આ ધ્વનિઓનું કામ સ્ફોટ રૂપ શબ્દ ઉપર પડેલું આવરણ દૂર કરવાનું હોય છે. આવરણ દૂર થતાં સાથે જ બુદ્ધિ તેને પકડે છે શબ્દનો અર્થ તુરત જાણી લે છે.

આવા આવા સૂક્ષ્મભેદો સાંખ્ય અને યોગદર્શનમાં છે જેને અભ્યાસીઓ સમજી શકે છે.

યોગદર્શન એ માનસશાસ્ત્ર છે.

બીજી રીતે જોતાં પાતંજલ યોગદર્શન અદ્‌ભુત માનસ શાસ્ત્ર છે. મન અને ચિત્ત એક જ વસ્તુ છે. એથી શાસ્ત્રકાર કોઈ વખત ચિત્ત અને કોઈ વખત મનનો પ્રયોગ એક જ અર્થમાં કરે છે. કાર્ય અને કારણના અભેદ સંબંધને લીધે પણ આમ હોય.

ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિ પછીના ભારતીય વિદ્વાનોએ આ શાસ્ત્રમાં ઉપેક્ષા સેવી છે. મુસ્લીમ રાજ્ય વખતે મુસ્લીમ અને અંગ્રેજોના રાજ્ય વખતે અંગ્રેજી શાસ્ત્રો ભણવામાં વિદ્વાનોએ વખત ગાળ્યો છે અને તેઓનું વિદ્યા મેળવવાનું કેન્દ્રસ્થાન ધન જ રહ્યું છે. પણ અધ્યાત્મ શાસ્ત્રના જ્ઞાન વગર ભૌતિક શાસ્ત્રનું જ્ઞાન પંગુ તેમ જ અશાંતિ જન્માવનારૂં રહેવાનું છે એ ચોકકસ છે.

મુનિ પતંજલિનો સમય

મુનિ પતંજલિ પહેલી કે બીજી ઈ. સ. શતાબ્દીમાં હોવા જોઇએ ચંદ્રગુપ્ત અને ચાણુક્યના પૂર્વ નિકટવર્તી જણાય છે. મુનિ પતંજલિએ વ્યાકરણ, વૈદ્યક અને યોગદર્શન રચી માનવજાતિનાં વાણી, દેહ અને મનને પવિત્ર બનાવી દીધાં છે તે આ બે શ્લોકો ઉપરથી વિદિત થાય છે.

"योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥"

આ પદ્યનો રચનાર કોણ છે? તે મારા જાણવામાં આવ્યું નથી. પણ આવું ઉદ્ધરણ વિદ્વાનો કરતા આવ્યા છે. બીજું પ્રમાણ આ છે.

शब्दाना मनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता ।
वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके ॥
वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृत
स्तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपते र्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः ॥

પાતંજલ યોગદર્શનની ભોજવૃત્તિની પ્રસ્તાવનામાં આ પદ્ય છે. તેમાં જણાવ્યું છે કે, જેમ પતંજલિએ વ્યાકરણ, વૈદ્યક શાસ્ત્ર અને યોગદર્શન લખી માનવીઓનાં વાણી, મન અને શરીરના મેલ દૂર કર્યા છે, તેમ મેં (ભોજ રાજાએ) પણ એ ત્રણે ગ્રંથો ઉપર ટીકા ગ્રંથો લખી ત્રણે પ્રકારના મેલ દૂર કરવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે. ભોજરાજાનું બીજું નામ 'રણરંગમલ્લ' હોય એમ જણાય છે. અથવા રાજા ભોજ રણયુદ્ધ ખેલવામાં અદ્વિતીય શક્તિશાળી હોય એમ પણ જણાય છે.

મુનિ પતંજલિની ગુરુભક્તિ

મુનિશ્રી પતંજલિનો ગુરુઓ અને વિદ્વાનો તરફ આદર ભાવ અજોડ હતો, મહાવૈયાકરણ પાણિનિની અષ્ટાધ્યાયી ઉપર એમણે લખેલા મહાભાષ્યમાં આ પ્રમાણે ઉલ્લેખ છે.

"प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचाववकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म, तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुम्, किं पुनरियता सूत्रेण"

महाभाष्य आ. १-१-१.

અર્થ:– મહામુનિશ્રી પાણિનિ પ્રમાણને વરેલા આચાર્ય હતા. ધાર્મિક કાર્યોમાં દર્ભનો ઉપયોગ કરવાથી જેના હાથ પવિત્ર બન્યા હતા અને તેઓશ્રી પવિત્ર સ્થાનમાં પૂર્વાભિમુખ બેસીને સંપૂર્ણ એકાગ્રતા રાખી મહાન પ્રયત્નથી સૂત્રો લખતા હતા, એ સૂત્રોમાં એક અક્ષર પણ અનર્થક હોવાની શકયતા નથી, તો પછી આખું સૂત્ર 'वृद्धिरादैच्' નકામું હોવું એ કયાંથી શકય હોય ?

આમ કહી એ સૂત્ર ઉપર પૂર્વપક્ષવાદીના જે જે હેતુઓ હતા, તેનો નિરાસ કરી સુંદર ભાષ્ય લખ્યું છે. શું આ લેખ મહામુનિશ્રી પાણિનિ ઉપર અનન્ય ભક્તિ નથી બતાવતો ?

પૂર્વપક્ષવાદી વિદ્વાનોને પણ તેઓ 'तत्र भवान्' પૂજ-નીય આચાર્ય કહીને સંબોધે છે. આ વિનય એમની વિદ્યાને શોભાવી રહ્યો છે.

આ ભૂમિકા હું પૂરી કરું તે પહેલાં શ્રી વેદવિશારદ સ્નાતક શ્રી સત્યવ્રતજીનો મહાન્ આભાર માન્યા વગર રહી શકતો નથી, જો એમનો ગૌરવ ભર્યો સહકાર મને ન મળ્યો હોત તો હું આ તથા બીજાં ભાષ્યો ન કરી શકયો હોત. ઇતિ.

ચરોતર પ્રદેશ
આર્યસમાજ
આણંદ

પં. મયાશંકર શર્મા
દર્શનાચાર્ય.

ओ३म्

પાતંજલ યોગદર્શન

[ગુજરાતી ભાષ્યસહિત]

प्रणम्य परमात्मानं क्लेशादिरहितं सदा ।
पतञ्जलिं मुनीशं च योगभाष्यं वितन्यते ॥ १ ॥
योगस्य सन्ति भाष्याणि भाषायामपि धीमताम् ।
तथापि मम यत्नोऽय मीशाराधनमेधताम् ॥ २ ॥

મહામુનિ પતંજલિએ આ યોગશાસ્ત્રની રચના કરી છે, એ વૈદિક છ દર્શનોમાંનું એક દર્શન તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. આ દર્શન ઉપર વ્યાસમુનિએ અતિગંભીર અને વિસ્તાર સાથે સુંદર ભાષ્ય લખ્યું છે અને એ ભાષ્યને સમજાવતી શ્રી વાચસ્પતિ મિશ્રની 'તત્ત્વવૈશારદી' નામની સુંદર ટીકા પણ પ્રસિદ્ધ છે. શ્રી ભોજરાજાએ પણ આ યોગશાસ્ત્ર ઉપર સરલ અને ગંભીર 'વૃત્તિ' લખી છે. બીજા મહાન્ વિદ્વાનોએ પણ આ શાસ્ત્ર ઉપર ટીકાઓ તથા ભાષ્યો લખ્યાં છે, આ બધું લખાણ મોટે ભાગે સંસ્કૃત ભાષામાં છે. ગુજરાતી ભાષામાં પણ ઘણા વિદ્વાનોએ આ દર્શનને સમજાવવા પ્રયત્ન કર્યો છે. છતાં મારો આ પ્રયત્ન આત્મસંતોષ માટે છે. વાચક

મહાનુભવોને જો આમાં થોડો ઘણો પણ રસ પડશે તો મારા આત્મસંતોષમાં વૃદ્ધિ થશે. યોગદર્શનનું પહેલું સૂત્ર આ પ્રમાણે છે.

अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

પદાર્થ:—(अथ) આ શબ્દ યોગશાસ્ત્રના આરંભને સૂચવે છે (योगानुशासनम्) યોગનું શાસ્ત્ર શરૂ કરવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—અનુશાસનનો અર્થ શાસ્ત્ર થાય છે. અને એ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે– अनुशिष्यते सत्यं येन तत् 'अनुशासनम्' જેનાથી સત્ય સમજાવવામાં આવે તે શાસ્ત્ર. આ દર્શન 'યોગ'ને સમજાવે છે માટે આનું નામ 'યોગશાસ્ત્ર' છે. યોગ શબ્દના બે અર્થ થાય છે, જોડાવું અને સમાધિ. આ સિવાય બીજા અર્થો પણ યોગ શબ્દના છે તે શબ્દકોષમાંથી જાણી શકાય છે. આ સૂત્રમાં જે 'યોગ' શબ્દ વાપર્યો છે, તેનો અર્થ તો 'સમાધિ' જ થાય છે. युज=समाधौ આ ધાતુથી યોગ શબ્દ બને છે. સમાધિ ચિત્તની જ કરવાની હોય છે કારણ કે ચિત્તમાંથી જ વૃત્તિઓના પ્રવાહો વહ્યા કરે છે. આત્મામાં જે અશાંતિ, સુખ અને દુ:ખ વગેરે જણાય છે અથવા અનુભવાય છે તે તો ચિત્તમાંથી નીકળતી વૃત્તિઓને લીધે છે. જો આ વૃત્તિઓને રોકી શકાય તો ચિત્ત એક પ્રશાંત મહાસાગર જેવું બની રહે. વૃત્તિઓ ચિત્તમાં સમાઈ જાય છે, જેમ કાચબાનાં અંગો કાચબાના શરીરમાં સમાઈ

જાય છે તેમ. આ કારણથી યોગ ચિત્તનો ધર્મ છે, આત્માનો નહિ.

યોગની ચાર ભૂમિઓ છે. (૧) મધુમતી (૨) મધુપ્રતીકા (૩) વિશોકા અને (૪) સંસ્કારશેષા. આ ચારેય ભૂમિકાઓમાં જણાતો યોગ "સાર્વભૌમ યોગ" કહેવાય છે.

ઉપનિષદમાં પણ યોગના સંબંધમાં જણાવ્યું છે કે

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥

(કઠ. ઉપ. અ. ૨. વ. ૩. મં–૧૦–૧૧.)

અર્થ:—જ્યારે પાંચ પ્રકારની જ્ઞાનવૃત્તિઓ મનની સાથે એકરૂપ બની સ્થિર થાય છે, બુદ્ધિ પણ ચેષ્ટા ન કરે ત્યારે એ અવસ્થાને 'યોગ' કહે છે, 'પરમગતિ' પણ કહે છે, અને ઇંદ્રિયોની સ્થિર થયેલી ધારણા પણ કહેવામાં આવે છે.

શિષ્ય : 'શાસન'નો અર્થ પણ શાસ્ત્ર થાય છે તો પછી એ શબ્દની પહેલાં 'અનુ' શબ્દ શામાટે જોડ્યો છે?

ગુરુ : અનુ + શાસન = અનુશાસન. અહીં 'અનુ' શબ્દનો અર્થ 'પછીથી' એવો થાય છે, એટલે અર્થ એવો સમજાય છે કે મુનિશ્રી પતંજલિના પહેલાં પણ યોગ તો હતો જ અને તેનું પઠન પાઠન પણ ચાલતું હતું. મહર્ષિ યાજ્ઞવલ્ક્યે કહ્યું છે કે 'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः' હિરણ્યગર્ભ ઋષિએ સૌથી પહેલાં યોગનો ઉપદેશ કર્યો

હતો. ગીતામાં શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને પણ ગાયું છે કે, મેં પહેલાં વિવસ્વાનને યોગનો ઉપદેશ કર્યો હતો. યમાચાર્યે પણ નચિકેતાને યોગ શીખવાડ્યો હતો એવું કઠોપનિષદમાં જણાવ્યું છે. संप्राप्यैन मृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः । ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति । મુ. ૩૫. ૩–૨–૫ અહીં युक्तात्मानः પદનો અર્થ એવો થાય છે કે, જેમણે યોગને સિદ્ધ કર્યો છે તેઓ, વીતરાગ ઋષિઓ સર્વવ્યાપક પરમાત્માને પ્રાપ્ત થયા છે. યોગીઓ પરમાત્માનું અને આત્માનું જ્ઞાન મેળવી કૃતકૃત્ય બને છે, રાગ-દ્વેષથી રહિત થઈ જાય છે અને શાંતિનિષ્ઠ થઇ પર બ્રહ્મનો સાક્ષાત્કાર કરી શકે છે. આ પ્રમાણે મુંડક ઉપનિષદમાં પણ યોગનો ઉલ્લેખ છે. શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદમાં તો યોગના ઉપદેશનું આખું પ્રકરણ જ રોકાયું છે. વેદમાં પણ યોગનો ઉપદેશ છે.

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्राः
विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
विहोत्रा दधे वयुनाविदेक इन्महि
देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥

(ઋગ્વેદ મં. ૫. સૂ. ૮૪. મં ૧.)

અર્થ: ઈશ્વરના ઉપાસક યોગીઓ મનને યોગયુકત કરે છે અને વૃત્તિઓનો નિરોધ કરે છે ઈત્યાદિ.

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय.........

અર્થ: યોગ કરનારા મનુષ્યો આત્મા અને બ્રહ્મજ્ઞાન મેળવવા માટે પહેલાં મનને યોગયુક્ત કરે છે.

(યજુર્વેદ–૧૧–૧)

આથી સ્પષ્ટ થાય છે કે, મહામુનિ પતંજલિના પહેલાં પણ યોગનું શિક્ષણ ચાલુ હતું. યોગ તો સનાતન છે. મહર્ષિ પતંજલિને પ્રયત્ન તો યોગને તત્વજ્ઞાનની ભૂમિકા ઉપર મૂકી યોગનું એક વિશિષ્ટ શાસ્ત્ર બનાવવામાં જણાય છે. ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિએ યોગનાં સૂત્રોને ખૂબ બારીકાઇથી સમજાવ્યાં છે. આથી મહર્ષિ પતંજલિએ યોગનું અનુશાસન કર્યું છે, પ્રાથમિક યોગશાસન નહિ, એમ સ્પષ્ટ સમજાય છે.

શિષ્ય:– યોગ ચિત્તને ધર્મ હોવાના સંબંધમાં સૂત્રકાર મુનિ પતંજલિએ કશું કહ્યું નથી. તો પછી યોગ આત્માને ધર્મ છે એમ માનવામાં વાંધો શો છે?

ગુરુ:– તારી વાત સાચી છે, સૂત્રકારે ભલે એ સંબંધમાં કશું ન જણાવ્યું હોય પણ યોગદર્શનના ભાષ્યકાર વ્યાસ મુનિએ તો પોતાના ભાષ્યમાં સ્પષ્ટ કહ્યું છે કે યોગ ચિત્તને ધર્મ છે. વ્યાસ મુનિ સૂત્રને મર્મ જેટલો જાણતા હોય તેટલો બીજા ન પણ જાણી શકે. વ્યાસમુનિ સૂત્રથી વિરુદ્ધ કશું પણ ન ઉપદેશે એ પણ સ્પષ્ટ છે. 'ચિત્ત' શું છે તે તો આગળ સમજાવવામાં આવશે. મુનિ પતંજલિએ યોગના પાયાનાં તત્ત્વો મહર્ષિ કપિલે સાંખ્યશાસ્ત્રમાં જણાવ્યાં છે તે જ સ્વીકાર્યાં છે, એટલે સાંખ્યશાસ્ત્રમાં

ભાવાર્થ: યોગ બે પ્રકારના છે (૧) સંપ્રજ્ઞાત યોગ (૨) અસંપ્રજ્ઞાત યોગ. આ બંને યોગો આ સૂત્રમાં બતાવેલા લક્ષણના લક્ષ્ય છે. અસંપ્રજ્ઞાત યોગમાં બધીય વૃત્તિઓનો નિરોધ હોય છે અને સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં એક સાત્વિક વૃતિ રહે છે, એટલે કે એમાં બધીય વૃત્તિઓનો નિરોધ હોતો નથી. યોગનું લક્ષણ સૂત્રમાં ચિત્તવૃત્તિઓનો નિરોધ છે. સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં એક વૃત્તિ રહે છે તેથી તેમાં સૂત્રમાં કહેલું લક્ષણ જતું નથી માટે લક્ષણમાં (અવ્યાપ્તિ) નામનો દોષ આવે છે એટલે કે લક્ષણ બરાબર થયું નથી.

આ શંકાનું પ્રથમ સમાધાન એ છે કે શાસ્ત્રકારે સૂત્રમાં 'સર્વવૃત્તિઓનો નિરોધ હોવો' એનું નામ યોગ છે એમ તો કહ્યું નથી. સૂત્રમાં સર્વ શબ્દનો પ્રયોગ જ નથી, માટે સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં એક સાત્વિક વૃત્તિ હોવા છતાં બીજી બધી વૃત્તિઓનો નિરોધ હોય છે તેથી સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં લક્ષણ જઈ શકે છે આથી સૂત્રોક્ત લક્ષણ નિર્દોષ છે.

બીજું સમાધાન આ પ્રમાણે પણ થઈ શકે છેઃ—કલેશ, કર્મ વિપાક અને આશયોને ઉત્પન્ન કરનારી ચિત્ત-વૃત્તિઓનો નિરોધ થવો તેનું નામ 'યોગ' છે. સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં રહેલી સાત્વિકી વૃત્તિ કલેશ, કર્મ વિપાક અને આશયને ઉત્પન્ન કરતી નથી માટે સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં પણ વૃત્તિઓનો નિરોધ છે એમ માનવામાં કશો પણ દોષ નથી.

'ચિત્ત' સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ આ ત્રણ ગુણોનું બનેલું છે કારણ કે ચિત્ત મૂળ પ્રકૃતિમાંથી બનેલું છે અને

મૂળપ્રકૃતિ ત્રણ ગુણવાળી છે. कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः કારણના ગુણો કાર્યમાં આવે છે એવો નિયમ છે માટે 'ચિત્ત' ત્રિગુણાત્મક છે.

ચિત્તમાં સત્વ ગુણ છે, તેથી તેમાં જ્ઞાન, લઘુતા (હલકાપણું) અને પ્રીતિ વગેરે પરિણામો થાય છે.

વળી ચિત્તમાં રજોગુણ છે તેથી તેમાં પ્રવૃત્તિ, પરિતાપ, શોક અને દુઃખ વગેરે પરિણામો થાય છે.

અને ચિત્તમાં તમોગુણ પણ છે તેથી તેમાં મોહ, ગુરુતા (ભારેપણું) અજ્ઞાન અને આવરણ વગેરે થાય છે.

ત્રણેય ગુણોના પરિણામો બહુ સંખ્યામાં થાય છે તેને ભાષામાં ઘણી વખત 'લાગણીઓ' એવું નામ પણ આપવામાં આવે છે.

સાંખ્યશાસ્ત્ર અને યોગશાસ્ત્રમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે 'ચિત્ત' મૂલ પ્રકૃતિનું પ્રાથમિક પરિણામ છે અને તે બહુ મહત્ત્વનું છે. વૃત્તિઓના આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ તેમાં થયા જ કરે છે, સમુદ્રમાં જેમ તરંગો ઊઠયા કરે છે તેમ.

સર્વ ભૂત ભૌતિક કાર્યો તથા અહંકાર આદિ આધ્યાત્મિક કાર્યોનું મૂળ કારણ ચિત્ત જ છે. ચિત્તનું બીજું નામ 'બુદ્ધિતત્ત્વ' છે.

ચિત્તનો સત્વ ગુણ જ્યારે રજોગુણ અને તમોગુણથી દબાયેલો હોય છે ત્યારે માણસને ઐશ્વર્યવાળા થવું ગમે છે, જ્યારે સત્વગુણ એકલા તમોગુણથી દબાયેલો હોય છે ત્યારે માણસમાં અજ્ઞાન, આસક્તિ, અધર્મ અને અશક્તિ વગેરે જણાય છે.

જ્યારે ચિત્તનો સત્વગુણ રજોગુણની અલ્પમાત્રાથી જોડાયલો હોય છે ત્યારે માણસને પોતાની આસપાસ સર્વત્ર જ્ઞાનનો પ્રકાશ જણાય છે, મોહ, મૂંઝવણ વગેરે દૂર થયેલાં લાગે છે, ધર્મ અને અનાસક્તિ વગેરે એને પ્રિય લાગે છે તથા પોતામાં શક્તિ અને ઐશ્વર્યનું અમાપ બળ જણાવા લાગે છે.

ચિત્ત જ્યારે રજોગુણની તથા તમોગુણની અલ્પમાત્રાથી પણ રહિત થાય છે ત્યારે માણસ સાચો યોગી થયેલો હોય છે. એ યોગીનું ચિત્ત વૃત્તિરૂપ પરિણામોથી રહિત હોય છે. એનો આત્મા સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત બનેલો હોય છે. પ્રકૃતિ અને પુરુષને એ સ્પષ્ટ રીતે અલગ થયેલાં જોઈ શકે છે. એટલે કે તેને પ્રકૃતિનો સાક્ષાત્કાર થાય છે અને પુરુષનો પણ સાક્ષાત્કાર થાય છે. ચિત્ત પોતે 'ધર્મમેઘ' નામની સમાધિને પામેલું હોય છે. 'ધર્મમેઘ' સમાધિનું વર્ણન આગળ શાસ્ત્રકાર પોતે જ કરશે. જુઓ અ. ૪. સૂત્ર ૨૮. ધર્મમેઘ સમાધિવાળા સૌથી ઉત્તમ યોગીને જે જ્ઞાન હોય છે તે 'ઋતંભરા પ્રજ્ઞા'ના નામથી ઓળખાય છે. એ જ્ઞાનમાં સત્ય સિવાય બીજું કશુંય હોતું નથી. સંશય અને ભ્રમનું એમાં સ્થાન હોતું નથી.

પ્રશ્નઃ—સમાધિ, યોગ, જ્ઞાન તથા બીજા ગુણો જ્યારે ચિત્તમાં છે, તો પછી 'આત્મા'નો ઉપયોગ શો છે? આત્માનું લક્ષણ અને સ્વરૂપ યોગશાસ્ત્રની દૃષ્ટિએ શું છે?

ઉત્તરઃ—યોગશાસ્ત્રમાં આત્માને જ 'ચેતન' કહ્યો છે અને ચૈતન્ય એ જ એનું સ્વરૂપ અને લક્ષણ છે. આત્માનું

બીજું નામ યોગશાસ્ત્રમાં ' ચિત્-શક્તિ ' તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. યોગશાસ્ત્રના નિષ્ણાતોએ ' ચિત્-શક્તિ 'નું સ્વરૂપ આ નીચે પ્રમાણે બતાવ્યું છેઃ—

(૧) ચિત્-શક્તિમાં કોઇ પણ જાતનું પરિણામ થતું નથી માટે એ ' અપરિણામિની ' શકિત છે અર્થાત્ એ શકિત અનાદિઅનંત અને અપરિણામી આત્મા છે.

(૨) ચિત્-શક્તિ ' અપ્રતિસંક્રમા ' છે એટલે કે તે પોતે વિષય તરફ ગમન કરતી નથી.

(૩) ચિત્-શકિત ' દર્શિતવિષયા ' છે એટલે કે ચક્ષુ આદિ ઇંદ્રિયો અને બુદ્ધિ ચિત્-શકિતને વિષયો બતાવે છે. વિશુદ્ધ આત્મા અર્થાત્ ચિત્ત અને ઇંદ્રિયોના સંબંધ વગરનો આત્મા વિષયનો ઉપભોગ કરી શકતો નથી.

(૪) ' ચિત્-શકિત ' શુદ્ધ છે એટલે કે સત્વ, રજસ્ અને તમસ એ ત્રણે ગુણોથી રહિત છે. ખરી રીતે આત્મા ભૌતિક સુખ, દુઃખ અને મોહ વગેરેથી રહિત છે.

(૫) 'ચિત્શક્તિ' અનંત છે એટલે કે તેનો કદી પણ નાશ થતો નથી. આત્મા અવિનાશી છે.

આ ચિતિશક્તિના સંબંધ વગર પ્રકૃતિ અને તેનું કાર્ય બુદ્ધિ વગેરે જડ છે. જડમાં ગતિ ચિત્શક્તિના સંબંધથી આવે છે. આ કારણથી ચિત્શક્તિનો અર્થાત્ આત્માનો સાક્ષાત્કાર કરવો જરૂરી છે.

આત્માથી બુદ્ધિ જુદી છે અને બુદ્ધિના ધર્મો આ પ્રમાણે છેઃ—

(૧) 'બુદ્ધિ' પરિણામવાળી છે. બુદ્ધિમાંથી વૃત્તિઓ આવિર્ભાવ પામે છે અને એ વૃત્તિઓ વિષયના આકારને ધારણ કરે છે તથા ચેતનસ્વરૂપ આત્માના સંબંધમાં આવી તે જ્ઞાનનો આકાર પામે છે એટલે તે જ્ઞાન કહેવાય છે. જ્ઞાન એ બુદ્ધિના સત્વગુણનું પરિણામ છે.

(૨) 'બુદ્ધિ' પ્રતિસંક્રમા છે એટલે કે એ પ્રતિસંક્રમણ કરે છે અર્થાત્ વિષય તરફ ગમન કરે છે.

(૩) 'બુદ્ધિ' દર્શિતવિષયા નથી પણ બુદ્ધિ પોતે જ ઇંદ્રિયો દ્વારા વિષયોને મેળવી ચિત્શક્તિને વિષયોનું દર્શન કરાવે છે.

(૪) 'બુદ્ધિ' શુદ્ધ નથી કારણ કે એ ત્રિગુણાત્મક છે; રજોગુણ અને તમોગુણનો સંબંધ હોવો એ બુદ્ધિની અશુદ્ધિ છે.

(૫) 'બુદ્ધિ' અનંત નથી એટલે કે તે અવિનાશી નથી અર્થાત્ અન્તવાળી છે, વિનાશ પામનારી છે બુદ્ધિ પ્રકૃતિમાંથી આવિર્ભાવ પામે છે અને પાછી તે પ્રકૃતિમાં જ લીન થઈ જાય છે. આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ બુદ્ધિના ધર્મ છે.

ચિત્–શક્તિ અને ચિતિશક્તિ આ બે શબ્દો એક જ અર્થના વાચક છે. અને તેનો અર્થ 'આત્મા' જ છે. માટે કોઇ વખત ચિત્–શક્તિ અને કોઈ વખત ચિતિ–શક્તિ પણ લખાય છે અને બોલાય છે.

આ પ્રમાણે ચિતિશક્તિ (આત્મા) અને બુદ્ધિમાં ભેદ રહેલો છે. યોગીએ યોગને પ્રાપ્ત કરી આત્માનો અવશ્ય સાક્ષાત્કાર કરવો જોઈએ. ઉપનિષદોમાં પણ કહ્યું છે કે आत्मा द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः આત્માનું શ્રવણ અને મનન કરતા રહેવું અને છેવટે તેનો સાક્ષાત્કાર કરવો જ જોઈએ. આત્મજ્ઞાન અને પ્રાકૃતિક જ્ઞાન અર્થાત્ વિજ્ઞાન બંને જેણે મેળવ્યાં છે તે જ સાચો જ્ઞાની અને યોગી છે.॥૨॥

જ્યારે ચિત્તની બધી વૃત્તિઓનો નિરોધ થઈ જાય ત્યારે ચિત્તમાંથી કોઈ પણ વૃત્તિ ઊઠતી નથી, તે વખતે ચિત્ત નિસ્તરંગ મહોદધિના જેવું થઈ રહે છે, એ તો સમજમાં આવ્યું, પણ તે વખતે આત્મા કેવા સ્વરૂપમાં જણાય છે? સુખાકાર દુઃખાકાર મોહાકાર, મનુષ્યાકાર અને જ્ઞાની વગેરે આકારને જ્યારે વૃત્તિ ધારણ કરે ત્યારે જ આત્મા તેની ઓથે સુખી દુઃખી, મોહી, મનુષ્ય અને જ્ઞાની વગેરે રૂપે જણાય છે. કોઈ પણ ઉપાધિ વગર આત્મા જાણી શકાતો જ નથી. હું આત્મા છું આવો અનુભવ તો કોઇને થતો જ નથી. આ કારણથી પુરુષ અર્થાત્ આત્મા બુદ્ધિબોધાત્મા એટલે કે બુદ્ધિના બોધ-સ્વરૂપ કહેવાય છે. વૃત્તિ થયા વગર યોગી આત્માને કેવી રીતે જાણે? આથી વૃત્તિને લીધે ઉત્પન્ન થતું જ્ઞાન જ પુરુષનો સ્વભાવ છે એમ માનવું જોઇએ. જેમ પ્રકાશરૂપ સ્વભાવ વગર સૂર્ય જાણી શકાતો નથી તેમ વૃત્તિજન્ય જ્ઞાન વગર આત્મા અનુભવી શકાતો નથી અને જેનો અનુભવ ન થાય તેની સત્તા સ્વીકારવી એ ખોટું છે.

આ શંકાનો ઉત્તર એ છે કે આત્માનાં બે સ્વરૂપ છે: એક ઔપાધિકસ્વરૂપ અને બીજું સ્વાભાવિકસ્વરૂપ. સાંસારિક અવસ્થામાં આત્મા હમેશાં ઔપાધિકરૂપમાં જ ઓળખાય છે. જેમ કે, હું મનુષ્ય છું, હિંદુ છું, મુસ્લીમ છું, અંગ્રેજ છું, વિદ્વાન છું વગેરે. આ ઔપાધિકરૂપ અનિત્ય છે. બીજું આત્માનું સ્વાભાવિકરૂપ છે તે કેવળ ચૈતન્યરૂપ છે અને તેનો અનુભવ યોગીને અસંપ્રજ્ઞાત યોગમાં થાય છે. લાલ ફૂલને લીધે સફેદ હીરો જે લાલ જણાય છે, તે લાલાશ હીરા પાસેથી લાલ ફૂલ દૂર થતાં દેખાતી મટી જાય છે તેથી હીરો સ્વરૂપ વગરનો છે એમ ન કહેવાય. ફૂલ આદિ ઉપાધિ ન હોય ત્યારે હીરો પોતાના શુદ્ધ શુક્લરૂપે પ્રકાશે છે તેમ આત્મા યોગ અને મુક્તિ અવસ્થામાં પોતાના નૈસર્ગિકરૂપમાં પ્રકાશે છે અને યોગી તેનો અનુભવ કરે છે તે આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર બતાવે છે.

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥

પદાર્થ: (तदा) ચિત્તની બધી વૃત્તિઓ શાંત થયા પછી (द्रष्टुः) આત્માનું (स्वरूपे) પોતાના જ સ્વરૂપમાં (अवस्थानम्) અવસ્થાન થાય છે.

ભાવાર્થ: આ સૂત્રમાં દ્રષ્ટુ પદથી આત્મા જ સમજવો. સાંખ્યશાસ્ત્રકાર મહર્ષિ કપિલ તથા યોગશાસ્ત્રકાર મહામુનિ પતંજલિ આત્માને જ દ્રષ્ટા તરીકે માને છે. જુઓ યોગ ૨-૨૦ સૂત્ર. ઉપનિષદમાં પણ આત્માને જ દ્રષ્ટા તરીકે કહેવામાં આવ્યો છે. જેમકે:–एष त आत्माऽन्तर्यामी अमृतोऽदृष्टो द्रष्टा-

ऽश्रुतः श्रोताऽमतों मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा ઈત્યાદિ. બૃહ. ઉપ. અ. ૩. બ્રા. ૮–૨૩.

અર્થ : આ તારો આત્મા અંતર્યામી છે, અમર છે, અદૃષ્ટ છે, દ્રષ્ટા છે, અશ્રુત છે, શ્રોતા છે, અમત છે મન્તા છે, અવિજ્ઞાત છે અને વિજ્ઞાતા છે. આત્મા સિવાય બીજો કોઈ દ્રષ્ટા નથી.

આત્માનું જ્યારે ઔપાધિક રૂપ દૂર થાય છે ત્યારે તે પોતાના મૂળ નિત્ય સ્વરૂપમાં હોય છે. જેમ બહુરૂપી માણસ અનેક જાતના વેષો ધારણ કરે છે કોઈ વખત રાજાનો વેષ તો કોઈ વખત ભરવાડનો વેષ ધારણ કરે છે.... વગેરે આ બધાં ઔપાધિક રૂપો કહેવાય છે. પણ જ્યારે તે કોઇનો વેશ ધારણ કરતો નથી ત્યારે તે પોતાના સ્વરૂપમાં જ હોય છે. આત્મા ઉપર ઔપાધિકરૂપ આવવા છતાં તેનું મૂળ સ્વરૂપ નાશ પામતું નથી. ચિત્તવૃત્તિથી જણાતું આત્માનું ઔપાધિકરૂપ દૂર થયા પછી આત્મા પોતાના સ્વરૂપમાં જ પ્રતિષ્ઠિત રહે છે. આત્માનું મૂળ સ્વરૂપ 'ચૈતન્ય' જ છે અને ચેતન આત્માનું ચૈતન્ય નિત્ય હોય છે. આત્મા કૂટસ્થ અને નિત્ય છે. વૃત્તિઓથી જણાતાં આત્માના બધાં જ ઔપાધિક રૂપો અનિત્ય હોય છે. અસંપ્રજ્ઞાત યોગ અને મુક્તિ અવસ્થામાં આત્મા ચૈતન્ય-સ્વરૂપમાં જ હોય છે.

અસંપ્રજ્ઞાત યોગની અવસ્થાથી જુદી જણાતી બધી જ અવસ્થાઓ વ્યુત્થાન અવસ્થા ગણાય છે. આત્માની સાંસા-

રિક બધી જ અવસ્થાઓ વ્યુત્થાન અવસ્થાઓ કહેવાય છે. વ્યુત્થાન અવસ્થામાં પણ આત્માનું મૂળ સ્વરૂપ જે ચૈતન્ય છે તે કાયમ હોય છે પણ તે વખતે ચૈતન્યરૂપે જણાતો નથી કારણ કે ચિતિશક્તિ (આત્મા) દર્શિતવિષયવાળો હોય છે તેથી આત્માને જે વિષયે રંગ્યો હોય છે તે જ વિષયે અર્થાત્ રૂપે અનુભવાય છે. જો સુખાકાર વૃત્તિથી આત્મા રંગાયો હોય તો આત્મા સુખી તરીકે જણાય છે, પ્રાકૃતિક જ્ઞાનના રૂપે રંગાયો હોય તો પ્રાકૃતિક જ્ઞાની અથવા વૈજ્ઞાનિક તરીકે અનુભવાય છે, દુઃખાકારે રંગાયો હોય તો દુઃખી તરીકે અનુભવાય છે વગેરે. અસંપ્રજ્ઞાત યોગમાં આત્મા ઉપરથી બધાં જ ઔપાધિક રૂપો દૂર થયેલાં હોય છે, તેથી તે વખતે આત્મા પોતાના મૂળ સ્વરૂપ ચૈતન્યના રૂપમાં જ હોય છે. ॥ ૩ ॥

ચિતિશક્તિ દર્શિતવિષયા છે એટલે એને વિષયોનું દર્શન કરાવવામાં આવે છે. ચિતિશકિત (આત્મા)માં કોઇ પણ પ્રકારની વૃત્તિ નથી. એટલે આત્મા પોતાની મેળે ઇન્દ્રિયોની મદદ લીધા વગર વિષયોને જાણી શકતો નથી. આ કારણથી વ્યુત્થાન દશામાં આત્મા પોતાના મૂળ સ્વરૂપ ચૈતન્યમાં હોવા છતાં 'હું ચેતન છું' આવો અનુભવ=સાક્ષાત્કાર માણસને થતો નથી કારણ કે ચૈતન્યસ્વરૂપ વિષયાકાર વૃત્તિઓથી ઢંકાયેલું જ રહે છે.

નાટકમાં નટ લોકો જ્યારે જુદી જુદી ભૂમિકાઓને ભજવે છે, ત્યારે કોઇ રાજાની ભૂમિકાને ધારણ કરે છે કોઈ રાણીની ભૂમિકાને ધારણ કરે છે, કોઈ સિપાઇની ભૂમિકાને

ધારણ કરે છે વગેરે, ત્યારે એમ જ લાગે છે કે આ નટોને જાણે કોઇ મૂળ સ્વરૂપ જ નથી, નટને પોતાને પણ પોતાનું મૂળ સ્વરૂપ યાદ રહેતું નથી, પણ તેથી શું એમ માની શકાય કે વિવિધ ભૂમિકાધારી નટને પોતાનું મૂળ સ્વરૂપ જ નથી? નહીં જ. વાસ્તવમાં મૂળ સ્વરૂપ હોવા છતાં નટને વેષ ભજવતી વખતે મૂળ સ્વરૂપ જણાતું નથી. આથી પ્રશ્ન એ ઊભો થાય છે કે વ્યુત્થાન અવસ્થામાં આત્મા કયા સ્વરૂપે છે? વ્યુત્થાન એ યોગ અને મુક્તિ કરતાં જુદી અવસ્થા અર્થાત્ સાંસારિક અવસ્થા.

આનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર આપે છે.

वृत्तिसारूप्य मितरत्र ॥ ४ ॥

પદાર્થ: (इतरत्र) ચિત્તની અસંપ્રજ્ઞાત યોગની અવસ્થાથી જુદી અવસ્થામાં અર્થાત્ સાંસારિક અવસ્થામાં (वृत्तिसारूप्यम्) દ્રષ્ટાનું આત્માનું ચૈતન્યરૂપ મૂળ સ્વરૂપ વૃત્તિઓથી રંગાયેલું રહેવાથી વૃત્તિઓના જેવું હોય છે. એટલે કે વૃત્તિસમાન હોય છે.

ભાવાર્થ:—ચિત્તમાંથી જ્યારે શાંતિના આકારને ધારણ કરતી વૃત્તિ નીકળે છે ત્યારે માણસ પોતાને શાંત સમજે છે, જ્યારે દુઃખના આકારને ધારણ કરતી વૃત્તિ ચિત્તમાંથી ઊઠે છે ત્યારે પોતાને દુઃખી સમજે છે અને જ્યારે ક્રોધના આકારને ધારણ કરતી વૃત્તિ ચિત્તમાંથી ઊઠે છે ત્યારે પોતાને ક્રોધી સમજે છે. ચિત્ત પરિણામી હોવાથી તેમાંથી વૃત્તિઓ

નીકળે છે. આત્મા અપરિણામી હોવાથી તેમાંથી વૃત્તિઓ નીકળતી નથી. (જુઓ, યોગસૂત્ર અ. ૪ સૂ. ૧૭.)

વૃત્તિઓથી આત્મામાં જણાતાં બધાં જ આગંતુક રૂપો છે. આત્મા એ વૃત્તિઓ સાથે અત્યંત સમાનતા ધારણ કરે છે, વૃત્તિઓ અને આત્મામાં કશોય ફરક જણાતો નથી, આથી વૃત્તિ અને આત્મા અર્થાત્ ચિતિશક્તિ એક છે એમ સમજાય છે.

આથી સ્પષ્ટ સમજાશે કે આત્માના બે રૂપો છે એક આગંતુક રૂપ કે જે વૃત્તિઓને લીધે ફરતું રહે છે અને બીજું પોતાનું મૂળ સ્વરૂપ ચૈતન્ય કે જે કદી પણ ફરતું નથી સદૈવ એક રૂપે જ રહે છે.

સાંસારિક અવસ્થામાં વિદ્વાન માણસો આત્માને જે ચેતન સ્વરૂપે જાણે છે તે તો શાસ્ત્રના ઉપદેશથી અને અનુ-માનથી, બાકી સાંસારિક અવસ્થામાં કોઇને પણ આત્માના ચૈતન્યસ્વરૂપનો સાક્ષાત્કાર થતો નથી. માટે જ અસંપ્રજ્ઞાત યોગની અને મુક્તિની પ્રાપ્તિ કરવા માટે પ્રયત્ન કરવો પડે છે.

સાંખ્યશાસ્ત્રના તથા યોગશાસ્ત્રના નિષ્ણાતો માને છે કે વૃત્તિઓ ઉપર પુરુષનું (આત્માનું) પ્રતિબિંબ પડે છે, તેથી ચિત્ત અને તેની વૃત્તિઓ જડ હોવા છતાં ચેતન જેવાં જણાય છે. (જુઓ, યોગ સૂત્ર ૪–૨૧.)

પ્રતિબિંબ પણ એક પ્રકારની યોગ્યતા જ છે. ખરું જોતાં નિરાકાર અને કૂટસ્થ (વ્યાપક) આત્માનું પ્રતિબિંબ હોઈ શકે જ નહિ. અને આ કારણથી આત્મા અપરિણામી છે.

આ સંબંધમાં પંચશિખાચાર્યનું એક સૂત્ર આ પ્રમાણે છેઃ–

'एकमेव दर्शनम्, ख्यातिरेव दर्शनम्' અર્થઃ દર્શન એક જ છે અને ખ્યાતિ એ જ દર્શન છે. સાંસારિક અવસ્થામાં આત્માનું જે જે રૂપમાં જણાઈ આવવું એ જ દર્શન છે, આ એક જ દર્શન છે અને તે ખ્યાતિ જ છે. આ ઠેકાણે ખ્યાતિ એટલે આત્માનું સાંસારિક અવસ્થામાં વિવિધરૂપે જણાવું તે.

સાંસારિક અવસ્થામાં આત્માના મૂળ સ્વરૂપ ચૈતન્યનું દર્શન થતું નથી અને મૂળ સ્વરૂપની ખ્યાતિ થતી નથી. સંસારદશામાં જ દર્શન થાય છે તે એક જ છે અને અવિદ્યાને કારણે જ છે. આ દર્શનનું નામ જ 'ખ્યાતિ' છે.

ચિત્ત લોહચુંબક જેવું છે, જેમ લોહચુંબક કેવળ સાંનિધ્યથી લોઢાને આકર્ષે છે તેમ ચિત્ત આત્માના સાંનિધ્યમાં રહી આત્મા ઉપર ઉપકાર કરે છે, અને એ ઉપકાર એટલે પોતાની વૃત્તિઓથી આત્માને રંગી દેવો તે જ. અથવા ચિત્ત પોતે આત્માનું 'સ્વ' બનવું અને આત્માને સ્વામી બનાવવો. એ જ ચિત્તનો આત્મા ઉપરનો ઉપકાર છે.

ચિત્ત અને આત્માનું સાંનિધ્ય અનાદિ છે તેથી એમ કહેવામાં આવે છે કે ચિત્ત અને આત્માનો સંબંધ અનાદિ છે.

આ અનાદિ સંબંધને લીધે જ અવિદ્યા પણ અનાદિ છે. આ અવિદ્યાનો નાશ વૃત્તિઓને સદાને માટે શાંત કરવાથી થાય છે, આને માટે જ યોગની જરૂર છે. ॥૪॥

હવે આધ્યાત્મિક, આધિદૈવિક અને આધિભૌતિક એવાં ત્રણ પ્રકારનાં દુઃખોનો નાશ કરવા માટે વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો જોઇએ, પણ વૃત્તિઓને જાણ્યા વગર તેનો નિરોધ શી રીતે કરી શકાય? માટે સૂત્રકાર વૃત્તિઓનું સ્વરૂપ અને સંખ્યા બતાવે છે.

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

પદાર્થ: (वृत्तयः) વૃત્તિઓ (पञ्चतय्यः) પાંચ અવયવોમાં વહેંચાયેલી છે (क्लिष्टाक्लिष्टाः) અને તે ક્લેશોને ઉત્પન્ન કરનારી અને ક્લેશોને નહીં ઉત્પન્ન કરનારી એમ બે પ્રકારની છે.

ભાવાર્થ: વૃત્તિ ચિત્તમાંથી નીકળે છે કારણ કે એ ચિત્તનું જ પરિણામ છે. વૃત્તિનામક પરિણામો અસંખ્યાત છે, છતાં પણ એ વૃત્તિઓના સમૂહરૂપ અવયવીને પાંચ પાંચ ભાગમાં વહેંચીને સમજાવ્યો છે. 'पञ्चतयी' આ સંસ્કૃત શબ્દનું બહુવચન 'पञ्चतय्यः' થાય છે. पञ्चतयी શબ્દની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે. पञ्च अवयवाः यस्या सा पञ्चतयी જેના પાંચ અવયવો હોય એવા સ્ત્રીલિંગ શબ્દને 'पञ्चतयी' કહે છે. ચિત્તની વૃત્તિઓ અસંખ્યાત છે, માટે વૃત્તિઓના સમુદાયના પાંચ વિભાગ શાસ્ત્રકારે કર્યા છે તેથી એ વિભાગને આધારે વૃત્તિઓ 'पञ्चतय्यः' એટલે કે પાંચ પ્રકારની છે. આ વિભાગોનાં નામ આગલા સૂત્રમાં જણાવશે.

ચિત્તમાંથી વૃત્તિઓ ઉત્પન્ન થવાનું કારણ અવિદ્યા, અસ્મિતા, રાગ, દ્વેષ, અને અભિનિવેશરૂપ ક્લેશો છે જે

વૃત્તિઓનું કારણ ક્લેશો છે તે ક્લિષ્ટ વૃત્તિઓ કહેવાય છે. આ ક્લિષ્ટ વૃત્તિઓમાંથી કર્મ અને વાસના ઉત્પન્ન થાય છે; તેથી દુઃખની પરંપરા જન્મે છે, માટે ક્લિષ્ટ વૃત્તિઓને રોકવી જોઇએ.

અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓનો વિષય વિવેક જ્ઞાન છે. એ વૃત્તિઓમાંથી રજોગુણ અને તમોગુણ ખરી પડેલા હોય છે તેથી ચિત્તમાં સદૈવ શાંતિ રહે છે. આ વૃત્તિઓ સત્વ અને પુરુષના સાક્ષાત્કારવાળી હોય છે તેથી તે ગુણાધિકારવિરોધિની કહેવાય છે. કાર્ય કરતા જ રહેવું એ ગુણોનો (સત્વ રજસ્ અને તમસ્) અધિકાર છે. વિવેક ખ્યાતિરૂપ જ્ઞાન થાય ત્યાં સુધી ગુણો કાર્ય કર્યા કરે છે. વિવેકખ્યાતિરૂપ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયા પછી વૃત્તિના ગુણો કાર્ય કરતા નથી માટે અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓ ગુણાધિકારવિરોધિની કહેવાય છે. અક્લિષ્ટવૃત્તિઓ દુઃખ આપતી નથી તો પણ તેનું સ્થાન ક્લિષ્ટવૃત્તિઓની વચમાં જ છે માટે તેનો પણ નિરોધ કરવો જોઇએ.

ક્લિષ્ટવૃત્તિઓથી કર્મ અને વાસના ઉત્પન્ન થાય છે માટે એ ક્લિષ્ટવૃત્તિઓ કર્મ અને વાસનાનું ક્ષેત્ર કહેવાય છે. વૃત્તિને લીધે કર્મ થાય છે અને કર્મમાંથી વાસના બંધાય છે અને વાસનાથી પાછી વૃત્તિઓ થાય છે આ પ્રમાણે વૃત્તિ, કર્મ અને વાસનાઓનું ચક્ર અનાદિ કાળથી ચાલતું આવ્યું છે, અને આત્માને આ ચક્રનું દુઃખરૂપ પરિણામ ભોગવવું પડે છે માટે બધી વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો જોઇએ.

પુરુષ 'દર્શિતવિષય' છે એટલે કે બુદ્ધિ એને વિષય બનાવે છે તેથી પુરુષ દ્રષ્ટા બને છે. દ્રષ્ટા ન બનવું એ અસંપ્રજ્ઞાત યોગની પ્રાપ્તિ સિવાય બની શકતું નથી આથી પુરુષ અનાદિ કાળથી દ્રષ્ટા છે. અને સુખ દુઃખને ભોક્તા પણ છે.

જ્યારે ચિત્ત બધી વૃત્તિઓથી રહિત થાય છે ત્યારે ચિત્તને પણ અધિકાર પૂરો થાય છે. અધિકારથી રહિત થયેલું ચિત્ત આત્માને મુક્તિ અપાવે છે અને ચિત્ત પોતે પણ વૃત્તિરૂપપરિણામોથી મુક્ત થાય છે. મુકત થયેલું ચિત્ત પ્રકૃતિમાં વિલીન થઇ જાય છે અને આત્મા પોતાના સ્વ-રૂપમાં જ પ્રતિષ્ઠિત થાય છે.

દરેક આત્માને પોતપોતાનું અલગ અલગ ચિત્ત હોય છે. આ કારણથી કોઈ એક આત્મા અને તેનું ચિત્ત મુકત થઈ જાય તોપણ સંસાર પૂરો થતો નથી કારણ કે બીજા બદ્ધ આત્માઓ અને તેનાં ચિત્ત સાધિકાર હોય છે એને લીધે સંસાર ચાલુ રહે છે. આથી સ્પષ્ટ સમજાશે કે દુઃખના કારણ રૂપે બનેલી વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો જ જોઇએ. ॥ ૫ ॥

હવે વૃત્તિઓના જે પાંચ વિભાગો પાંચમાં સૂત્રમાં બતાવ્યા છે તે પાંચે વિભાગોમાંના દરેકના નામનો ઉલ્લેખ કરી બતાવે છે.

प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः ॥ ६ ॥

પદાર્થઃ (प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः) આ એક જ સમાસવાળું પદ છે. (૧) પ્રમાણ (૨) વિપર્યય (૩) વિકલ્પ (૪) નિદ્રા (૫) સ્મૃતિ.

ભાવાર્થ : આ સૂત્ર એક જ સામાસિક પદનું છે. સમાસ ઈતરેતરદ્વન્દ્વ છે. વિગ્રહ કરતી વખતે પ્રમાણાદિની સંખ્યા ઉપર ધ્યાન રાખી વિગ્રહ કરવો.

જેમ કે प्रमाणानि च विपर्ययश्च विकल्पश्च निद्रा च ताः प्रमाण विपर्यय विकल्पनिद्रास्मृतयः ।। અહીં વિગ્રહમાં પ્રમાણ શબ્દને બહુવચનમાં મૂક્યો છે કારણ કે, પ્રમાણ ત્રણ છે વિપર્યય, વિકલ્પ, નિદ્રા અને સ્મૃતિ આ ચારેય શબ્દો એક વચનમાં મૂકયા છે કારણ કે તેની સંખ્યા એક એક જ છે. આ પ્રમાણે વૃત્તિઓના પાંચ જ વિભાગો છે, તેમાં બધી વૃત્તિઓનો સમાવેશ થઈ જાય છે. માટે આ વિભાગો કરતાં વધારે વૃત્તિઓ નથી. આ સૂત્રમાં પાંચમા સૂત્રમાં કહેલા ' पञ्चतय्यः ' પદની અનુવૃત્તિ લાવવી યોગ્ય જણાય છે ।। ६ ।।

હવે પ્રમાણ વૃત્તિઓનો વિભાગ કરી બતાવે છે.

प्रत्यक्षानुमानगमाः प्रमाणानि ।। ७ ।।

પદાર્થ : (प्रत्यक्षानुमानगमाः) પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને આગમ (प्रमाणानि) એ પ્રમાણો છે અથવા પ્રમાણવૃત્તિઓ છે.

ભાવાર્થ : અહીં સૂત્રકારે પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને આગમ પ્રમાણનાં લક્ષણ બાંધ્યાં નથી તેમ પ્રમાણ સામાન્યનું પણ લક્ષણ બાંધ્યું નથી, પણ ભાષ્યકાર શ્રી વ્યાસમુનિએ

અને બીજા વિદ્વાનોએ તેનાં લક્ષણો બાંધ્યાં છે, તે આપણે અહીં ટૂંકમાં સમજી લઇએ.

(૧) પ્રમાણ=પ્રમાનું જે કરણ હોય તે પ્રમાણ.

જે અર્થ પ્રથમ ન જાણ્યો હોય તેનો યથાર્થ બોધ થવો એનું નામ પ્રેમા. આ બોધ પુરુષને લગતો હોવાથી "પૌરુષેય" બોધ કહેવાય છે. અથવા પુરુષમાં પડેલું વૃત્તિનું પ્રતિબિંબ તે પૌરુષેય બોધ. મહર્ષિ ગૌતમ તો બોધ આત્મામાં જ રહે છે એમ માને છે; પણ સાંખ્યના આચાર્યો એમ માનતા ખચકાય છે. કારણ કે असंगोऽयं पुरुषः એવું વેદાન્તનું વાકય છે. અસંગ એટલે જેને કોઈ સંગ ન હોય તે. આ પૌરુષેય બોધથી 'હું જાણું છુ" વગેરે વ્યવહાર થાય છે. આવી પ્રમાનું જે કરણ છે તે પ્રમાણ છે. આ ત્રણ પ્રમાણોમાં જ બીજા શાસ્ત્રકારોએ વધારે કહેલાં પ્રમાણોનો સમાવેશ થાય છે.

પ્રત્યક્ષ–પ્રમાણ

ઈન્દ્રિયો દ્વારા ચિત્તનું બહાર આવવું અને ઘટપટાદિ દ્રવ્ય તથા રૂપ, રસ, ગંધ અને શબ્દ રૂપઅર્થ સાથે સંબંધ પામવો અને પછી ચિત્તમાંથી જે વિશેષ વિષયાકાર પરિણામ થાય છે તેને વૃત્તિ કહે છે. એ વૃત્તિને જ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ કહે છે. આ વૃત્તિનું પુરુષમાં પ્રતિબિંબ પડવું અથવા એ વૃત્તિની પુરુષ સાથે અત્યંત નિકટતા થઇ જ્ઞાન થવું એ જ 'પૌરુષેય' બોધ કહેવાય છે અને એ જ પ્રત્યક્ષનું ફળ અથવા પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ કહેવાય છે. જો આ પ્રત્યક્ષ

પ્રમાણ વૃત્તિનો નિરોધ થાય તો ઘટાદિ દ્રવ્ય અને રૂપ રસ આદિ અર્થો દેખાતા બંધ પડે છે. અને અસંપ્રજ્ઞાત યોગનો માર્ગ મોકળો થાય છે.

અનુમાન-પ્રમાણ

સાધ્યરૂપ અર્થ સાથે અવ્યભિચરિત સંબંધ ધરાવનાર સદ્ધેતુ (સાચા હેતુ)નું જ્ઞાન થવું અને પછી સાધ્યસામાન્યનું જ્ઞાન થવું એને અનુમાન કહે છે. જેમકે ધૂમરૂપ સદ્ધેતુથી અગ્નિ સામાન્યનું અનુમાન થાય છે. હેતુનું જ્ઞાન એ અનુમાન પ્રમાણ કહેવાય છે અને પછીથી થતું સાધ્ય-સામાન્યનું જ્ઞાન એ અનુમિતિ-પ્રમા કહેવાય છે. અહીં હેતુના જ્ઞાનને અને સાધ્યના જ્ઞાનને પણ હેત્વાકારવૃત્તિ અને સાધ્યાકારવૃત્તિ કહેવાય છે. અસંપ્રતાત યોગની ઇચ્છા રાખનારે આવી વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો જોઇએ. આવા નિરોધને અનુમાન પ્રમાણ વૃત્તિ-નિરોધ કહે છે.

શબ્દ-પ્રમાણ

આપ્ત પુરુષના ઉપદેશને શબ્દ પ્રમાણ અથવા આગમ પ્રમાણ કહે છે. જેણે શબ્દોના અર્થનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન મેળવ્યું હોય અથવા અનુમાનદ્વારા જ્ઞાન મેળવ્યું હોય તે 'આપ્ત' કહેવાય છે. આપ્ત પુરુષમાં જનતા ઉપર કરુણા હોય છે અને એ કરુણાને લીધે જ, અને શ્રોતાઓના કલ્યાણને માટે આપ્ત પુરુષ શબ્દોના પ્રયોગ દ્વારા ઉપદેશ આપે છે કારણ કે પોતાનામાં રહેલા જ્ઞાનને બીજા માણસમાં સંક્રાંત કરવાનું સાધન શબ્દ જ છે. આપ્તના જે શબ્દો સાંભળ-

નાર જિજ્ઞાસુ જનમાં પડે છે તે જ આગમ પ્રમાણ છે. એને શાસ્ત્રદૃષ્ટિએ શબ્દ પ્રમાણ વૃત્તિ કહે છે. આ પ્રમાણ વૃત્તિથી જે અર્થનું જ્ઞાન થાય છે તેને શબ્દથી થયેલી પ્રમા કહેવાય છે. અસંપ્રજ્ઞાત યોગને મેળવવા ઇચ્છનારે શબ્દ પ્રમાણ વૃત્તિનો પણ નિરોધ કરવો જોઈએ. આ પ્રમાણે પાંચ અવયવ વૃત્તિઓમાંથી પ્રમાણ વૃત્તિનો સામાન્ય અને ટુંકો અર્થ આ સૂત્રમાં બતાવવામાં આવ્યો છે. ॥ ૭ ॥

હવે (૨) બીજી 'વિપર્યયવૃત્તિ'ને સમજાવતું સૂત્ર આ પ્રમાણે છે.

विपर्ययो मिथ्याज्ञान मतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ ८ ॥

પદાર્થઃ (विपर्यः) વિપર્યય એ લક્ષ્યનું કથન છે (मिथ्या ज्ञानम्) મિથ્યાજ્ઞાન શબ્દ લક્ષણનો નિર્દેશ કરે છે (अत-द्रुपप्रतिष्ठम्) લક્ષણ શબ્દનો અર્થ છે. સત્ય અર્થમાં જેની પ્રતિષ્ઠા નથી તે વિપર્યય વૃત્તિ છે.

ભાવાર્થ 'વિપર્ય'નો બીજો અર્થ ભ્રમ છે. જેમકે છીપમાં ચાંદીનું જ્ઞાન થાય તે ભ્રમ છે, અને તે જ વિપર્યય કહેવાય છે. વિપર્યય પ્રમાણ તરીકે કેમ નથી જણાતો ? તેનો ઉત્તર એ છે કે પ્રમાણ વડે તેનો બાધ થાય છે. જેમકે 'नेदं रजतम्' આ ચાંદી નથી. આ પ્રમાણે છીપમાં ચાંદીનો બાધ એટલે અભાવ જણાવવામાં આવે છે.

પ્રમાણ સદૈવ સત્ય. અર્થનું જ અવલંબન કરે છે માટે પ્રમાણથી અપ્રમાણના અર્થનો બાધ થાય છે. આકાશમાં કોઈ વખતે કોઈ પણ દોષને લીધે બે ચંદ્ર જણાય

છે તો તે અપ્રમાણનો વિષય છે. અને તેનો એક ચંદ્ર-વિષયક પ્રમાણથી બાધ થાય છે. પહેલાં થયેલા અસત્ય જ્ઞાનના વિષયનો પછીથી થતા સત્યવિષયવાળા જ્ઞાનથી બાધ થાય છે. જે જ્ઞાનનો વિષય બાધિત થાય તે પ્રમાણ ન કહેવાય. આ કારણથી 'વિપર્યય' પ્રમાણ નથી માટે પ્રમાણવૃત્તિથી 'વિપર્યય' વૃત્તિ જુદી પડે છે. સંશય પણ વિપર્યય જ ગણાય છે કારણકે સંશયમાં પણ સત્યજ્ઞાનની પ્રતિષ્ઠા નથી. 'પેલું દેખાતું ઝાડનું ઠુંઠું છે કે કોઇ માણસ છે?' આ સંશયજ્ઞાનનું ઉદાહરણ છે. આ જ્ઞાન સત્ય અર્થ બતાવતું નથી માટે તે પણ વિપર્યય જ છે.

સાંખ્યશાસ્ત્રમાં વિપર્યયના પાંચ ભેદો બતાવ્યા છે તેનાં નામ આ પ્રમાણે છે. (૧) તમસ્ (૨) મોહ (૩) મહામોહ (૪) તામિસ્ર અને (૫) અંધ તામિસ્ર. યોગદર્શનમાં આને (૧) અવિદ્યા (૨) અસ્મિતા (૩) રાગ (૪) દ્વેષ અને (૫) અભિનિવેશ કહેવામાં આવે છે. અવિદ્યા આદિનો ખુલાસો આગળ કરવામાં આવશે. આ 'વિપર્યય' વૃત્તિનો પણ નિરોધ કરવો જોઈએ. ॥ ૮ ॥

હવે ત્રીજી વૃત્તિ કે જેનું નામ 'વિકલ્પ' છે તેને સમજાવતું સૂત્ર આ પ્રમાણે છે.

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

પદાર્થઃ (शब्दज्ञानानुपाती) શબ્દ અને તેનું જ્ઞાન થયા પછી અર્થ પણ જાણે તેની પાછળ આવતો હોય પણ (वस्तुशून्यः) ખરી રીતે અર્થ તો હોય જ નહીં. એવી વૃત્તિને (विकल्पः) વિકલ્પવૃત્તિ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ : વાસ્તવિક રીતે અર્થ ન હોય પણ માત્ર શબ્દ અને તેનું જ્ઞાન થવાથી જાણે અર્થ પણ હોય એવા જણાતા અર્થાભાસને વિકલ્પ કહેવામાં આવે છે. જેમકે 'વાંજિયાના પુત્રના લગ્ન થાય છે.' વાંજિયાને પુત્ર જ હોતો નથી તો તેના લગ્નની તો વાત જ શી ? છતાં પણ એવો શબ્દ પ્રયોગ થયો છે અને એ શબ્દોનું જ્ઞાન પણ થયું છે એટલે કે જાણે વંધ્યા-પુત્ર રૂપ અર્થ છે, એવી ખોટી પ્રતીતિ થાય છે. આવા અર્થશૂન્ય જ્ઞાનને વિકલ્પ કહે છે. બીજું ઉદાહરણ 'રાહુનું શિર' કેવળ શિર (માથા) ને રાહુ કહેવામાં આવે છે. ભાવ એ છે કે જ્યાં ભેદ નથી ત્યાં ભેદ બતાવવો અને જ્યાં ભેદ છે ત્યાં અભેદ બતાવવો એ વિકલ્પ કહેવાય છે.

શંકાઃ—જો અર્થ ન હોય અને તેનું જ્ઞાન થતું હોય તો તે વિપર્યય જ કહેવાય. જેમકે છીપ એ ચાંદી નથી છતાં કોઈ તેને ચાંદી કહે તો તેને અર્થ અર્થાત્ ચાંદીરૂપ અર્થ નથી અને ચાંદીનું જ્ઞાન થયું એમ જ કહેવાય એટલે તેને વિપર્યય થયો છે ભ્રમ થયો છે એમ જ કહેવાય. તો પછી વિપર્યય અને વિકલ્પમાં ફેર શો ?

ઉત્તરઃ અર્થ ન હોવા છતાં અર્થ છે એમ માની વિદ્વાનો પણ જ્યારે વ્યવહાર કરતા રહે છે ત્યારે એ વિકલ્પરૂપ જ્ઞાન છે એમ કહેવાય. અને અર્થ ન હોય ત્યારે તેને લગતો વ્યવહાર પણ બંધ પડે તો તે વિપર્યય છે એમ સમજવું. જેમકે છીપ ચાંદી નથી એવું જ્ઞાન થયા પછી

છીપને ચાંદી કહેવાનો વ્યવહાર બંધ પડે છે, પણ વિકલ્પમાં એમ હોતું નથી. જેમકેઃપુરુષમાં ચૈતન્ય નથી પણ પુરુષ્ પોતે જ ચૈતન્ય છે એમ સાંખ્યને માનનારા વિદ્વાનો માને છે, છતાં સાંખ્યના નિષ્ણાતો 'પુરુષનું ચૈતન્ય' એવો વ્યવહાર ચાલુ રાખે છે. વિપર્યયથી વિકલ્પને જુદી પાડનારી આ બાબત છે. આ કારણથી વિકલ્પને પ્રમાણ પણ ન કહી શકાય અને વિપર્યય પણ ન કહી શકાય એટલા માટે 'વિકલ્પ' એ ત્રીજી વૃત્તિ છે અને તેનો પણ યોગી થવા ઇચ્છનારે વિરોધ કરવો જોઇએ. વિકલ્પવૃત્તિથી પુષ્કળ વ્યવહારો ચાલી રહ્યા છે કલ્પિત નોવેલો (કલ્પિત વાર્તાઓ) વિકલ્પ વૃત્તિનાં જ પરિણામો છે. આ વિકલ્પ વૃત્તિને બીજા શાસ્ત્રકારો આરોપિત જ્ઞાન અથવા આહાર્યજ્ઞાન પણ કહે છે શબ્દનો વાચ્યાર્થ નથી અને જ્ઞાનનો વિષય નથી એવી ખબર હોવા છતાં એ અર્થને લગતો વાણીનો વ્યવહાર ચાલુ રાખવો એ વિકલ્પવૃત્તિનું ફળ છે ॥ ૯ ॥

હવે 'નિદ્રાવૃત્તિ'ને નીચેના સૂત્રથી સમજાવે છે.

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्ति र्निद्रा ॥ १० ॥

પદાર્થઃ (अभावप्रत्ययालम्बना) સુષ્પ્તિ અવસ્થામાં પ્રમાણાદિ વૃત્તિઓ જેને લીધે થતી નથી એ જેનું આલંબન છે તે (वृत्तिः) નિદ્રા વૃત્તિ કહેવાય છે.

ભાવાર્થઃ આ ઠેકાણે નિદ્રા એટલે સુષુપ્તિ અવસ્થા સમજવી. તમોગુણની વિશેષતાને કારણે જાગ્રત્ અવસ્થાની અથવા સ્વપ્ન અવસ્થાની સાત્વિક અને રાજસ્ વૃત્તિ થઈ

શકતી નથી, માટે સુષુપ્ત અવસ્થામાં જે વૃત્તિ થાય છે તેનું આલંબન તમોગુણ જ છે. આ સૂત્રમાં 'પ્રત્યય'નો અર્થ કારણ થાય છે. 'અભાવ' બીજી વૃત્તિઓનું ન થવું તે. બીજી વૃત્તિઓ ન થવા દેવાનું કારણ તમોગુણ છે. માટે નિદ્રાવૃત્તિનું આલંબન તમોગુણ છે. ચિત્ત ત્રિગુણાત્મક છે. તેમાં સત્વગુણ અને રજોગુણને દબાવી દઈ તમોગુણ આગળ પડતો થઇ જાય છે.

શંકાઃ જો સ્વપ્ન–અવસ્થામાં કોઈ પણ વૃત્તિ થતી જ નથી એમ માનીએ તો શું ખોટું? સુષુપ્તિમાં માત્ર અભાવ જ છે, અર્થાત્ કશું જણાતું નથી.

ઉત્તરઃ 'સુષુપ્તિમાં વૃત્તિ છે' એમ માનવાનું કારણ એ છે કે સુષુપ્તિમાંથી જાગેલો માણસ કહે છે આજે મને ખૂબ ઊંઘ આવી. સુખથી નિદ્રા પૂરી થઈ. અથવા આજે મને નિદ્રા તો આવી પણ એ દુઃખમાં જ પસાર થઈ, મનમાં અકર્મણ્યતા આવી ગઈ છે મનમાં જરાપણ શાંતિ નથી અથવા મને ગાઢ ઊંઘ આવી પણ મૂઢતામાં તે પસાર થઈ. શરીર ભારે થઇ ગયું છે અને મનમાંથી બધી શક્તિ ગુમ થઇ ગઈ હોય એમ લાગે છે.

આ કથન સ્મરણને જણાવે છે. સુષુપ્તિમાં સુખ દુઃખ અને મોહનો અનુભવ થયો છે અને તેના પડેલા સંસ્કારથી ઉપર પ્રમાણે સ્મૃતિ થાય છે એ અનુભવાકાર વૃત્તિ માનવી જોઈએ. સુખ અને દુઃખના અનુભવમાં પણ તમોગુણ જ હતો સત્વ અને રજોગુણ તો બહુ જ અલ્પ પ્રમાણમાં હતા

જેથી ઝાંખા સુખ દુઃખ જણાયાં અને તેની સ્મૃતિ જાગ્યા પછી થાય છે. માટે સુષુપ્તિમાં તમોગુણવાળી વૃત્તિ માનવી જોઈએ અને એનું નામ નિદ્રાવૃત્તિ છે.

સુષુપ્તિ અવસ્થામાં વૃત્તિની એકાગ્રતા જણાય છે બીજી વૃત્તિઓનો નિરોધ પણ છે. પણ તેને યોગ ન કહી શકાય, કારણ કે તે તામસવૃત્તિ છે. યોગમાં તો સત્વગુણ આલમ્બન તરીકે જોઇએ એટલે કે સાત્વિક વૃત્તિ જોઇએ. ઘણા ખરા વિદ્વાનો સુષુપ્તિમાં વૃત્તિનો અભાવ માને છે એટલે કે નિદ્રા નામની કોઇ વૃત્તિ જ નથી 'આ મત ઠીક નથી' એમ જણાવવા માટે જ સૂત્રમાં 'વૃત્તિ' પદ મૂક્યું છે, નહીં તો વૃત્તિઓના જ પ્રકરણમાં ફરીથી 'વૃત્તિ' શબ્દ મૂકવાની જરૂર નહોતી ॥ ૧૦ ॥

હવે પાંચમી વૃત્તિ જે સ્મૃતિના નામથી ઓળખાય છે તેને સમજાવવા માટે આગળનું સૂત્ર લખે છે. સ્મૃતિ નામની વૃત્તિનું લક્ષણ આ પ્રમાણે છે.

अनुभूतविषयासप्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

પદાર્થઃ (अनुमृतविषयासंप्रसंप्रमोषः) પ્રમાણો દ્વારા અનુભવમાં આવેલા વિષયમાં જ્યારે બીજી વૃત્તિનો વિષય બને ત્યારે તેમાં સંપ્રમોષ એટલે કે સ્તેય=ચોરી ન થવી જોઈએ એવી જે વૃત્તિ છે તે (स्मृति) સ્મૃતિ નામની વૃત્તિ કહેવાય છે.

ભાવાર્થઃ—આ સૂત્રમાં સ્મૃતિ એ લક્ષ્ય પદ છે અને બાકીનો જે ભાગ છે તે લક્ષણ છે.

સ્મૃતિ અને સ્મરણનો એક જ અર્થ છે. પ્રથમ વસ્તુનો પ્રમાણ દ્વારા અનુભવ થાય છે, પછી તેનો સંસ્કાર પડે છે અને એ સંસ્કારથી જે જ્ઞાન થાય છે તેનું નામ જ સ્મૃતિ અથવા સ્મરણ વૃત્તિનો અર્થ જ્ઞાન થાય છે માટે એને સ્મૃતિ વૃત્તિ કહે છે નૈયાયિક આદિ બીજા વિદ્વાનો સ્મૃતિનું લક્ષણ બાંધે છે કે 'संस्कारजन्यं ज्ञानम् स्मृतिः' સંસ્કારથી જે જ્ઞાન જન્મે છે તે સ્મૃતિ કહેવાય છે. યોગ અને ન્યાયાદિ-દર્શન કર્તાઓનાં સ્મૃતિનાં લક્ષણોમાં ફરક પડતો નથી. યોગદર્શનકાર મહર્ષિ પતંજલિ સ્મૃતિના સંબંધમાં આટલું વધારે કહે છે કે જે અનુભવનો વિષય છે તે જ સ્મૃતિનો વિષય હોય છે, સ્મૃતિના વિષયમાં અનુભવના વિષય કરતાં કશું પણ વધારે ન હોવું જોઈએ. ધારો કે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી આપણને 'ઘટ' એવું અનુભવાત્મક જ્ઞાન થયું તો પછી એની સ્મૃતિમાં વિષય તરીકે ઘટ સિવાય બીજું કશું જ ન આવવું જોઇએ. 'આ ઘડો છે' આ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ દ્વારા અનુભવ થયો. અને 'તે ઘડો હતો' આ થઇ સ્મૃતિ અનુભવથી સંસ્કાર મનમાં પડ્યો અને સંસ્કારથી સ્મૃતિ ઉત્પન્ન થઇ. અહીં તે ઘડાને બદલે જો 'લાલ ઘડો' આદિ સ્મૃતિમાં આવે તો તે ખોટું છે કારણ કે અનુભવના વિષય બનેલા ઘડામાં વિશેષણ નથી.

આવા અધિક ગ્રહને સૂત્રકારે સંપ્રમોષ કહ્યો છે. મુષ્= ચોરવું એ ધાતુને સં અને પ્ર ઉપસર્ગ લાગેલો છે અને 'મુષ્' ધાતુનું 'મોષ' કૃદન્ત બતાવ્યું છે, બધું મળીને 'સંપ્રમોષ' શબ્દ બન્યો છે.

શિષ્યઃ સ્મૃતિના વિષયમાં અનુભવના વિષય કરતાં કંઈક વધારે જણાય તો એમાં 'સંપ્રમોષ' કેવી રીતે કહેવાય ? સંપ્રમોષનો અર્થ ચોરી થાય છે. અનુભવનો વિષય માત્ર 'ઘટ' હોય અને સ્મૃતિનો વિષય "લાલઘટ" હોય, તો શું લાલ વિશેષણ એ 'ચોરેલુ'' કહેવાય ?

ગુરુ : હા, જુઓ સ્મૃતિએ અનુભવમાં જે અને જેટલો વિષય હોય તે અને તેટલો જ લેવો જોઇએ કારણ કે એ જ એનું 'સ્વ છે પોતીકું છે. તો શું વધારે પડતું લેવું એ ચોરી નથી ? 'मा गृधः कस्य स्विद् धनम्' કોઇ બીજાના ધનનું ગ્રહણ ન કરો. એ વેદની આજ્ઞા છે.

શિષ્ય : જો એમ હોય તો 'અધિકનું ગ્રહણ' ન હોવું જોઇએ. એમ કહેવું જોઇએ એને માટે સંપ્રમોષ=ચોરી જેવો શબ્દ શાસ્ત્રકારે શા માટે વાપાર્યો ?

ગુરુ : 'અધિક ગ્રહણમાં' સંપ્રમોષ અર્થાત્ ચોરીનું સાદૃશ્ય છે માટે, વળી શાસ્ત્રકારોએ અર્થને અનુસરી કેવા શબ્દો વાપરવા એમાં તેઓ સ્વતંત્ર છે.

શિષ્ય : અનુભવના વિષય કરતાં સ્મૃતિના વિષયમાં કંઈક ઓછું હોય તો એ સ્મૃતિ. વૃત્તિ, કહેવાય કે નહિ ?

ગુરુ : ઓછું હોય તો ચાલે, એટલે તે સ્મૃતિ વૃત્તિ કહેવાય, પણ વધારે તો ન જ આવવું જોઇએ,

બીજું અનુભવમાં ગ્રાહ્ય એટલે વિષય અને ગ્રહણ એટલે વિષયાકાર વૃત્તિ બંનેનો ભાસ થાય છે અને એનાથી સંસ્કાર

પણ ગ્રાહ્યાકાર અને ગ્રહણાકાર બંનેરૂપે પડે છે માટે સ્મૃતિમાં પણ ગ્રાહ્યાકાર અને ગ્રહણાકાર બંને હોય છે. એટલે કે અનુભવની પેઠે સ્મૃતિમાં પણ વિષય અને તેની વૃત્તિ બંને ભાસે છે.

બીજું જાગ્રત્ અવસ્થાનો વિષયોનું સ્વપ્ન આવે છે એ સ્વપ્ન પણ સ્મૃતિ કહેવાય છે એમ કેટલાક વિદ્વાનો માને છે. હવે જુઓ જાગ્રત્ અવસ્થામાં જે વિષય અને તેનાં સ્થાન અને કાળ હોય છે તેના કરતાં સ્વપ્નમાં દેખાતા તે જ વિષયના સ્થાન અને કાળ જુદા જ હોય છે. આ અધિક ગ્રહણ થયું અથવા સંપ્રમોષ થયો. તો શું સ્વપ્ન એ સ્મૃતિ ન કહેવાય?

આ શંકાનો ઉત્તર એ છે કે સ્વપ્ન એ સ્મૃતિ નથી પણ એ તો વિપર્યય નામની વૃત્તિ છે. જે વૃત્તિ આ જ પદના આઠમા સૂત્રમાં સમજાવવામાં આવી છે. જાગ્રત્ અવસ્થામાં જણાતા વિષયો 'અભાવિત સ્મર્તવ્ય' એટલે કે સત્ય અર્થો અને સ્વપ્નના વિષયો 'ભાવિત–સ્મર્તવ્ય' એટલે કલ્પિત વિષયો કહેવાય છે.

જેટલી સ્મૃતિઓ છે તે બધી અનુભવમાંથી જન્મે છે. અને બધી જ વૃત્તિઓ ત્રિગુણાત્મક છે એટલેકે સુખ, દુઃખ અને મોહવાળી છે. સુખ, દુઃખ અને મોહ ક્લેશો કહેવાય છે માટે ક્લેશોનો ત્યાગ કરવો જોઇએ. આ ઠેકાણે જે સુખ જણાવ્યું છે તે પ્રાકૃતિક અર્થાત્ ભૌતિક સુખ જણાવ્યું છે. આ કારણથી પાંચેય વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો જોઇએ ॥૧૧॥

આ પાંચેય વિભાગની વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવાનો ઉપાય શો છે ? ઉપનિષદમાં જણાવ્યું છે કેઃ–' पराञ्चि खानि व्यतृणत स्वयंभूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ' સ્વયંભૂ પરમાત્માએ ઇન્દ્રિયોને વિષય તરફ વળનારી બનાવી છે માટે માણસો વિષયોના ઉપભોગને માટે જ પ્રયત્ન કરતા રહે છે- કોઈ આત્મા તરફ ઇન્દ્રિયોને વાળવા પ્રયત્ન કરતું નથી. આવી પરિસ્થિતિમાં નિરોધ શી રીતે થઈ શકે ? વૃત્તિઓને વિષયોનો આકાર ધારણ કરવા માટે ઇન્દ્રિયો સિવાય બીજો કોઈ માર્ગ જ નથી. આ શંકાનો ઉત્તર હવે પછીના સૂત્રમાં છે તથા વૃત્તિઓનો નિરોધનો ઉપાય પણ બતાવ્યો છે.

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

પદાર્થઃ–(अभ्यास वैराग्यभ्याम्) અભ્યાસ અને વૈરાગ્યથી (तन्निरोधः) તે વૃત્તિઓનો નિરોધ થઈ શકે છે.

ભાવાર્થઃ અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય આ બંનેનાં અનુષ્ઠાન કરવાથી વૃત્તિઓનો નિરોધ થઈ શકે છે, ઉપનિષદમાં જે કહ્યું છે તે સામાન્ય જનતાને માટે છે કારણ કે એ જ ઉપનિષદમાં અને એ જ શ્લોકના ઉત્તરાર્ધમાં જણાવ્યું છે કે कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् । કઠોપનિ ૨–૧ ઇન્દ્રિયો વિષય તરફ જ વળનારી હોવા છતાં મોક્ષને ઈચ્છનાર કોઈ ધીર માણસ ઇન્દ્રિયો ઉપર કાબુ મેળવે છે અને તેને અંતર્મુખી બનાવી આત્માનું અને પરમાત્માનું દર્શન કરી શકે છે. આથી એવું ફલિત થાયે છે કે જેને આત્માના

દર્શનની તાલાવેલી લાગી છે તે જરૂર ઇન્દ્રિયોને અંતર્મુખી બનાવી વૃત્તિઓનો નિરોધ કરી શકે છે. શાસ્ત્ર અશક્ય અર્થને મેળવવાનો ઉપદેશ કદીપણ ન જ કરે.

યોગદર્શનના ભાષ્યકાર વ્યાસ મુનિ આ સૂત્ર ઉપર આ પ્રમાણે લખે છે. ' ચિત્ત એ એક નદી (નદી જેવી) છે. એ નદી કલ્યાણ માટે વહે છે અને પાપને માટે પણ વહે છે. એ નદીની જે ધારા મોક્ષ તરફ વહે છે તે કલ્યાણ કારક છે અને જે અનિત્ય અને દુઃખ મિશ્રિત ભોગો ભોગવવા માટે સંસાર તરફ વહે છે તે પાપને માટે છે. સંસાર તરફ વહેતી ધારા આત્માનું દર્શન કરાવી શકતી નથી અને એ ધારા રાગ દ્વેષ અને મોહથી મુક્ત ન હોવાને કારણે દુઃખદાયક છે. આટલા માટે એ ધારાને પાપકારક કહી છે. જેમ પાપમયી ધારાને રોકવી જરૂરી છે તેમ કલ્યાણમયી ધારાને પણ રોકવી જરૂરી છે કારણ કે બંને ધારાઓને રોકયા સિવાય આત્માનું દર્શન થઈ શકતું નથી. કલ્યાણમયી ધારામાં પણ પ્રાકૃતિક અંશ તો હોય જ છે, ભલે પછી તે સાત્વિક હોય, પણ એને રોકયા સિવાય આત્મા અને પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર થઈ શકે નહીં અને તે સિવાય મુક્તિ પણ મળે નહિ. વિષય તરફ વૈરાગ્ય આવવાથી સંસાર તરફ વહેતી ચિત્ત નદીની ધારા રોકી શકાય છે અને જ્યારે એ ધારા રોકાઇ જાય છે ત્યારે તેને તેવી જ સ્થિતિમાં સ્થિર રાખવા અભ્યાસ કરવો પડે છે.

ચિત્ત નદીની બીજી ધારા કે જે સત્વગુણના પરિણામ રૂપ પ્રશાન્ત-વાહિતા અને નિર્મલતામાં વહ્યા કરે કરે છે

તેને પણ પરમ વૈરાગ્યથી રોકી શકાય છે. ગમે તેટલું પ્રાકૃતિક સુખ મળે પણ તે આત્માના સ્વરૂપની પ્રતિષ્ઠારૂપ મુક્તિ જેવું તો નથી જ. આ કારણથી મુક્તિ મેળવવા માટે સત્વગુણની ધારાને પણ રોકવી જ જોઇએ. ચિત્તનદીનું જે વહેણ મોક્ષ તરફ છે તેનું નીચાણ આત્મા અને પ્રકૃતિમાં ભિન્નતાનું ભાન થતું રહેવું તે છે. આ વહેણને 'કલ્યાણવહ' વહેણ કહે છે.

ચિત્તનદીનું વહેણ સંસાર તરફ વહે છે તેનું નીચાણ આત્મા અને પ્રકૃતિની ભિન્નતાનું ભાન ન થતું રહેવું તે છે, આ વહેણને 'પાપવહ' વહેણ કહે છે. અને તે અસંપ્રજ્ઞાત યોગથી જ પ્રાપ્ત કરી શકાય છે. ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણે ચિત્તની વૃત્તિઓને રોકવાની શક્યતા છે અને તેનો ઉપાય અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય બંને છે. કેવળ અભ્યાસ કે કેવળ વૈરાગ્યથી ચિત્તની વૃત્તિઓ રોકી શકાય નહિ ગીતામાં પણ ભગવાન શ્રી કૃષ્ણે જણાવ્યું છે કેઃ-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण गृह्यते ॥ ગીતા ૬-૩૫ હે મહાબાહુ અર્જુન, ચંચલ મનનો નિગ્રહ કરવો એ બહુ કઠણ છે પણ અભ્યાસ અને વૈરાગ્યથી તેનો પણ નિગ્રહ થઈ શકે છે વિષયમાં રહેલા દોષોનું દર્શન થતાં વૈરાગ્ય જાગી ઊઠે છે એનાથી વૃત્તિઓનો નિરોધ થાય છે અને ચિત્તમાંથી ફરીથી વૃત્તિઓ ન ઊઠે અને તેમાં પ્રકાશ અને શાંતિ જ વહ્યા કરે એવી સ્થિતિ ઉત્પન્ન કરવી એ અભ્યાસનું

કામ છે. મુક્તિ મળ્યા પછી સંપૂર્ણ કૃતાર્થતા થઈ જાય છે. સતત અભ્યાસ કરનારને કશું પણ અસાધ્ય નથી અનુભવીઓ કહી ગયા છે કે, किं दूरं व्यवसायिनाम् ? અવિશ્રાંત સતત મહેનત કરનારને ન મળે એવી કઈ વસ્તુ છે ? કોઈ નહિ. ॥ ૧૨ ॥

હવે 'અભ્યાસ'નું સ્વરૂપ અને તેનું પ્રયોજન અથવા લક્ષણ આ સૂત્રમાં જણાવે છે.

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

પદાર્થ: (तत्र) અભ્યાસ અને વૈરાગ્યમાંથી અભ્યાસનું સ્વરૂપ (स्थितौ) વૃત્તિ-રહિત બનેલા ચિત્તની પ્રશાંતવાહિતા જે સ્થિતિ છે તેને માટે (यत्नः) પ્રયત્ન કરવો તેનું નામ (अभ्यासः) અભ્યાસ છે.

ભાવાર્થ: આ સૂત્રમાં 'અભ્યાસ' પદ લક્ષ્યને બતાવે છે અને બાકીનો ભાગ લક્ષણને બતાવે છે. સ્થિતિને માટે પ્રયત્ન કરવો એ અભ્યાસનું લક્ષણ છે.

ચિત્તમાંથી જ્યારે વિરૂપ પરિણામરૂપ વૃત્તિઓ નિકળતી બંધ પડે ત્યારે ચિત્ત પોતાના સ્વરૂપમાં રહે છે અને તેમાંથી સાત્વિક વૃત્તિનું સ્વરૂપ પરિણામ ચાલ્યા કરે છે. ચિત્તની આ સ્થિતિને પ્રશાન્ત–વાહિતા કહે છે. આ સ્થિતિને માટે જે પ્રયત્ન હોય છે તેને અભ્યાસ કહે છે.

આ પ્રયત્ન એટલે યોગના સાધનોનું અનુષ્ઠાન કરવું તે તપ, સ્વાધ્યાય, અને ઇશ્વર–પ્રણિધાન આ ત્રણ ક્રિયાયોગ કહેવાય છે અને તે યોગનાં સાધનો છે. યમ, નિયમ,

આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ આ આઠ યોગનાં અંગ છે અને તે પણ યોગનાં સાધનો છે માટે તેનો અભ્યાસ કરવો જોઇએ. સાધ્યના સાધનમાં જ પ્રયત્ન હોય છે. સાધ્યમાં નહિ. જો ભોજનજન્ય તૃપ્તિ મેળવવી હોય તો તૃપ્તિનું સાધન જે ભોજન છે તેમાં જ પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. પછી સાધ્ય તો આપોઆપ આવી રહે છે. પેટ ભરીને જમી લીધું એટલે તૃપ્તિ આવી જ જાય છે. યોગના સાધનોમાં જો પ્રયત્ન કરવામાં આવે તો વહેલો કે મોડો યોગ પ્રાપ્ત થઈ જ જાય છે માટે ઇશ્વર પ્રણિધાન આદિ સાધનોનું અનુષ્ઠાન અવિચલ શ્રદ્ધાથી કરવું જોઇએ ॥ ૧૩ ॥

માણસમાં વ્યુત્થાન સંસ્કાર અનાદિકાળથી ચાલતો આવે છે અને તે અભ્યાસનો વિરોધી છે. વિરોધી પ્રબળ છે માટે તે યોગનાં સાધનોનું અનુષ્ઠાન નથી કરવા દેતો એનો શો ઉપાય ? (વ્યુત્થાન એટલે યોગ તરફ ન જતાં સંસારના વ્યવહારમાં મચ્યા રહેવું તે. લોકૈષણા, પુત્રૈષણા અને વિત્તૈષણા વગેરે પાછળ પ્રયત્ન કરતા રહેવું તે વ્યુત્થાન છે. આનો ખુલાસો નીચેના સૂત્રમાં કરે છે.)

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥ १४ ॥

પદાર્થ : (सः) તે અભ્યાસ (तु) તો (दीर्घकालनैरन्तर्य-सत्कारासेवितः) ખૂબ લાંબા સમયથી નિરંતરતાથી અને બહુ શ્રદ્ધાથી સેવાયેલો હોય તો તે (दृढभूमिः) મજબુત અવસ્થાવાળો થાય છે અને ચોક્કસ યોગને પ્રાપ્ત કરાવે છે.

ભાવાર્થ : અસંપ્રજ્ઞાત યોગનો અભ્યાસ સામાન્ય અભ્યાસ કરતાં જુદો પડે છે. યોગના સાધનોનું અનુષ્ઠાન લાંબા કાળ સુધી કરતાં જ રહેવું. કેટલાકને તો ઘણા જન્મો સુધી એ અનુષ્ઠાન કરવું પડે છે. આવા લાંબા અનુષ્ઠાન કરવામાં કંટાળો ખાવો ન જોઈએ.

વળી એકાદ માસ કે વરસ સુધી અનુષ્ઠાન કરી પછી તેને પડતું મૂકી દેવામાં આવે અને વળી પાછું તે અનુષ્ઠાન ચાલુ કરવું, આમ વચ્ચે વચ્ચે તેને મૂકી ન દેવું જોઈએ. એટલે કે વચ્ચે વચ્ચે વિચ્છેદ કરવો નહિ.

અનન્ય શ્રદ્ધાથી સાધનોનું અનુષ્ઠાન કરવું જોઈએ મનમાં ખાત્રી રાખવી જોઇએ કે આ અનુષ્ઠાન મને જરૂર યોગ પ્રાપ્ત કરાવશે. જો જરાક પણ અશ્રદ્ધા હશે તો એ અનુષ્ઠાન નિષ્ફળ થશે. 'श्रद्धया सत्य माप्यते' શ્રદ્ધાથી જ સત્યની પ્રાપ્તિ થાય છે. આવું વેદનું વચન છે. મતલબ કે (૧) દીર્ઘકાળ સેવિત, (૨) નૈરન્તર્યસેવિત અને (૩) સત્કારાસેવિત. સત્કારનો અર્થ આ ઠેકાણે શ્રદ્ધા છે. આમ ત્રણ વિશેષણવાળો અથવા ત્રણ ભૂમિકાવાળો અભ્યાસ હશે તો તે 'દૃઢભૂમિ' થશે. ૧ यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ ગીતા. ૬–૨૨. અભ્યાસ કરનાર યોગેચ્છુ ગમે તેટલું દુઃખ પડે તોપણ વિચલિત ન થાય. ત્યારે સમજવું કે એનો અભ્યાસ દૃઢભૂમિ છે, યોગને પ્રાપ્ત કરાવનાર છે. દૃઢભૂમિ એટલે કે સાધ્ય અર્થને ચોક્કસ પ્રાપ્ત કરાવે તે. જો યોગની પ્રાપ્તિ ન થાય તો અભ્યાસમાં ખામી છે એમ

એમ માનવું રહ્યું. જે માણુસ અનુષ્ઠાન સતત ચાલુ રાખવામાં કંટાળો ખાય છે તેને યોગ પ્રાપ્ત થઇ શકતો નથી.

ઉપર બતાવેલી ત્રણ ભૂમિકાવાળા અભ્યાસને સેવનાર માણુસ વ્યુત્થાન સંસ્કાર અનાદિ હશે તો તેને પણ જીતી શકાશે. અંધારૂં અનાદિ હોય તોપણ તે પ્રકાશ પાસે ટકી શકતું નથી. ત્રણ ભૂમિકાવાળો અભ્યાસ પ્રકાશરૂપ છે અને વ્યુત્થાન સંસ્કાર તો અંધકારરૂપ છે. ॥ ૧૪ ॥

હવે વૃત્તિઓના નિરોધનું કારણ જે વૈરાગ્ય છે, તેને સમજાવે છે; વૈરાગ્ય બે પ્રકારના છે (૧) અપર વૈરાગ્ય (૨) પર વૈરાગ્ય. આ સૂત્રમાં અપર વૈરાગ્ય સમજાવવામાં આવ્યો છે. વૈરાગ્ય એટલે ઇંદ્રિયોના વિષયો જે રૂપ, રસ, ગંધ, સ્પર્શ અને શબ્દ છે, તેને ભોગવવાની ઈચ્છા ન હોવી. પણ વિષયોને ન ભોગવવાની ઈચ્છા કયા કારણથી થાય છે એ પણ જોવું જોઇએ ? રોગ આદિને લીધે પણ વિષયનો ઉપભોગ કરવાની ઇચ્છા ન થાય તો તે વૈરાગ્ય કહેવાય, તોપણ વૃત્તિઓના નિરોધને માટે તે ઉપયોગી નથી.

આ કારણથી વૈરાગ્યની ચાર અવસ્થાઓ સમજાવવામાં આવી છે. અને તેનાં નામ આ પ્રમાણે છેઃ (૧) યતમાનસંજ્ઞા નામનો વૈરાગ્ય, (૨) વ્યાતિરેકસંજ્ઞા નામનો વૈરાગ્ય, (૩) એકેન્દ્રિયસંજ્ઞા નામનો વૈરાગ્ય, (૪) વશીકારસંજ્ઞા નામનો વૈરાગ્ય. આ વૈરાગ્યોની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે છેઃ—

(૧) યતમાનસંજ્ઞાઃ—વિષયોને મેળવવામાં અને તેનું રક્ષણ કરવામાં ક્લેશ થાય છે, વિષયોને મેળવવામાં હિંસા

પણ હોય જ છે આમ છતાં મેળવેલા વિષયો છેવટે તો નાશ પામે જ છે. આવી રીતે દોષને જોઈ વિષયને ભોગવવાની ઇચ્છા ન કરવી તેનું નામ યતમાનસંજ્ઞા વૈરાગ્ય. विरक्तिर्दोषदर्शनात् = દોષના દર્શનથી વૈરાગ્ય થાય છે. આ વૈરાગ્ય વૃત્તિઓને રોકવા માટે ઉપયોગી નથી.

(૨) વ્યતિરેકસંજ્ઞા વૈરાગ્યઃ—એટલે મેં આટલી ઇંદ્રિયો તો જીતી છે પણ આટલી બીજી ઇંદ્રિયો જીતવી બાકી છે. આમ જિતાયેલી અને નહીં જિતાયલી ઇન્દ્રિયોનો વિવેક કરવો તેનું નામ વ્યતિરેક સંજ્ઞા-વૈરાગ્ય. આ વૈરાગ્ય પણ વૃત્તિઓના નિરોધને માટે ઉપયોગી નથી.

(૩) એકેન્દ્રિયસંજ્ઞા વૈરાગ્યઃ—બહારની ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં રાગદ્વેષ અને મોહ ન રહેવા છતાં મનરૂપ એક ઈન્દ્રિયમાં તે ભરાઈ રહ્યા હોય છે માટે મનમાંથી પણ એને દૂર કરવાનો જે પ્રયત્ન થાય છે, તે એકેન્દ્રિયસંજ્ઞા-વૈરાગ્ય છે. એક ઈન્દ્રિય = મન. મનમાંથી પણ રાગ દ્વેષ અને મોહ કાઢી નાખવા.

(૪) વશીકારસંજ્ઞા વૈરાગ્યઃ—દૃષ્ટ અને અદૃષ્ટ, દિવ્ય અને અદિવ્ય, સાધારણ અને ઉત્તમોત્તમ વિષયો ઉપર પોતાનું પ્રભુત્વ હોવું અર્થાત્ કોઈ પણ રીતે વિષયોને આધીન ન થવું તે. 'વિષયો મારે આધીન છે હું વિષયોને આધીન નથી' –આવી અફર અને સફલ માન્યતા રાખવી તેનું નામ વશીકારસંજ્ઞા–વૈરાગ્ય. આ વૈરાગ્ય વૃત્તિઓના નિરોધને માટે ઉપયોગી છે, માટે સૂત્રમાં વૈરાગ્યની આ ચોથી અવસ્થા સમજાવે છે.

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥

પદાર્થ : (दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य) જે વિષય લોકમાં પ્રસિદ્ધ છે અને જે વિષય વેદ અને શાસ્ત્રોએ બતાવ્યા છે તે બંનેમાં જે સાધક તૃષ્ણા વગરનો થયો છે તેને (वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्) વશીકારસંજ્ઞા નામનો વૈરાગ્ય હોય છે.

ભાવાર્થ : 'અનુશ્રવ' આ શબ્દ વેદને માટે વપરાયો છે કારણ કે સૃષ્ટિની શરૂઆતથી માંડી આજ સુધી વેદનું ગુરુ પરંપરાથી શ્રવણ થતું આવ્યું છે. વેદનો આદ્ય ઉપદેશ કોઈ નથી એથી વેદ નિત્ય છે –એમ કહેવાનું તાત્પર્ય 'અનુશ્રવ' શબ્દમાં રહેલું છે.

જેને લૌકિક વિષયો આકર્ષી શકતા નથી તેમ વેદાદિ-શાસ્ત્રમાં બતાવેલા ઉત્તમથી ઉત્તમ વિષયો પણ આકર્ષી શકતા નથી તેને જ વશીકારસંજ્ઞા નામનો વૈરાગ્ય મળ્યો છે એમ સમજવું, અને એ જ વૈરાગ્ય વૃત્તિઓના નિરોધને માટે ઉપયોગી છે, એ વૈરાગ્યવાળો સાધક એમ માને છે કે વિષયો મારે આધીન છે, હું વિષયોને આધીન નથી. યોગને માર્ગે વળેલો આવો માણસ સંપૂર્ણ જિતેન્દ્રિય છે. વિષય ભોગવવાની પૂરેપૂરી શક્યતા હોય તોપણ આવા વૈરાગ્યવાળો સાધક વિષયને ભોગવતો નથી, એના મનમાં જરાપણ વિકાર થતો નથી. સમજવાને ખાતર કવિ કાલિદાસે ભગવાન્ શિવનો દાખલો કાવ્યમાં આપ્યો છે. તેનો ઉતારો જો કરવામાં આવે તો તે અસ્થાને નહીં ગણાય.

ભગવાન્ શંકર યોગની સાધના કરતા હતા તે વશીકારસંજ્ઞા વૈરાગ્યને બરાબર પચાવી શકચા હતા. એક વખતે તેને જીતવા કામદેવે પ્રયાસ કર્યો. આ ખબર પડતાં જ યોગિરાજ શંકરે કામદેવરૂપ વૃત્તિને પોતાની જ્ઞાનરૂપ ત્રીજી આંખ ઉઘાડી અને એ વૃત્તિને બાળીને ખાખ કરી નાખી. આ વૃત્તિ એ જ કામદેવ. આને માટે કવિએ સુંદર પદ્ય ગાયું છે તે આ પ્રમાણે છે– क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति ॥ तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥ જ્યારે કામવૃત્તિને શિવ બાળવા તૈયાર થયા ત્યારે બીજી વૃત્તિઓરૂપ દેવો કહેવા લાગ્યા કે 'ભગવન્, ક્રોધને રોકો રોકો' પણ એ શબ્દો ભગવાન્ શિવને કાને પહોંચે તે પહેલાં જ જ્ઞાનરૂપ અગ્નિએ કામદેવને ભસ્માવશેષ કરી દીધો. આવો વૈરાગ્ય હોય તો જ નિર્વિઘ્ને યોગને મેળવી શકાય માટે યોગી થવા ઈચ્છનારે 'વશીકારસંજ્ઞા'વાળો વૈરાગ્ય મેળવવો જોઇએ, વૈરાગ્યની પહેલી ત્રણ ભૂમિકાઓમાં ભૂલ ખાઇ જવાનો ભય ઊભો હોય છે અને તેમાં યોગભ્રંશની સંભાવના છે. માટે જ ચોથી અવસ્થાએ પહોંચેલા વૈરાગ્યને પ્રાપ્ત કરવો જોઇએ. ॥ ૧૫ ॥

વૈરાગ્ય બે પ્રકારના છેઃ (૧) અપર વૈરાગ્ય અને (૨) પર વૈરાગ્ય. અપર વૈરાગ્ય સૂત્ર ૧૫ માં સમજાવ્યો છે હવે આ સૂત્રમાં પર વૈરાગ્યને સમજાવે છે. અપર વૈરાગ્ય મેળવ્યા સિવાય પર વૈરાગ્ય મેળવી શકાતો નથી, એટલે ભાવ એ થયો કે અપર વૈરાગ્ય પર વૈરાગ્યનું કારણ છે. કારણ વગર

કાર્ય ન મેળવી શકાય એ તો સૌ કોઈ સમજી શકે છે. અપર વૈરાગ્યના વિષયો રૂપ, રસ, ગંધ, સ્પર્શ, શબ્દ વગેરે હોય છે જ્યારે પર વૈરાગ્યના વિષયો માત્ર ગુણો જ હોય છે અને તે સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ છે.

तत् परं पुरुषख्याते र्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

પદાર્થ : (तत्) તે (परम्) પર વૈરાગ્ય કહેવાય છે કે જે (पुरुषख्यातेः) પુરુષની ખ્યાતિથી થાય છે. અને એ વૈરાગ્ય (गुणवैतृष्ण्यम्) ગુણ તરફ પણ તૃષ્ણા ન રાખવી તે.

ભાવાર્થ : અપર વૈરાગ્ય મેળવ્યા પછી ગુરુ અને આગમદ્વારા પુરુષને એટલે આત્માને જાણવો, તેનો અભ્યાસ કરવો. સૌથી ઉત્તમ ધર્મમેઘ નામની સમાધિ કરી, આત્માનો સાક્ષાત્કાર કરી ચિત્તને રજોગુણ અને તમોગુણથી રહિત કરવું અને કેવળ સત્વગુણવાળું ચિત્ત બનાવવું. ચિત્તની આ સ્થિતિ થયા પછી તેમાં (ચિત્તમાં) પ્રસાદ નામનો ગુણ પેદા થાય છે. આ ગુણ તરફ પણ તૃષ્ણા ન રાખવી તેનું નામ પર વૈરાગ્ય છે. વિષયમાં દોષના દર્શન વગર વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થતો નથી. જેમ વિષયોમાં રાગ, દ્વેષ, મોહ, દુઃખ, ત્રાસ વગેરે દોષો જોયા તેમ પર વૈરાગ્યનો વિષય જે પ્રસાદરૂપ ગુણ છે તેને પણ જોવો જોઈએ. પ્રસાદ એ ચિત્તની કેવળ સાત્વિક વૃત્તિ છે પણ તે ચિત્તનું જ પરિણામ છે એ તો ચોક્કસ છે, ચિત્તનું કોઈ પણ પરિણામ નિત્ય નથી, માટે એ ગુણ પણ વહેલો કે મોડો જવાનો જ છે એમ

વિચારી તેના તરફ પણ વૈરાગ્ય મેળવવો જોઈએ. પ્રકૃતિના અથવા ચિત્તના કોઈ પણ ગુણમાં અટવાઇ ગયા પછી તેમાંથી સહેલાઇથી નીકળી શકાતું નથી, તેથી આત્માનો સાક્ષાત્કાર થતો નથી અને મુક્તિ પણ મળી શકતી નથી. આત્માએ પોતાના જ સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠા પામવી તેનું નામ મુક્તિ છે અને યોગની સાધના પણ તેને માટે જ હોય છે.

આ કારણથી દૃષ્ટ અને આનુશ્રવિક વિષયોના દોષ જોઇ જે યોગી વિરક્ત બન્યો છે, તે પહેલા પ્રકારનો વિરક્ત છે.

ગુરુ અને શાસ્ત્ર દ્વારા પુરુષનું જ્ઞાન મેળવી પછી તેનું નિરન્તર ધ્યાન કરી ધર્મમેઘ નામની સમાધિ પ્રાપ્ત કરવી અને આનાથી વિશુદ્ધ થયેલા ચિત્તમાં 'પ્રસાદ' નામનો સૌથી ઉત્તમ ગુણ ઉત્પન્ન થાય છે તેમાં પણ જેને વૈરાગ્ય થાય છે તે બીજા પ્રકારનો યોગી. આ બીજા પ્રકારનો યોગી જ અસંપ્રજ્ઞાત યોગને પ્રાપ્ત કરી 'સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠા' રૂપ મુક્તિ મેળવી શકે છે. એટલે જેણે પર વૈરાગ્ય મેળવ્યો છે તે જ મુક્તિને પામી શકે છે.

શિષ્ય : રૂપાદિ વિષયો તરફના વૈરાગ્યથી શું મુક્તિ ન મળી શકે? અને પુરુષનો સાક્ષાત્કાર ન થઇ શકે?

ગુરુ : ના, વિષયો તરફના વૈરાગ્યથી તો ચિત્તની અત્યંત સાત્વિક સ્થિતિ પ્રાપ્ત કરી શકાય છે અને તેમાં યોગી સ્થિર થાય છે. ચિત્ત ગમે તેટલું શુદ્ધ થાય તોપણ તે પ્રકૃતિમાંથી બન્યું છે એ વાત તો ચોક્કસ છે, એટલે

સાત્વિક ચિત્તમાં સ્થિર થયેલો યોગી પ્રકૃતિમાં જ લીન થાય છે, અને પ્રાકૃતિક આનંદ ભોગવે છે, પણ એને આત્મા અને પરમાત્માનું જ્ઞાન થતું નથી તેથી તે યોગી 'સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠા'રૂપ સાચી મુક્તિ મેળવી શકતો નથી. શાસ્ત્રમાં પણ લખ્યું છે કે वैराग्यात् प्रकृतिलयः' માત્ર વિષય તરફના વૈરાગ્યથી યોગી પ્રકૃતિમાં લીન બને છે. આત્મસાક્ષાત્કાર વિના મુક્તિ નથી એમ વેદ પણ જણાવે છે. કેમકે "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति" (યજુઃ) પરમાત્માને જાણીને જ મુક્તિ મેળવી શકાય છે.

જ્યારે યોગીને સત્વ અને પુરુષના વિવેકનું જ્ઞાન થાય છે ત્યારે તે માને છે કે મેં મેળવવાનું બધું મેળવી લીધું છે. મારા બધા જ ક્લેશો ક્ષીણ થઈ ગયા છે, સંસારમાં આવાગમનની બધી જ સંધિઓ છેદાઈ ગઈ છે. જ્યાં સુધી એ સંધિઓ હોય છે ત્યાં સુધી જંતુ મરે છે અને મર્યા પછી જન્મે છે. પર વૈરાગ્ય એ જ્ઞાનની પરાકાષ્ઠા છે. એ વૈરાગ્ય મળ્યા પછી કૈવલ્ય ચોક્કસ છે. માટે મુમુક્ષુ યોગીએ પર વૈરાગ્ય મેળવવો જોઈએ. ॥ ૧૬ ॥

અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય દ્વારા જ્યારે ચિત્તની વૃત્તિઓનો નિરોધ થઈ જાય છે ત્યારે ચિત્તમાં સંપ્રજ્ઞાત યોગ થાય છે. આ સંપ્રજ્ઞાત યોગ કેવો છે? તથા તેના કેટલા વિભાગો છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે. પહેલો સંપ્રજ્ઞાત અને પછી અસંપ્રજ્ઞાત યોગ થાય છે, માટે આ સૂત્રમાં પ્રથમ સંપ્રજ્ઞાત યોગ બતાવ્યો છે. જેમાં કોઈ એક સાત્વિક

વૃત્તિમાં પવિત્ર ધ્યેય–વિષય સ્ફુરતો રહે તે 'સંપ્રજ્ઞાત' યોગ કહેવાય છે. અથવા જે સમાધિમાં કોઇ એકજ પવિત્ર વિષયનું સંપ્રજ્ઞાન થતું રહેવું તે સમાધિ 'સંપ્રજ્ઞાત' યોગ કહેવાય છે. સૂત્ર આ પ્રમાણે છેઃ

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः ॥ १७ ॥

પદાર્થ : (वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात्) જે સમાધિમાં વિતર્ક, વિચાર, આનન્દ અને અસ્મિતાનો અનુગમ હોય (સહકાર હોય) તે સમાધિ (सम्प्रज्ञातः) સંપ્રજ્ઞાત યોગ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ : વિતર્ક એટલે સ્થૂલ વિષય, વિચાર એટલે સૂક્ષ્મ વિષય, આનંદ એટલે ઇંદ્રિય વિષય, અસ્મિતા એટલે બુદ્ધિ સાથે અભિન્ન રૂપે જણાતો આત્મા.

આ ચારેય વિષયો ક્રમથી સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં સ્ફુર્યા કરે છે. આથી સમજી શકાશે કે સંપ્રજ્ઞાત યોગ ચાર પ્રકારનો છેઃ—

(૧) સવિતર્ક સંપ્રજ્ઞાત યોગ,
(૨) સવિચાર સંપ્રજ્ઞાત યોગ,
(૩) સાનંદ સંપ્રજ્ઞાત યોગ,
(૪) સાસ્મિતા સંપ્રજ્ઞાત યોગ.

આથી એ પણ સમજાવી દીધું કે સંપ્રજ્ઞાત યોગની ચાર ભૂમિકાઓ છે.

સવિતર્ક સંપ્રજ્ઞાત યોગ એટલે જેમાં ચિત્તનું અલંબન સ્થૂલ હોય, અર્થાત્ કોઈપણ શુદ્ધ ભૌતિક વિષય. સવિચાર

સંપ્રજ્ઞાત યોગ એટલે જેમાં ચિત્તનું આલંબન સૂક્ષ્મ હોય, અર્થાત્ પાંચ પંચતન્માત્રામાંનું કોઈ એક. લિંગ એટલે બુદ્ધિ અને અલિંગ એટલે મૂળપ્રકૃતિ.

સાનંદ સંપ્રજ્ઞાત યોગ એટલે જેમાં ઇંદ્રિયો આલંબન હોય તે. ઇંદ્રિયો દ્વારા ભૌતિક આનંદ અનુભવાય છે, માટે ઇંદ્રિયોનું નામ જ આનંદ છે એવું આ સૂત્રમાં જણાવ્યું છે. વળી સત્વપ્રધાન અહંકારમાંથી ઇંદ્રિયો ઉત્પન્ન થઈ છે માટે ઇંદ્રિયો આનંદ કહેવાય છે. સત્વમાંથી જ સુખ ઉત્પન્ન થાય છે. સુખ અને આનંદ બંને એક જ વસ્તુ છે એવું આ સૂત્રમાં સૂત્રકારે જણાવ્યું છે.

સાસ્મિત સંપ્રજ્ઞાત યોગ એટલે જેમાં બુદ્ધિ સાથે અભિન્નરૂપે જણાતો આત્મા આલંબન હોય તે. एकात्मिका संवित् બુદ્ધિ સાથે આત્માનું અભિન્નરૂપે સંવેદન થવું તે અસ્મિતા.

સવિતર્ક સંપ્રજ્ઞાત યોગનો વિષય કોઈ સ્થૂલ ભૌતિક અર્થ હોય છે અને એ વિષય સાથે સૂક્ષ્મ પંચતન્માત્રા, ઇન્દ્રિય અને અસ્મિતા કારણરૂપે જોડાએલાં હોય છે, કારણ કે કાર્યમાં કારણ આવિષ્ટ જ હોય છે. દાખલા તરીકે, માટીરૂપ કારણ વગર માટીનો ઘડો હોઈ જ ન શકે. આ કારણથી સવિતર્ક સંપ્રજ્ઞાત યોગનું આલંબન ચારે ય હોય છે.

સવિચાર સંપ્રજ્ઞાત યોગનું આલંબન ત્રણ હોય છે. પંચતન્માત્રા, ઇન્દ્રિય અને અસ્મિતા.

ત્રીજો સાનંદ સંપ્રજ્ઞાત યોગ ઇન્દ્રિય અને અસ્મિતા આલંબનવાળો હોય છે.

ચોથો સાસ્મિત સંપ્રજ્ઞાત યોગ કેવળ અસ્મિતા આલંબનવાળો હોય છે.

આ કારણથી સવિતર્ક યોગને ચતુષ્ટયાનુગત, સવિચાર યોગને વિતર્કરહિત હોવાથી ત્રણથી અનુગત, સાનંદ યોગ વિતર્ક અને વિચારથી રહિત હોઈ બેથી અનુગત, અને સાસ્મિત યોગ વિતર્ક, વિચાર અને આનંદથી રહિત હોઇ કેવળ અસ્મિતા-આલંબનવાળો છે. ॥ ૧૭ ॥

અસંપ્રજ્ઞાત યોગનું કારણ પર વૈરાગ્ય છે અને એ યોગનું સ્વરૂપ કેવું છે તે આ સૂત્રમાં સમજાવે છે:

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ १८ ॥

પદાર્થ: (विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः) સર્વ વૃત્તિઓનો જ્યાં વિરામ અર્થાત્ અભાવ થઇ જાય છે અને તેનું કારણ જે પર વૈરાગ્ય છે તેના અભ્યાસથી ઉત્પન્ન થનાર (संस्कार-शेषः) ચિત્તમાં કેવળ સંસ્કાર બાકી રહેલ હોય છે તે (अन्यः) બીજો યોગ અસંપ્રજ્ઞાત છે.

ભાવાર્થ: આ સૂત્રમાં વિરામનો અર્થ વૃત્તિઓનો અભાવ કરવો અને 'પ્રત્યય'નો અર્થ કારણ કરવો.

બે પ્રકારના વૈરાગ્ય આગળ જણાવવામાં આવ્યા છે– એક પર અને બીજો અપર. અપર વૈરાગ્યથી સંપ્રજ્ઞાત યોગ થાય છે, અને પર વૈરાગ્યથી અસંપ્રજ્ઞાત યોગ થાય છે. એટલે કે પર વૈરાગ્ય અસંપ્રજ્ઞાત યોગનું કારણ છે.

આ પર વૈરાગ્યનો લાંબા વખત સુધી અભ્યાસ કરવો એટલે ચિત્તમાંથી કોઇપણ વૃત્તિ પરિણમશે નહિ. જ્યારે વૃત્તિઓનો વિરામ (અભાવ) ચિત્તમાં થઇ જાય ત્યારે સમજવું કે, હવે અસંપ્રજ્ઞાત યોગ પ્રાપ્ત થયો છે. તે વખતે ચિત્તમાં માત્ર સંસ્કાર જ બાકી રહેલો હોય છે. આત્મા જુદો છે અને પ્રકૃતિ પણ તેનાથી જુદી છે. એનો વિવેકપૂર્વક સાક્ષાત્કાર થવો અને તે જ્ઞાનમાં પણ વૈરાગ્ય જ્યારે થાય ત્યારે તે (જ્ઞાન) પણ ધીમે ધીમે અદૃશ્ય થઈ જાય છે. અને કેવળ આત્મા જ સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠિત થઇ જાય છે. અસંપ્રજ્ઞાત યોગમાં કોઇ આલંબન ન રહેવાથી તે નિર્બીજ સમાધિ = યોગ કહેવાય છે. અથવા બીજનો અર્થ ક્લેશો કરવામાં આવે તો ચિત્તનું ક્લેશ-રહિત થઇ જવું તે નિર્બીજ યોગ, કારણ કે ક્લેશો જ જન્મનું કારણ હોય છે. અવિદ્યા, અસ્મિતા, રાગ. દ્વેષ અને અભિનિવેશ આ પાંચ ક્લેશો કહેવાય છે. અપર વૈરાગ્યના અભ્યાસથી થયેલા યોગીને આત્માનું જ્ઞાન હોતું નથી, તે તો પ્રકૃતિના સત્ત્વગુણજન્ય આનંદ ભોગવતાં શરીર પડી ગયા પછી વિદેહ થઈને મહત્તત્વમાં = બુદ્ધિમાં લીન થઇ જાય છે અને જ્યારે અવધિ પૂરો થાય છે ત્યારે પાછા માનવ તરીકે જન્મે છે. અસ્મિતારૂપ ભૂમિને પામેલા યોગી પણ મરણ પછી પ્રકૃતિમાં જ લીન થઇ જાય છે, કારણ કે તેઓને આત્માનો સાક્ષાત્કાર થયેલો હોતો નથી માટે તેઓને પણ એ સમય પૂરો થયા પછી માનવ તરીકે જન્મવું પડે છે. એને મુક્તિ મળતી નથી. ऋते ज्ञानान्न

મુક્તિઃ આત્મા અને પરમાત્માના જ્ઞાન સિવાય મુક્તિ મળતી નથી. આ ઉપરથી સમજાશે કે બધાય યોગી આત્માના જ્ઞાની હોતા નથી. સંપ્રજ્ઞાત યોગવાળા યોગીઓને વિભૂતિ હોવાનું સંભવી શકે છે અને તેથી તેનામાં અસાધારણ શક્તિઓ આવી હોય છે પણ એ સ્થિતિ કાયમ રહે એ સંભવિત નથી, કારણ કે પ્રકૃતિ પરિણામિની છે તેથી એનું કોઇ પણ પરિણામ કાયમ રહી શકતું નથી. કાયમ રહેનાર તો આત્માનું સ્વરૂપ જ છે અને એ જ મુક્તિ છે; માટે સંપ્રજ્ઞાત યોગની ચારે ય ભૂમિકા મેળવ્યા પછી મુમુક્ષુ યોગીએ આગળ વધવું જોઈએ અને અસંપ્રજ્ઞાત યોગ પ્રાપ્ત કરવો જોઇએ. ॥ ૧૮ ॥

અસંપ્રજ્ઞાત યોગ બે પ્રકારનો છે, અને તેના બે નામ છેઃ (૧) ભવપ્રત્યય અસંપ્રજ્ઞાત યોગ અને (૨) ઉપાયપ્રત્યય અસંપ્રજ્ઞાત યોગ. તેમાંથી પહેલા પ્રકારના અસંપ્રજ્ઞાત યોગને આ સૂત્રમાં બતાવે છેઃ

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

પદાર્થઃ (भवप्रत्यय) 'ભવપ્રત્યય' નામનો અસંપ્રજ્ઞાત યોગ (विदेहप्रकृतिलयानाम्) વિદેહોનો અને પ્રકૃતિલયોનો હોય છે.

ભાવાર્થઃ પ્રથમ 'વિદેહ' અને 'પ્રકૃતિલય' કોને કહે છે તે સમજીએ.

વિદેહઃ જેઓએ પાંચમહાભૂત અને ઇંદ્રિયોમાંના કોઇ પણ વિકારને આત્મા તરીકે સમજી યોગ સાધ્યો છે

અને મરણ પામ્યા પછી ભૂત અથવા ઇંદ્રિયોમાં લીન બની ગયા છે તથા સ્થૂલ શરીરથી રહિત થઇને રહ્યા છે તે 'વિદેહ' કહેવાય છે. આ 'વિદેહ' યોગીઓ કેવળ સૂક્ષ્મ શરીરથી કામ કરી શકે છે, આટલો તેનામાં અતિશય આવેલો હોય છે. આ વિદેહોનું ચિત્ત વૃત્તિરહિત થયેલુ' હોય છે પણ એ ચિત્તમાં સંસ્કાર તો હોય જ છે તેથી તેઓનુ' ચિત્ત 'સાધિકાર' કહેવાય છે એટલે કે એ સંસાર અપાવનાર છે. ચિત્ત વૃત્તિરહિત હોવાથી વિદેહો માને છે કે અમે 'અસંપ્રજ્ઞાત' યોગને પામ્યા છીએ, પણ આ માનવું ખોટું છે. કારણ કે તેઓને આત્માનુ' જ્ઞાન થયેલું નથી. આ કારણથી એમનો યોગ 'ભવપ્રત્યય' છે. એ યોગ ભવને અર્થાત્ સંસારને ફરીથી આપે છે. એ યોગ પણ અવિદ્યાવાળો છે. 'ભવ' શબ્દના બે અર્થ છે. એક ભવ = સંસાર અથવા જન્મ. બીજો અર્થ અવિદ્યા થાય છે. भवन्ति जायन्ते अस्यां जन्तवः इति भवोऽविद्या જેમાં જીવાત્માઓ જન્મે છે = શરીરને પામે છે, માટે ભવ = અવિદ્યા. ખરી રીતે જોતાં વિદેહોનો યોગ અસંપ્રજ્ઞાત યોગ નથી, માટે એ યોગ ત્યાજ્ય સમજવો જોઇએ. હવે 'પ્રકૃતિલય' નો અર્થ સમજીએ.

જેઓ પ્રકૃતિમાં લીન થઈ ગયા છે, તે 'પ્રકૃતિલય' યોગીઓ કહેવાય છે. આ યોગીઓ અવ્યક્ત, મહત્, અહંકાર અને પાંચ તન્માત્રાઓમાંથી કોઇક તત્વને આત્મા તરીકે માની પ્રકૃતિમાં લીન થઇ ગયા હોય છે. તેઓની શક્તિ પણ વિદેહોના જેટલી હોય છે. તેઓનું ચિત્ત પણ

વૃત્તિરહિત થયેલું હોય છે, પણ તેમાં સંસ્કાર તો હોય છે તેથી તેઓનું ચિત્ત સાધિકાર હોય છે. આ યોગીઓ પણ પોતે મેળવેલા યોગને અસંપ્રજ્ઞાત યોગ માને છે પણ ખરી રીતે જોતાં તેમ નથી, કારણ કે તેઓને આત્મજ્ઞાન નથી અને અવિદ્યાથી ભરેલા હોય છે માટે 'પ્રકૃતિલય' યોગીઓનો અસંપ્રજ્ઞાત યોગ 'ભવપ્રત્યય' હોય છે. આ યોગ પણ અવિદ્યાવાળો અને સંસાર આપનાર હોવાથી ત્યાજ્ય છે.

જેમ દેડકાંઓ વરસાદ બંધ પડતાં માટી સાથે એક થઇને મર્યા જેવાં રહે છે અને ફરીથી જ્યારે વરસાદ પડે છે ત્યારે પાછા દેખાવ આપે છે, તેમ ભવપ્રત્યયસંજ્ઞક અસંપ્રજ્ઞાત યોગના બળથી પ્રકૃતિમાં લય પામેલા 'પ્રકૃતિલયો' યોગીઓ પાછા સંસારમાં જન્મે છે, કારણ કે તેઓને મુક્તિ મળેલી હોતી નથી. અને તેઓના ચિત્તમાં ફરીથી વૃત્તિઓ શરૂ થાય છે. ॥ ૧૯ ॥

હવે વિદેહ અને પ્રકૃતિલય યોગીઓથી બીજા યોગીઓની સમાધિનો જે ઉપાય છે તેનો ક્રમ આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥

પદાર્થ : (इतरेषाम्) વિદેહ યોગીઓ અને પ્રકૃતિલય યોગીઓથી જુદા પડતા યોગીઓનો અસંપ્રજ્ઞાતયોગ (श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वकः) શ્રદ્ધા, વીર્ય, સ્મૃતિ, સમાધિ અને પ્રજ્ઞારૂપ સાધનોથી ઉત્પન્ન થાય છે.

ભાવાર્થ: વિદેહાદિ યોગીઓથી જુદા પડતા યોગીઓનાં યોગસાધનો આ પ્રમાણે છે: (૧) શ્રદ્ધાઃ- ચિત્તના પ્રસાદને શ્રદ્ધા કહે છે. આત્મા અને પરમાત્મા છે એવી આસ્તિક્ય બુદ્ધિ હોવી અને તેમાં અનન્ય નિષ્ઠા હોવી તેનું નામ શ્રદ્ધા છે; આ શ્રદ્ધા પૂર્વજન્મના સંસ્કાર, આગમના અભ્યાસ, અનુમાન અને આચાર્યના ઉપદેશથી આવે છે. આ પવિત્ર શ્રદ્ધા યોગીને વિમાર્ગમાં (ખોટા માર્ગમાં) જતાં રોકે છે. માતા જેમ બાળકને અનર્થમાં પડતાં બચાવી લે છે તેમ. વિદેહ આદિ યોગીઓને શ્રદ્ધા તો હોય છે પણ આત્મવિષયક શ્રદ્ધા હોતી નથી, જો એ શ્રદ્ધા હોય તો તે આત્માનો સાક્ષાત્કાર કર્યા વગર યોગમાંથી અટકે નહિ.

આત્મા અને પરમાત્મા ઉપર અનન્ય શ્રદ્ધા ધરાવનાર યોગીને પ્રકૃતિ અને આત્માના વિવેકના જ્ઞાનની ખૂબ ઇચ્છા થાય છે અને તેથી યોગને આગળ વધારવામાં ખૂબ ઉત્સાહ થાય છે અને અનન્ય ઉત્સાહવાળા યોગીને સ્મૃતિ ઉત્પન્ન થાય છે. સ્મૃતિ એટલે અનાકુલ વિક્ષેપવિહીન ધ્યાન. વિક્ષેપ વગરનું ધ્યાન જ સમાધિને ઉત્પન્ન કરે છે. અહીં ઉપાય તરીકે સમાધિને બતાવી છે આઠ અંગોનું અનુષ્ઠાન પણ જરૂર કરવું પડે છે. અંગો વગર અંગી બની શકે જ નહિ. આ પ્રમાણે યોગનાં બધાં જ અંગોથી સંપન્ન થયેલા યોગીને સંપ્રજ્ઞાત યોગ સિદ્ધ થાય છે, પણ પરમાત્માનો જેને સાક્ષાત્કાર કરવો છે તે અહીં જ અટકતો નથી, તે આગળ વધે છે અને યોગની

એક એક ભૂમિને વટાવતો ચાલ્યો જાય છે અને જે જે સુંદર પ્રાકૃતિક વિષયસુખ પ્રાપ્ત થાય છે તેના ઉપર વૈરાગ્ય લાવે છે. છેવટે આત્મા અને પ્રકૃતિના વિવેકનું પણ જ્ઞાન થાય છે. આ જ્ઞાનથી પણ સંતોષ માનતો નથી તે તો પર વૈરાગ્યનો અભ્યાસ ચાલુ રાખે છે અને પોતાના સાચા સ્વરૂપમાં આવી સ્થિર થાય છે, પરમાત્માના સંબંધથી અપ્રાકૃતિક આનંદમાં મગ્ન થાય છે. આ જ અસંપ્રજ્ઞાત યોગ છે. આ યોગી પરમાત્મા સાથે માયાના આવરણ વગર યોગ એટલે સંબંધ પામે છે અને એનું ચિત્ત વૃત્તિથી રહિત અને અધિકારશૂન્ય બની પ્રકૃતિરૂપે બની રહે છે, અને પોતે સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠા પામે છે. આ જ છે જીવનની અંતિમ સીમા. ॥ ૨૦ ॥

શ્રદ્ધા, વીર્ય, સ્મૃતિ, સમાધિ અને પ્રજ્ઞા આ યોગના ઉપાયો છે એ ઉપરના સૂત્રમાં બતાવ્યું; હવે એ ઉપાયોના અનુષ્ઠાન કરનારા બધાય યોગીઓને યોગ અને તેનું ફળ મેળવવાને એકસરખો સમય લાગતો નથી, કોઈને વહેલો તો કોઈને મોડો યોગ પ્રાપ્ત થાય છે. આમ થવાનું કારણ યોગી થનારના સંસ્કારો અને તેના વૈરાગ્ય છે. પ્રથમ યોગી મૃદુ, મધ્ય અને અધિમાત્ર હોય છે, પછી તેના ઉપાયો મૃદુ, મધ્ય અને અધિમાત્ર હોય છે અને પછી તેના સંવેગો પણ મૃદુ, મધ્ય અને અધિમાત્ર હોય છે. આ કારણથી નવપ્રકારના યોગીઓ હોય છે. આ નવમાંથી જે જલદી યોગને મેળવે છે તેવા યોગીનો નિર્દેશ કરે છેઃ

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

પદાર્થ : (तीव्रसंयोगनाम्) જે યુંજાન યોગીને તીવ્ર સંવેગ અર્થાત્ તીવ્ર વૈરાગ્ય હોય છે તેને (आसन्नः) જલદી યોગ મળે છે.

ભાવાર્થ : આ સૂત્રમાં જે સંવેગ પદ મૂક્યું છે તેનો અર્થ વૈરાગ્ય થાય છે અને કોઇ તેનો અર્થ યોગીના ચિત્તમાં રહેલો સંસ્કાર પણ કરે છે. જેને તીવ્ર વૈરાગ્ય છે તેવા યોગીને સંપ્રજ્ઞાત યોગ જલદી મળે છે અને તેના ફળરૂપે અસંપ્રજ્ઞાત યોગ પણ જલદી મળે છે. સંપ્રજ્ઞાત યોગ પછી અસંપ્રજ્ઞાત યોગ મળે છે આ ક્રમ છે. ॥ ૨૧ ॥

હવે સંવેગમાં પણ મૃદુતા, મધ્યતા અને અધિમાત્રતા હોય છે તેથી,

मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥

પદાર્થ : (मृदुमध्याधिमात्रात्वात्) સંવેગ પણ મૃદુ, મધ્ય અને અધિમાત્ર હોવાથી (ततः) તેથી (अपि) પણ (विशेषः) વિશેષ હોય છે.

ભાવાર્થ : મૃદુતીવ્રસંવેગવાળાને નિકટતર અને અધિમાત્ર સંવેગવાળાને નિકટતમ યોગસિદ્ધિ હોય છે. આ પ્રમાણે યોગ મેળવવામાં વિલંબ અને અવિલંબ થવાનાં કારણો હોય છે. ॥ ૨૨ ॥

યોગી થનાર અને યોગને માટે પ્રયત્ન કરનાર માણસને વધારેમાં વધારે થોડા સમયમાં યોગ પ્રાપ્ત થાય તેને માટે ઉપરનાં સૂત્રોમાં બતાવેલા બે ઉપાયો જ છે કે તે

સિવાય બીજા પણ કોઈ ઉપાય છે? બીજા પણ ઉપાયો છે; તેમાંનો એક નીચેના સૂત્રમાં બતાવે છે :

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

પદાર્થ : (वा) બીજો પણ ઉપાય છે એ બતાવનાર 'વા' શબ્દ અહીં પ્રયોજાયો છે. (ईश्वरप्रणिधानाद्) ઈશ્વરનું પ્રણિધાન કરવાથી પણ યોગની પ્રાપ્તિ વહેલામાં વહેલી થાય છે,

ભાવાર્થ : આ સૂત્રમાં 'પ્રણિધાન' શબ્દનો અર્થ 'ભક્તિ' થાય છે. प्रणिधान = જડવું, જોડવું, મૂકવું, ધ્યાન કરવું અને ભક્તિ કરવી વગેરે. જેમકેઃ कनकभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्त्रपुणिप्रणिधीयते। न स विरौति न चापि स शोभते। भवति योजयितुर्वचनीयता। અર્થઃ– સોનાના ઘરેણા સાથે જડવા જેવો મણિ જો સીસા સાથે જડવામાં આવે તો તે મણિ રડતો નથી તેમ તે શોભતો નથી એમ પણ નહીં, અર્થાત્ શોભે છે, છતાં આવી રીતે અયોગ્ય સ્થાને જડનારની નિંદા તો થાય જ છે.

ઈશ્વરનું પ્રણિધાન કરવાથી એટલે કે ઈશ્વરની ભક્તિ કરવાથી યોગની પ્રાપ્તિ જલદી થાય છે. ભક્તિ એટલે ઈશ્વરે વેદ દ્વારા મનુષ્યને જે જે કર્મો કરવાને ઉપદેશ્યાં છે તેનું બરાબર પાલન કરવું, તે કર્મોનાં ફલની ઈચ્છા રાખવી નહીં, ઈશ્વરને જ એ કર્મો સમર્પિત કરી દેવાં, તેનું નામ ભક્તિ. વર્ણ અને આશ્રમમાં કર્તવ્ય તરીકે જણાવેલાં કર્મો યમ, નિયમ આદિ યોગના અંગોનું પાલન કરવાથી ઈશ્વર તેના પર પ્રસન્ન થાય છે અને

ઈશ્વર તેને જલદી યોગની પ્રાપ્તિ કરાવે છે. ઈશ્વર જેને ચાહે છે તેને કોઈ પણ વસ્તુ દુર્લભ હોતી નથી, ઈશ્વર પોતે પણ પોતાનું સ્વરૂપ તેને બતાવે છે. ઉપનિષદમાં કહ્યું છે કે 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्' (કઠ. ઉપ.: ૧–૨–૨૩) એ ઇશ્વર જેને પસંદ કરે છે તેના વડે જ ઈશ્વર પ્રાપ્ત કરી શકાય છે માટે ઈશ્વરની પસંદગી પામેલા આત્માને ઈશ્વર પોતાનું સ્વરૂપ ખુલ્લું કરે છે એટલે કે ઈશ્વર પોતાના સ્વરૂપનો સાક્ષાત્કાર કરાવે છે. ઈશ્વરનો સાક્ષાત્કાર એ જ મુક્તિ. જ્યારે ઈશ્વર ભક્ત ઉપર આટલી બધી દયા કરે છે તો ભકતને યોગ જલદી પ્રાપ્ત કરાવે એમાં તો કહેવાનું જ શું.

ઈશ્વરની પસંદગી પણ અકસ્માત્ કોઇના ઉપર ઊતરતી નથી, એ પસંદગીની ભૂમિકા પણ ઉપનિષત્કારે બતાવી છે કે,

नाविरतो दुश्चिरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैन माप्नुयात् ।
(કઠ. ઉપ. ૧–૨–૨૪.)

જ્યાંસુધી દુરાચરણમાંથી માણસ દૂર થયો નથી, શાંતિ પામેલો નથી, એનું મન પણ શાંત થયું નથી ત્યાંસુધી ઇશ્વરની પસંદગી એના ઉપર ઊતરતી નથી. જ્ઞાનપૂર્વક કર્મો કરી ઇશ્વરને પોતા તરફ વાળી શકાય છે.

આવા ભક્તને ઇશ્વર યોગ અને યોગનું ફળ (મુક્તિ) જલદી મેળવી આપે છે, આ ઉપરથી સમજાશે કે ઉપરનાં સૂત્રોમાં બતાવેલા ઉપાયો સિવાય ઇશ્વર-પ્રણિધાન (ઈશ્વર-

ભક્તિ) પણ યોગને વહેલામાં વહેલી તકે મેળવવાનું સાધન છે. ॥૨૩॥

સૂત્રકાર ઈશ્વરનું પ્રણિધાન કરવા કહે છે અને એ પ્રણિધાન પણ યોગનો ઉપાય છે, પણ શંકા એ થાય છે કે આ વિશ્વ ચેતન અને જડ આ બે જ તત્ત્વોથી બનેલું જણાય છે. આ બે સિવાય કોઈ ત્રીજું તત્ત્વ નથી, તો પછી ઈશ્વર એ કયું તત્ત્વ છે? જો ઈશ્વરનો જડ તત્ત્વમાં સમાવેશ થતો હોય તો જડનું પ્રણિધાન (ભક્તિ) જ થઇ શકે નહિ, તો પછી એ ભક્ત ઉપર દયાનું વલણ કેવી રીતે કરી શકે? અને જો ચેતન તત્ત્વમાં એનો સમાવેશ થતો હોય તો, ચેતન ઉદાસીન છે, એમાં કોઈ ધર્મ નથી એ તો અસંગ છે અર્થાત્ ગુણ, ક્રિયા, બીજા કોઈ પણ ધર્મથી રહિત છે. એમાં 'અસ્મિતા' પણ નથી એટલે કે હુંપણું પણ નથી, તો પછી એની ભક્તિ શી રીતે થઇ શકે? અને એમાં દયા પણ કેવી રીતે સંભવી શકે? આ શંકાના સમાધાન માટે આ સૂત્રમાં ઇશ્વરની વ્યાખ્યા બાંધવામાં આવે છેઃ

क्लेशकर्मविपाकाशयै रपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥ ॥ २४ ॥

પદાર્થઃ (क्लेशकर्म विपाकाशयैः) અવિદ્યાદિ ક્લેશો, સારાં અથવા ખરાબ કર્મો અથવા ધર્મ અને અધર્મ, જાતિ, આયુષ્ અને ભોગરૂપ વિપાક અને એ વિપાકાનુગણ વાસનાથી (अपरामृष्टः) કદી પણ નહીં સંયુક્ત થયેલ એવો જે (पुरुषविशेषः) એક વિશિષ્ટ ચેતન (ईश्वरः) ઇશ્વર છે.

ભાવાર્થ: એ ખરું છે કે જડ અને ચેતનથી જ સમગ્ર વિશ્વ વ્યૂઢ = બનેલું છે. જડ પદાર્થો ચોવીસ છે અને પચ્ચીસમું તત્ત્વ પુરુષ છે. પુરુષ એ જ ચેતન છે. ચેતન એક નથી પણ અસંખ્ય છે. જાતિ વાચક તરીકે પુરુષ એક-વચનમાં વપરાય છે. આ ચેતનોની અંદર એક એવું ચેતન છે અથવા અસંખ્ય પુરુષોમાંહેનો એક એવો પુરુષ છે કે જે 'ઈશ્વર' કહેવાય છે.

આ ઈશ્વરનું લક્ષણ અથવા વ્યાખ્યા એ છે કે; જે પુરુષને અવિદ્યા આદિ ક્લેશોનો, કર્મોનો, વિપાકનો અને આશય = વાસનાઓનો કદીપણ સ્પર્શ થયો નથી. 'આશય'= चित्तभूमौ आशेरते इति आशयाः ચિત્તરૂપ ભૂમિમાં જે સંસ્કાર-રૂપે રહે છે તેથી વાસનાઓને 'આશય' કહે છે.

શિષ્ય:–બધા જ પુરુષો ક્લેશ આદિથી સદૈવ રહિત જ છે કારણ કે બધા જ પુરુષો અસંગ છે. ગુણમાત્રથી એકસરખા છે તો પછી એક જ પુરુષ અસંગગુણોથી રહિત છે એમ કેમ કહી શકાય ? ક્લેશ આદિ તો ચિત્તમાં રહે છે. કારણ કે એ ચિત્તની જ વિશિષ્ટ વૃત્તિઓ છે માટે ઈશ્વરનું નિરૂપણ બરાબર નથી.

ગુરુ:–ક્લેશ આદિ ચિત્તમાં રહે છે એ વાત ખરી, છતાં પણ એ ક્લેશો પુરુષમાં છે એમ કહેવાય છે કારણ કે ક્લેશોના ફળનો ભોક્તા તો ચેતન આત્મા જ છે એ સાંખ્યશાસ્ત્રનો પણ સિદ્ધાંત છે. ભોક્તા છે માટે તે તેનો

(ક્લેશાદિનો) સ્વામી પણ છે. સ્વામી હોવાને કારણે જ ચિત્ત-ગત ક્લેશનાં ફળ આત્માને અનુભવવાં પડે છે. જેમકે સૈનિકો સામસામા લડે છે અને તેમાં એક પક્ષના સૈનિકો જીતે છે જયારે બીજા પક્ષના હારે છે, છતાં જય અને પરાજય તો તેનો સ્વામી જે રાજા હોય છે તેના જ ગણાય છે. આથી સૂત્રમાં સમજાવવામાં આવ્યું છે કે ઇશ્વર સિવાય બીજા બધા જ આત્માઓને બંધ હોય છે, મુકત આત્માને મુકિત પહેલાં બંધ હતો. પ્રકૃતિની ઉપાસના કરી પ્રકૃતિ-લીન યોગીઓને પહેલાં બંધ હતો અને પ્રકૃતિલયની સીમા પૂરી થશે એટલે પાછા એમને બંધનમાં આવવું પડશે. ફક્ત એક જ આત્મા એવો છે કે જેને પહેલાં બંધ ન હતો, અત્યારે નથી અને ભવિષ્યમાં પણ કદી આવવાનો નથી એ તો સદૈવ મુક્ત છે. સુખ–દુઃખરૂપ ભોગથી કોઇ દિવસ પણ એ પરામૃષ્ટ (સંબદ્ધ) થયો નથી. માટે કહેવામાં આવ્યું છે કે "પુરુષવિશેષ ઇશ્વર" છે.

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात् तं पुरुषं परम् ।
(मनुः–१२–१२२)

જે સર્વ જગતનો નિયંતા છે, જેનું સ્વરૂપ સદૈવ નિષ્કલંક છે, માત્ર સમાધિજન્ય બુદ્ધિથી જે જાણી શકાય છે, આંખ આદિ ઇંદ્રિયોનો જે વિષય નથી તેને પરમ પુરુષ પરમાત્મા જાણવો.

एतस्यैव अक्षरस्य प्रशासने गार्गि, (બૃહ. ઉપ.) હે ગાર્ગિ, આ પરમ પુરુષના પ્રશાસનમાં જગત ચાલી રહ્યું છે.

भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥

આ પુરુષ વિશેષના ભયથી અગ્નિ અને સૂરજ તપે છે અને આના જ ભયથી ઇન્દ્ર, વાયુ અને મૃત્યુ સદૈવ દોડતા રહે છે. આ પુરુષ વિશેષનું નામ નિત્ય બ્રહ્મ પણ છે. अपरं ब्रह्मशाश्वतम् । (मनु. १२–१२३)

એમ મહર્ષિ મનુ પણ કહે છે.

ન્યાયભાષ્યકાર શ્રી વાત્સ્યાયન મુનિ પણ લખે છે કે, गुणविशिष्ट मात्मान्तरमीश्वरः, तस्य आत्मकल्पात कल्पान्तरा नुपपत्तिः = ગુણોથી યુક્ત એક વિશિષ્ટ આત્મા જ ઇશ્વર છે. આત્માઓ સિવાય બીજા કોઇ પણ તત્ત્વોમાં ઈશ્વરનો સમાવેશ થતો નથી.

अधर्ममिथ्याज्ञानप्रमादहान्य । विशिष्टमात्मान्तरम् ईश्वरः। અધર્મ મિથ્યાજ્ઞાન અને પ્રમાદથી રહિત છે.

(ન્યાયદર્શન–ભાષ્ય. અ. ૪–આ. ૧. સૂત્ર ૨૧.)

શિષ્યઃ—ઇશ્વર એટલે જેમાં ઐશ્વર્ય હોય તે. જ્ઞાન અને ક્રિયા આ બે ઐશ્વર્ય છે. આ બે પુરુષ વિશેષ આત્મામાં ક્યાંથી આવ્યાં ? ચેતન શક્તિ તમારા મનમાં અપરિણામિની છે. રજોગુણ અને તમોગુણથી અસંસ્પૃષ્ટ સત્વનું પરિણામ જ ઇશ્વરમાં જ્ઞાન અને ક્રિયા છે. સત્વ ગુણનો સ્વામી ઈશ્વર ન હોઈ શકે, કારણ કે અવિદ્યામાંથી ઉત્પન્ન થએલા ચિત્તના સત્વગુણનો સંબંધ કોઇ પણ રીતે ન હોવો જોઇએ.

એ તો સદૈવ મુક્ત છે એમ આપ જ કહી રહ્યા છો. આ શંકાનું સમાધાન કરવા કૃપા કરો.

ગુરુઃ—એ પુરુષવિશેષ ક્લેશાદિથી અપરામૃષ્ટ હોવા છતાં તે પ્રકૃષ્ટ સત્વનું ઉપાદાન (ગ્રહણ) કરે છે અને એમ કરવાથી પણ તે બીજા આત્માઓની પેઠે અવિદ્યાવાળો થતો નથી કારણ કે, એ નિત્યસત્વસંબંધને લીધે નિત્યજ્ઞાની છે. નાટકમાં જેમ રામ આદિનું પાત્ર બનનાર દેવદત્ત પોતાના સ્વરૂપને ભૂલતો નથી, તે તો સમજે છે કે હું તો દેવદત્ત જ છું. રામરૂપે તો નાટક ભજવવા માટે બન્યો છું માટે પુરુષવિશેષ ઈશ્વર ખરી રીતે અવિદ્યાવાન્ નથી. વળી પ્રકૃષ્ટ સત્વ અને ઈશ્વર બંને નિત્યસંબંધવાળાં છે અર્થાત્ એ બંનેનો અનાદિ સંબંધ છે અને એ પુરુષવિશેષ નિત્ય ઈશ્વર છે. પરમાત્માની અંદર જે ઐશ્વર્ય છે તેનાથી વધુ કે તેના જેટલું ઐશ્વર્ય બીજા કોઈ આત્મામાં નથી, અને જ્યાં ઐશ્વર્યની પરાકાષ્ઠા થાય છે તે જ ઈશ્વર છે. આવો ઈશ્વર એક જ છે અને તેથી તે અદ્વિતીય કહેવાય છે. વેદાદિ શાસ્ત્રમાં પણ પરમાત્માને નિત્યજ્ઞાન અને નિત્યક્રિયાશક્તિવાળો નિરૂપ્યો છે. ॥ ૨૪ ॥

પુરુષવિશેષ ઈશ્વરમાં જ્ઞાનશક્તિ અને ક્રિયાશક્તિ બંને નિત્ય છે, તેને સમજાવતું આ નિમ્ન સૂત્ર છે. આ સૂત્રમાં જ્ઞાનશક્તિ અને ક્રિયાશક્તિનું અનુમાન કેવી રીતે કરવું એ બતાવવામાં આવ્યું છેઃ

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ २५ ॥

પદાર્થ:—(तत्र) તે પુરુષવિશેષમાં (सर्वज्ञबीजम्) સર્વજ્ઞનું બીજ (निरतिशयम्) અતિશયથી રહિત છે એટલે સર્વથી શ્રેષ્ઠ છે.

ભાવાર્થ:—પુરુષવિશેષ સર્વજ્ઞ છે એ કેવી રીતે જાણવું? આનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે: બુદ્ધિસત્વ ઉપર આવરણ નાખનાર તમોગુણ અને રજોગુણ છે. જેમ જેમ તમોગુણ અને રજોગુણ બુદ્ધિસત્વમાંથી ઓછા થતા જાય છે તેમ તેમ માણસમાં જ્ઞાન વધતું જાય છે. ભૂત-ભવિષ્ય અને વર્તમાન કાળમાં રહેલા માણસોમાં કોઇ થોડું જાણે છે અને કોઇ વધું જાણે છે. આ થોડું જાણવું એટલે અલ્પવિષય જ્ઞાન અને વધુ જાણવું એટલે વધારે વિષયવાળું જ્ઞાન. જ્ઞાનની ન્યૂનાધિકતા જ સર્વજ્ઞનું બીજ છે. બુદ્ધિસત્વ ઉપરથી ધીમે ધીમે તમોગુણ અને રજોગુણ હટતા જ જાય છે અને હટતાં હટતાં એક સમય એવો આવેલો હોય છે કે જેમાં બુદ્ધિસત્વ સંપૂર્ણપણે તમોગુણ અને રજોગુણથી રહિત થઇ જાય ત્યારે એ સત્વગુણમાંથી એની જ્ઞાનવૃત્તિ પ્રસરેલી જણાય છે કે જે વૃત્તિરૂપ જ્ઞાન સામ્ય અને અતિશયથી મુક્ત હોય છે. એટલે એના જેટલું બીજું કોઇ જ્ઞાન અથવા એના કરતાં વધારે ચડીઆતું કોઇ જ્ઞાન હોતું નથી. આ સર્વ-વિષયકજ્ઞાનને લીધે આત્મા સર્વજ્ઞ કહેવાય છે.

સર્વજ્ઞનું બીજ-ભૂત ન્યૂનાધિક જ્ઞાન કે જે વિવિધ આત્માઓ હોય છે તે પુરુષ-વિશેષમાં સંપૂર્ણરીતે વિકાસ પામેલું હોય છે, દાખલા તરીકે દ્રવ્ય ઉપર પરિમાણ

નામનો ગુણ હોય છે. જુદા જુદા દ્રવ્ય પદાર્થ ઉપર અલ્પ પરિમાણ અને મોટા પદાર્થ ઉપર મોટું પરિમાણ. પૃથ્વી કરતાં સૂર્યનું પરિમાણ મોટું, આ ન્યૂનાધિક પરિમાણ. વિભુ પરિમાણનું બીજ છે. તે વધતાં વધતાં આકાશમાં સામ્ય અને અતિશયથી રહિત થએલું મહત્-પરિમાણ હોય છે. એટલે કે આકાશ કરતાં કોઈ મોટું નથી અર્થાત્ આકાશમાં રહેલું પરિમાણ વિભુ છે, અનંત છે. જેમ વિભુ પરિમાણથી અનંત આકાશ છે તેમ પુરુષ વિશેષ સદૈવ વિભુ અને સર્વજ્ઞ છે કારણ કે, તેમાં શુદ્ધ સત્વગુણ પૂરેપૂરો વિકાસ પામેલો હોય છે. ભાષ્યકાર શ્રી વ્યાસ પણ કહે છે કે अस्तिकाष्ठाप्राप्तिः सर्वज्ञबीजस्य सातिशयत्वात् परिमाणवत् । સર્વજ્ઞનું બીજ એટલે કે જ્ઞાનનું થોડું વધું જાણવું તે, આ થોડું અને વધું જ્ઞાન વધતાં વધતાં સર્વજ્ઞાન થઇ જાય છે. જે જે સાતિશય હોય તે છેવટે નિરતિશય થઇ જાય છે. પરિમાણ-ગુણ સાતિશય છે તે પણ છેવટે નિરતિશય થઈ જાય છે.

જ્યાં જ્ઞાનની પરાકાષ્ઠા=સંપૂર્ણતા થઈ હોય છે તે સર્વજ્ઞ ઈશ્વર છે. જોકે અનુમાનથી સામાન્ય રીતે કોઇ આત્મા સર્વજ્ઞ જણાય છે, પણ તેનું વિશેષ સ્વરૂપ આગમ અર્થાત્ વેદાદિ સત્ય શાસ્ત્રોથી અને યોગજન્ય અનુભવથી જણાય છે. ॥ ૨૫ ॥

એ પુરુષવિશેષ નિત્ય છે એનું નિરૂપણ આ સૂત્ર કરે છેઃ

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥

પદાર્થઃ—(सः) તે ઈશ્વર (पूर्वेषाम् अपि) પૂર્વના આચાર્યોને પણ (गुरुः) ઉપદેશ આપનાર છે (कालेन) સમયથી (अनवच्छदात्) તેનું માપ થઇ શકતું ન હોવાથી.

ભાવાર્થ:—એ ઈશ્વર આ સર્ગમાં અને આ પહેલાના સર્ગોમાં ઉત્પન્ન થયેલા આચાર્યોનો અથવા ગુરુઓનો પણ ગુરુ છે કારણ કે એ ઇશ્વર અમુક કાળમાં ન હોતો, નથી, નહીં હોય –એવું નથી; એ તો નિત્ય છે માટે સદૈવ છે જ. વરસ અથવા યુગાદિથી એ ઇશ્વરનું માપ કાઢી શકાતું નથી માટે તે સર્વનો ગુરુ છે. બ્રહ્મા આદિનો પણ, એ ગુરુ છેઃ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणाति तस्मै । (श्वेताश्व उप. ६–१८) જે અંતર્યામી રૂપ હોઇ વેદદ્વારા આદિ-માનવને જ્ઞાન આપી બ્રહ્મા બનાવે છે અને તેનામાં વેદ ઊતારે છે. આ ઇશ્વર પ્રકૃતિના પરિણામોનું નિમિત્તકારણ છે. સર્વનો અંતર્યામી હોવાથી સર્વનો અધિષ્ઠાતા છે. જેમ શરીરનો અંતર્યામી જીવાત્મા શરીરનો અધિષ્ઠાતા છે તેમ. સત્વગુણને લીધે જ તેમાં સંપૂર્ણતા હોય છે તેથી તે 'ઇશ્વર' કહેવાય છે. પ્રકૃતિ અને જીવોથી તેનો દેશકૃત કે કાળકૃત વિભાગ જણાતો ન હોવાથી સ્વરૂપે જુદો હોવા છતાં એક રીતે આ બધું અદ્વૈત છે એમ કેટલાક વિદ્વાનો કહે છે. વેદ અને ઉપનિષદોમાં આનું વધારે સ્પષ્ટીકરણ છે માટે જિજ્ઞાસુઓએ તે વાંચવું ॥ ૨૬ ॥

હવે એ ઈશ્વરનું મુખ્ય નામ શું છે? તે આ સૂત્રમાં બતાવે છેઃ

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

પદાર્થ:—(तस्य) તે ઈશ્વરનો (वाचकः) વાચક (प्रणवः) પ્રણવ એટલે 'ओम्' છે.

ભાવાર્થ:—તે ઇશ્વરનો વાચક શબ્દ પ્રણવ અર્થાત્ ओरम् છે. વેદમાં પણ જણાવ્યું છે કે 'ओरम् खं ब्रह्म' (यजुः) આકાશ પેઠે સર્વવ્યાપક બ્રહ્મનું નામ ओरम् છે, અન્ય વિદ્વાનો પણ કહે છે કે:

अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः ॥
तस्योङ्कारः स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति ॥

અર્થ:—પરમાત્માનું સ્વરૂપ આંખથી જોઇ શકાતું નથી. એ તો ભાવનાથી ગ્રાહ્ય છે. વિશુદ્ધ મનથી એનો સાક્ષાત્કાર થાય છે. એ ઈશ્વરનું નામ ઓંકાર છે. 'ओम्' શબ્દથી તેને જો ઉપાસક યોગી યાદ કરે તો તે પ્રસન્ન થાય છે. ૐકાર શબ્દ અને તેનો અર્થ બ્રહ્મ, આ બંનેનો સંબંધ નિત્ય છે. અહીં એ નિત્ય સંબંધને વ્યક્ત કરવા માટે જ સંકેતની સમજણ આ સૂત્રમાં આપી છે.

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।

(ओम् इति एतत्) કઠ. ઉપ. ૧–૨–૧૫.

અર્થ:—બધા વેદો જે પદને વારંવાર વાચક તરીકે કહે છે, સર્વ તપો પણ જેને એ જ રીતે જણાવે છે અને જે પદના અર્થને મેળવવા મુમુક્ષુઓ અને યોગીઓ બ્રહ્મચર્યનું આચરણ કરે છે, હે નચિકેતા એ પદ 'ओम्' છે. (કઠ. ઉપ. ૧–૨–૧૫) 'ओम्' ને પ્રણવ એટલા માટે કહેવાય છે કે એની સર્વત્ર વેદાદિ શાસ્ત્રમાં સ્તુતિ કરેલ છે. प्र + नू

ધાતુથી પ્રણુવ શબ્દ બને છે. प्रकर्षेण नूयते स्तूयते सः प्रणवः ईश्वरः ब्रह्म इतियावत् । જેની ખૂબ સ્તુતિ કરવામાં આવે છે તે પ્રણુવશબ્દવાચ્ય ઈશ્વર છે અને બ્રહ્મ પણ છે. ॥ ૨૭ ॥

જેને વાચ્યવાચકભાવવિષયક પ્રણુવ શબ્દનું જ્ઞાન થઈ ગયું છે તે યોગીનું પ્રણિધાન સફલ થાય છે અને પ્રાણિધાનનું સ્વરૂપ આ સૂત્રમાં બતાવવામાં આવ્યું છેઃ

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

પદાર્થઃ—(तज्जपः) પ્રણુવને। જપ અને (तदर्थभावनम्) પ્રણુવશબ્દના અર્થની ભાવના કર્યા કરવી.

ભાવાર્થઃ—પ્રણિધાનનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે. પ્રણુવ= ૐકારને। જપ કરવો એટલે ૐકારનું વારંવાર મનમાં ઉચ્ચારણુ કરવું અથવા બહુજ ધીમેથી ૐકારનું રટન કરવું અને ૐકારને। અર્થ જે બ્રહ્મસ્વરૂપ છે તેની ભાવના કરવી. ભાવના એટલે ચિત્તને વારંવાર બ્રહ્મના સ્વરૂપમાં પરોવવા પ્રયત્ન કર્યા કરવો. આમ કરવાંથી ચિત્ત એકાગ્ર થઈ જાય છે. આ એકાગ્રતા એજ સંપ્રજ્ઞાત યોગ. આ યોગ અને પ્રણિધાન ચાલુ જ રાખવાં જોઇએ. યોગી-મુનિઓએ કહ્યું છે કેઃ—

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ॥
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥

સ્વાધ્યાય એટલે ૐકારને। જપ અને ૐકારના અર્થની ભાવના. તેનાથી યોગ કરવો. યોગ એટલે એકાગ્રતા અને

એકાગ્રતાથી સ્વાધ્યાય કરવો. સ્વાધ્યાય અને યોગની સંપત્તિથી = પરિપકવતાથી પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર થાય છે પ્રણિધાન એ જ સાચી ભક્તિ છે. ॥ ૨૮ ॥

પ્રણિધાન કરવાથી જે ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે તેનો નિર્દેશ આ સૂત્રમાં છે :

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ २९ ॥

પદાર્થ:—(ततः) પ્રણિધાન કરવાથી (प्रत्यक्चेतनाधिगमः) પ્રત્યક્ ચેતન એટલે જીવાત્મા, અર્થાત્ જીવાત્માનો સાક્ષાત્કાર થાય છે (अपि)પણ (अन्तरायाभावः) અન્તરાયોનો નાશ થાય છે (च) અને.

ભાવાર્થ:— પ્રણિધાન અને યોગ કર્યા કરવાથી જીવાત્માનો પણ સાક્ષાત્કાર થાય છે અને અન્તરાય એટલે યોગ સાધવામાં જે વિઘ્નો આવે છે તેનો પણ નાશ થાય છે.

શિષ્ય:– પ્રણિધાન તો પરમાત્માનું હોય છે તો તેનો જ સાક્ષાત્કાર થવો યોગ્ય છે. પણ એનાથી જીવાત્માનો સાક્ષાત્કાર શી રીતે થાય ?

ગુરુ:– પરમાત્મા જીવાત્માનો અન્તર્યામી છે માટે જીવાત્માનો પણ સાક્ષાત્કાર થાય છે. જેમકે પાંજરામાં પૂરાયેલા પોપટના સાક્ષાત્કાર કરનારને પાંજરાનો પણ સાક્ષાત્કાર થાય છે તેમ. બીજું પરમાત્મા અને જીવાત્મામાં ઘણું સરખાપણું છે તેથી પણ જીવાત્માનો સાક્ષાત્કાર થાય છે.

શિષ્ય:– પ્રત્યક્ ચેતનનો અર્થ જીવાત્મા શી રીતે થાય ?

ગુરુઃ- એ શબ્દ યૌગિક છે માટે તેના અવયવોના અર્થ ઉપર ધ્યાન આપવાથી જીવાત્મા અર્થ સમજાય છે. સમજો, प्रत्यक् = પ્રતીપ એટલે ચેતનથી વિરુદ્ધ અર્થ જડ પદાર્થ, તેના તરફ જેનું આકર્ષણ થયા કરતું હોય તે પ્રત્યક્ ચેતન, प्रतीपं विरोधिनम् अर्थम् अञ्चति गच्छतीति प्रत्यक् । प्रत्यक् चासौ चेतनः = स प्रत्यक् चेतनः = એટલે કે વિષય તરફ જે ચેતનનું વલણ હોય તે પ્રત્યક્ ચેતન છે. અથવા વિષયનો જે ચેતન ભોક્તા છે તે પ્રત્યક્ચેતન છે. પરમાત્મા ભોક્તા નથી એમ વેદમાંનું સ્પષ્ટ શ્રવણ છે. જેમ કે अनश्नन् अन्योऽभिचाकशीति ॥ બે ચેતનમાંથી એક પરમાત્મારૂપ ચેતન ભોક્તા નથી. અન્તરાય એટલે યોગમાં આવતાં વિઘ્નો. વ્યાધિ એટલે રોગ વગેરે. જે હવે પછીના સૂત્રમાં બતાવવામાં આવે છે. ॥ ૨૯ ॥

હવે યોગના અંતરાયો અથવા ચિત્તમાં જે વિક્ષેપ કરનાર છે તે. અને તે કેટલા છે. તેને બતાવતું આ સૂત્ર છેઃ

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

પદાર્થઃ- (व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि) વ્યાધિ, સ્ત્યાન, સંશય, પ્રમાદ, આલસ્ય, અવિરતિ, ભ્રાન્તિદર્શન, અલબ્ધભૂમિકત્વ અને અનવસ્થિતત્વ (चित्तविक्षेपाः) ચિત્તના વિક્ષેપો છે અને તે (अन्तरायाः) યોગના અંતરાયો કહેવાય છે.

ભાવાર્થઃ—યોગના અંતરાયો નવ છે. તેનું બીજું

નામ વિક્ષેપક પણ છે. ચિત્તને યોગમાંથી દૂર કરી વિષય તરફ લઈ જાય, તે વિક્ષેપ શબ્દનો અર્થ છે.

(૧) વ્યાધિઃ—ધાતુ, રસ અને કરણના વૈષમ્યને વ્યાધિ કહેવામાં આવે છે. ધાતુ એટલે શરીરને ધારણ કરનાર વાત, પિત્ત અને કફ. રસ એટલે જે પદાર્થ ખાવામાં કે પીવામાં આવ્યા હોય તેનું જે વિશિષ્ટ પરિણામ થાય તે. કરણ એટલે ઇંદ્રિયો. આ બધાનું વૈષમ્ય એટલે તેમાં ન્યૂનતા–અધિકતા થવી તે. આનું નામ જ વ્યાધિ અથવા રોગ કહેવાય છે. વ્યાધિ ચિત્તની વૃત્તિ નથી પણ તે ચિત્તવૃત્તિઓના નિરોધના પ્રતિપક્ષ = વિરોધી તો છે જ.

(૨) સ્ત્યાન = અકર્મણ્યતા. કર્મ કરવા માટેની અયોગ્યતા.

(૩) સંશય = બે વિરુદ્ધ કોટિને સ્પર્શતું જ્ઞાન, જેમ કે પેલું દેખાતું ઝાડનું ઠૂંઠું છે કે કોઇ પુરુષ છે? અહીં એક કોટિ ઠૂંઠું અને બીજી કોટિ પુરુષ છે, તેમ આ યોગ સાચો હશે કે ખોટો.

(૪) પ્રમાદ = સમાધિના સાધનોની ભાવના ન કરવી અથવા અનુષ્ઠાન ન કરવું.

(૫) આલસ્ય = શરીર અને ચિત્તમાં જણાતું ભારેપણું. જેને લીધે યોગમાં પ્રવૃત્તિ ન હોવી તે.

(૬) અવિરતિ = વિષય ભોગવવાની પ્રબળ ઇચ્છા.

(૭) ભ્રાંતિદર્શન = ખોટું દર્શન થવું તે.

(૮) અલબ્ધભૂમિકત્વ = સમાધિની ભૂમિકાઓની અપ્રાપ્તિ.

(૯) અનવસ્થિતત્વ = સમાધિની ભૂમિ મળી હોય તો તે પહેલી ભૂમિકામાં ચિટકી રહેવું, આગળ વધવું નહિ. આને લીધે ચિત્તમાં અસ્થિરતા આવે છે અને સમાધિનો ભંગ થાય છે. આ ચિત્તના નવ વિક્ષેપો છે, તે યોગના મળ કહેવાય છે અને યોગના અંતરાયો કહેવાય છે, માટે તેનો ત્યાગ કરવો જોઇએ. ॥ ૩૦ ॥

એ નવ અંતરાયો સિવાય બીજા પણ તેની સાથે અંતરાયો જન્મે છે. તેને આ સૂત્રમાં જણાવે છે :

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

પદાર્થ:—(दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाः) (૧) દુઃખ, (૨) દૌર્મનસ્ય, (૩) અંગમેજયત્વ, (૪) શ્વાસ (૫) પ્રશ્વાસ આ પાંચ (विक्षेपसहभुवः) ઉપર કહેલા અંતરાયો સાથે જન્મે છે.

ભાવાર્થ:—(૧) દુઃખ = ચિત્તની અંદર રહેલા રજોગુણનું પરિણામ. દુઃખ ત્રણ પ્રકારનાં છે—આધ્યાત્મિક, આધિભૌતિક અને આધિદૈવિક. જે દુઃખ રોગથી ઉત્પન્ન થાય છે તે શારીર દુઃખ કહેવાય છે, અને કામ વગેરેની પ્રબળ લાગણીઓથી જે દુઃખ ઉત્પન્ન થાય છે તે મનોજન્ય હોવાથી માનસ દુઃખ કહેવાય છે. આ બંને પ્રકારનાં દુઃખ આધ્યાત્મિક દુઃખ છે. વાઘ, વરુ આદિથી જે દુઃખ થાય છે તે આધિભૌતિક દુઃખ કહેવાય છે. અતિતાપ, અતિવર્ષા, દુષ્કાળ અને ગ્રહઆદિથી જે આફત ઊતરી આવે છે તે આધિદૈવિક દુઃખ કહેવાય છે.

(૨) ઇચ્છેલી વસ્તુ ન મળવાથી ઇચ્છાનો વિઘાત થાય છે અને તેથી મનમાં જે ક્ષોભ ઉત્પન્ન થાય છે, તે 'દૌર્મનસ્ય' કહેવાય છે.

(૩) અંગમેજયત્વ = શરીરના અવયવોમાં કંપ થવો તે અંગમેજયત્વ કહેવાય છે.

(૪) શ્વાસ = પોતે ન ઈચ્છતો હોય તો પણ પ્રાણ બહારના વાયુને અંદર પ્રવેશ કરાવે છે, તે 'શ્વાસ' કહેવાય છે. આ શ્વાસ રેચક પ્રાણાયામનો વિરોધી છે.

(૫) પોતે ન ઈચ્છતો હોય છતાં શરીરની અંદર કોઠાના વાયુનું બહાર નીકળવું તે 'પ્રશ્વાસ' કહેવાય છે. આ પ્રશ્વાસ પૂરક પ્રાણાયામનો વિરોધી છે. આ પ્રમાણે ૯ + ૫ = ૧૪ યોગના અંતરાયો છે. તે ચિત્તને વિક્ષિપ્ત કરી મૂકે છે, તેથી 'સમાધિ' થઈ શકતી નથી અને યોગ આગળ વધતો બંધ પડે છે, માટે અભ્યાસ અને વૈરાગ્યથી ઉપર બતાવેલા અંતરાયોને રોકવા પ્રયત્ન કરવો જોઈએ ॥ ૩૧ ॥

આ અંતરાયોને દૂર કરવા માટે એક બીજો ઉપાય બતાવે છે:

तत्प्रतिषेधार्थं मेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

પદાર્થઃ–(तत्प्रतिषेधार्थम्) આ વિક્ષેપોને દૂર કરવા માટે (एकतत्त्वाभ्यासः) એક તત્વનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ.

ભાવાર્થઃ–બંને પ્રકારના વિક્ષેપોને દૂર કરવા માટે એક તત્ત્વનો અભ્યાસ કરવો જોઇએ. આ એક તત્ત્વ ઇશ્વર

છે, અને તે આગળ સમજાવવામાં આવ્યું છે. ઈશ્વરનો અભ્યાસ ખૂબ શ્રદ્ધા અને લાંબા કાળ સુધી કરવો. આમ અભ્યાસ કરવાથી સર્વ અંતરાયો સાથે વાસના પણ નાશ પામી જશે.

वासनासम्परित्यागे यदि यत्नं करोष्यलम् ।
तत्ते शिथिलतां यान्ति सर्वाधिव्याधयः क्षणात् ॥

અર્થ:–જો તું વાસનાના પરિત્યાગ માટે મહેનત કરીશ તો તે આધિ અને વ્યાધિરૂપ અંતરાયો એક જ ક્ષણમાં શિથિલ થઈ જશે.

આ સૂત્રમાં ભાષ્યકાર વ્યાસે ક્ષણિકવાદી (વૈનાશિક બૌદ્ધ) બૌદ્ધ મતનું ખંડન કર્યું છે. જેમકે, તત્ત્વનો અભ્યાસ ત્યારે થઇ શકે કે જ્યારે તત્ત્વ સ્થિર હોય. પણ બુદ્ધમતને માનનારાઓ વિદ્વાનો જ્યારે બધાં જ તત્ત્વોને અથવા પદાર્થોને ક્ષણિક માને છે, વીજળીના ઝબકાર જેવાં ક્ષણિક માને છે, તો તેનો અભ્યાસ શી રીતે થઈ શકે? ચિત્ત પોતે ક્ષણિક અને તેનો વિષય બનનાર પદાર્થ પણ ક્ષણિક. ચિત્ત પોતે ક્ષણિક હોવાથી વિષયો ક્રમથી (વારાફરતી) ગોચર થઇ શકતા નથી. બહુ તો એક જ વિષયને ગ્રહણ કરી ચિત્તે નાશ પામવું રહ્યું. જો આમ છે તો ચિત્ત માત્ર એક જ વિષયને ગ્રહણ કરે છે એટલે તે એકાગ્ર જ છે, એટલે કે યોગ સ્વાભાવિક બની જાય છે, તો પછી યોગને માટે ઉપદેશ શા સારુ જોઇએ, અને એને માટે સાધનોનું અનુષ્ઠાન પણ શા માટે જોઈએ? ભાવ એ થયો કે કાં તો

યોગ થતો જ નથી, કાં તો યોગ સ્વાભાવિક જ છે. આમ બંને રીતે યોગનો ઉપદેશ બુદ્ધના મતમાં નકામો થઇ પડે છે. આવા ભાવનું ખંડનાત્મક ભાષ્ય છે.

બીજી વાત એ છે કે 'પાતંજલ યોગસૂત્ર' ઉપર ભાષ્ય કરનાર વ્યાસમુનિ એ મહાભારતના લેખક વ્યાસમુનિ ન હોવા જોઇએ, કારણ કે કૌરવ પાંડવના વખતમાં બુદ્ધ હતા જ નહિ અને એનો મત પણ ન હતો. આ ઉપરથી સમજાય છે કે પાતંજલ યોગ સૂત્ર ઉપર ભાષ્ય લખનાર કોઇ બીજા જ વ્યાસમુનિ હશે. ॥ ૩૨ ॥

જેના ચિત્તમાં પ્રસન્નતા હોય તે અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય સાધવા તૈયાર થાય, માટે આ સૂત્રમાં ચિત્તનું પ્રસાદન કેમ કરવું તે બતાવે છે :

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुख-दुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

પદાર્થ:-(सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणाम्) સુખી, દુઃખી પુણ્યવાન્ અને અપુણ્યવાન્ વિષયવાળી (मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणाम्) મૈત્રી, કરુણા, મુદિતા અને ઉપેક્ષાની (भावनातः) ભાવના કરવાથી (चित्तप्रसादनम्) ચિત્તમાં પ્રસન્નતા આવે છે.

ભાવાર્થ:-આ સૂત્રમાં સુખ, દુઃખ, પુણ્ય અને અપુણ્ય શબ્દોથી સુખી, દુઃખી, પુણ્યવાન્ અને અપુણ્યવાન્ સમજવા.

મૈત્રી = મિત્રતા, કરુણા = દયા, મુદિતા = હર્ષ અને ઉપેક્ષા = ઉદાસીનતા.

સુખી માણસોને જોઈ તેના તરફ મિત્રતાની નજરે જોવું જોઇએ. જરાપણ ઈર્ષ્યા કરવી નહિ. દુઃખી માણસોને જોઈ તેના તરફ દયાની લાગણીથી જોવું જોઇએ અને એમના દુઃખની નિવૃત્તિ થાય એવી ભાવના કરવી જોઇએ પણ એમના તરફ બેદરકારી ભર્યું વર્તન રાખવું નહિ. પુણ્યશાળીને જોઈ તેના પુણ્યને અનુમોદન આપવું જોઈએ અને તેથી હર્ષ પામવો જોઈએ, પણ એના તરફ દ્વેષની ભાવના જરાપણ રાખવી નહિ. અપુણ્યશાળીઓ તરફ ઉદાસીનતાની ભાવના કરવી જોઇએ, પણ એના અપુણ્ય અર્થાત્ પાપનું અનુમોદન કરવું નહિ. આવી ભાવનાઓ કરવાથી સાધકના ચિત્તમાં પ્રસન્નતા ઉત્પન્ન થાય છે અને તે ચિત્ત યોગના સાધનોનાં અનુષ્ઠાન કરવામાં સહેલાઇથી પ્રવૃત્ત થાય છે. મૈત્રી આદિની જે ભાવનાઓ બતાવી છે તેને યોગશાસ્ત્રમાં 'પરિકર્મ' કહ્યાં છે. પરિકર્મ પોતે યોગનું સાધન નથી પણ એ સાધનોને મદદ કરનાર છે. આવાં પરિકર્મની ભાવનાથી રાગ અને દ્વેષ નાશ પામે છે. ખાસ કરીને રાગ અને દ્વેષ જ ચિત્તમાં વિક્ષેપ ઉત્પન્ન કરે છે અને ચિત્તને અકળાવી મૂકે છે, માટે રાગદ્વેષનો કોઈ પણ ઉપાયે નાશ કરવો જ જોઇએ. એનો નાશ થયા પછી ચિત્તની એકાગ્રતાનો રાજમાર્ગ ખુલ્લો થઈ જાય છે.

મૈત્રીની ભાવનાનું પરિણામ

સુખી માણસો તરફ મૈત્રીની ભાવના કરવાનું ફળ એ છે કે મનમાં રહેલી ઈર્ષ્યાનો-અદેખાઇનો નાશ થાય

છે. ઈર્ષ્યાવાળું મન યોગની સાધના કરી શકતું નથી અને તેથી સાધકને યોગ મેળવવામાં નિષ્ફળતા મળે છે. આ કારણથી સુખી માણસને જોઈ સાધકે પોતાના મનમાં ખૂબ સંતોષ માનવો જોઈએ. જોકે મૈત્રી પાછળ રાગ અથવા આસક્તિ કામ કરે છે પણ આ ઠેકાણે તો માત્ર સંતોષનો જ ભાવ છે.

કરુણાની ભાવનાનું ફળ

દુઃખી માણસો તરફ દયાની ભાવના કરવાથી સાધકને કોઈના ઉપર અપકાર કરવાની લાગણી રહેતી નથી. પ્રસંગ આવે તો સાધકે દુઃખીઓનાં દુઃખ મટાડવા પ્રયત્ન પણ કરવો જોઈએ અને તેને માટે પોતામાં રહેલી શક્તિનો સારો ઉપયોગ કરવો જોઈએ. આવી સક્રિય ભાવનાથી મન સાત્વિક બને છે અને યોગ સાધવામાં બળ મળે છે.

મુદિતાની ભાવના કરવાનું ફળ

પુણ્યવાન્ માણસોને જોઈ સાધકને હર્ષ થવો જોઈએ અને તેથી અદેખાઈ નાશ પામે છે. આને લીધે સદા આનંદમાં રહી યોગ સાધવામાં બળ અને સફળતા મળે છે અને યોગનાં સાધન જે અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય આદિ બતાવ્યાં છે તે ઉપદ્રવરહિત થઈ આગળ વધતાં રહે છે.

ઉપેક્ષાની ભાવનાનું ફળ

પાપીઓ તરફ સાધકે તટસ્થતા રાખવાથી આત્મામાં સંતોષ સ્થિર થાય છે. આનો અર્થ એ નથી કે સાધકે પાપીને પાપ છોડવા ઉપદેશ પણ ન આપવો. પણ પાપી

પોતાનાં પાપકર્મો ઉપદેશ મળ્યા છતાં ન છોડે તો સાધકે એવાઓની સાથે લમણાંઝીક કરવી નહિ. તેના તરફ તટસ્થતા રાખી નિર્મળ મનથી યોગનાં સાધનમાં સાવધાનતા રાખી આગળ વધતાં રહેવું. આમ કરવાથી યોગ સાધવામાં ઉમંગનો નાશ થશે નહિ. ॥૩૩॥

પ્રાણાયામ કરવાથી પણ ચિત્તમાં એકાગ્રતા આવી શકે છે, માટે મૈત્રી આદિની ભાવના સાથે પ્રાણાયામ કરવાનો અભ્યાસ ચાલુ રાખવો. પ્રાણાયામ કરવાની રીત આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

પદાર્થઃ–(प्राणस्य) પ્રાણનું (प्रच्छर्दनविधारणाभ्याम्) બહાર કાઢવું અને બહાર રોકવું આ બે ક્રિયાઓ કરવાથી ચિત્તની એકાગ્રતા પ્રાપ્ત કરી શકાય છે (वा) મૈત્રી આદિ સાથે સમુચ્ચયને સૂચવે છે.

ભાવાર્થઃ–શરીરના કોઠાના વાયુને ખાસ પ્રયત્ન કરી અમુક માત્રાના પ્રમાણમાં બહાર કાઢવો અને અમુક માત્રાના પ્રમાણમાં બહાર જ રોકવો આ ક્રિયાઓ કરવાથી પ્રાણાયામ થાય છે. અંદરના વાયુને બહાર કાઢવો તે રેચક પ્રાણાયામ કહેવાય છે અને બહાર કાઢેલા વાયુને પોતાની શક્તિ પ્રમાણે બહાર જ રોકી રાખવો અને પછી બહારના વાયુને ખાસ પ્રયત્ન કરી વધારે પ્રમાણમાં અંદર લેવો. આ અંદર લેવાની ક્રિયાને 'પૂરક' પ્રાણાયામ કહે છે. અંદર અને બહાર પ્રાણને રોકી રાખવાની ક્રિયાને કુંભક પ્રાણાયામ

કહે છે. આમ રેચક, પૂરક અને કુંભક ત્રણ પ્રકાર પ્રાણાયામના છે, મન અને પ્રાણના પરિસ્પંદો લગભગ સરખા છે. પ્રાણના પરિસ્પંદોથી મનના પરિસ્પંદો જુદા જણાતા નથી તેથી પ્રાણના પરિસ્પંદો ઓછા થવાથી મનના પરિસ્પંદો પણ ઓછા થઇ જાય છે. અને મનના પરિસ્પંદો ઓછા થતાં તેમાં જે દોષ હોય છે તે નાશ પામવા લાગે છે. શાસ્ત્રોમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે–

यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते धमता मलाः।
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ॥

અર્થઃ–જેમ પર્વતના ધાતુઓનો મેલ અગ્નિમાં ધમન કરનાર વડે બાળી નાખવામાં આવે છે તેમ ઇંદ્રિયોના દોષો પણ પ્રાણને રોકવાથી એટલે કે પ્રાણાયામ કરનાર વડે બાળી નાખવામાં આવે છે. મનુસ્મૃતિમાં પણ આ જ પ્રમાણે જણાવ્યું છે. (જુઓ, અ. ૬–શ્લોક ૭૧.) પ્રાણ અને મનના પરિસ્પંદો એકસાથે થવાથી અને પ્રાણનો નિગ્રહ કરવાથી મનનો પણ નિગ્રહ થઇ જાય છે. આમ પ્રાણને આધીન મન હોવાથી પ્રાણાયામના અભ્યાસને નિત્ય કરતા રહેવું અને તેથી ધીમે ધીમે ચિત્તની ચંચલતા દૂર થઇ જશે અને યોગ સાધવો સરળ થઈ પડશે. પ્રાણનો જય થયે ચિત્તનો જય પણ જરૂર થાય છે. ॥ ૩૪ ॥

સંપ્રજ્ઞાત યોગના શ્રદ્ધા, વીર્ય, સ્મૃતિ, સમાધિ અને પ્રજ્ઞારૂપ પાંચ ઉપાયો આગળ બતાવવામાં આવ્યા છે (જુઓ, સૂત્ર–૨૦) અને ત્યાર પછી પ્રાણાયામ પણ યોગના

ઉપાય તરીકે ઉપરના સૂત્રમાં બતાવ્યો છે. યોગનો માર્ગ બહુ જ લાંબો છે અને તે બહુ લાંબે કાળે પ્રાપ્ત થનારી વસ્તુ છે. આથી યોગના અનુષ્ઠાન કરનારની શ્રદ્ધા ડગુમગુ થાય એ સ્વાભાવિક છે. યોગ ખરેખર સાચો હશે ? શું તેનું ફળ આત્માનો સાક્ષાત્કાર ચોક્કસ હશે ? આવો વિચાર લાંબે વખતે આવવો સ્વાભાવિક છે. માટે યોગની સાધના કરનારને યોગના અંગરૂપે કોઇ ભાગ પ્રત્યક્ષ થવો જોઇએ, જેથી યોગના સાધકને ખાતરી થાય કે યોગ સાચો જ છે અને તે સફળ પણ છે, હવે હું તેને જરૂર મેળવીશ. માટે યોગના પૂર્વ અંગરૂપે જે બાબત પ્રાપ્ત થાય છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

विषयवती प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ॥ ३५ ॥

પદાર્થ:– (विषयवती) દિવ્યગંધ આદિ વિષયોવાળી (उत्पन्ना) ઉત્પન્ન થયેલી (प्रवृत्तिः) પ્રવૃત્તિ, સંવિત્ અથવા જ્ઞાન (मनसः) મનની (स्थितिनिबन्धनी) સ્થિરતાને બાંધનારી હોય છે.

ભાવાર્થ:– યોગ સાધનારને જ્યારે સંયમ કરવાની શક્તિ આવી જાય છે (ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ આ ત્રણને યોગશાસ્ત્રમાં સંયમ કહેવામાં આવે છે.) ત્યારે તે યોગ સાધનારે નાસિકાના અગ્ર ભાગ ઉપર ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ કરવા પછી તેને દિવ્યગંધનો અનુભવ થશે. આવા અનુભવને વિષયવતી = વિષયવાળી પ્રવૃત્તિ કહેવામાં આવે છે. જે અનુભવમાં દિવ્યગંધ આદિ વિષયો હોય તે જ

વિષયવાળી પ્રવૃત્તિ. प्रकृष्टा चासौ वृत्तिश्च इति प्रवृत्तिः, એટલે ઉત્તમ—અલૌકિક અનુભવ એવો આનો અર્થ થાય છે. નાસિકાનો અગ્ર ભાગ એ દિવ્યગંધને ઉત્પન્ન કરનાર છે એમ યોગી લોકો માને છે. જો આ અનુભવ સાધકને થાય તો યોગને માટે સાધકની શ્રદ્ધા ખૂબ મજબૂત બને છે. આ પ્રમાણે પહેલી ગંધ પ્રવૃત્તિ થાય છે.

ત્યાર પછી સાધકે જીભના અગ્ર ભાગ ઉપર સંયમ કરવો જેથી દિવ્યરસની સંવિત્ (દિવ્યરસનો અનુભવ) થશે. ત્યાર પછી તાળવા ઉપર સંયમ કરવાથી રૂપની સંવિત્ (દિવ્યરૂપો દેખાવાં) થશે. પછી જીભના મધ્ય ભાગ ઉપર સંયમ કરવાથી સ્પર્શ સંવિત્ (દિવ્યસ્પર્શનો અનુભવ) થશે. અને પછી જીભના મૂળમાં સંયમ કરવાથી શબ્દ-સંવિત્ (દિવ્યશબ્દનો અનુભવ) થશે.—આ પ્રમાણે દિવ્યગંધ પ્રવૃત્તિ, દિવ્યરસ પ્રવૃત્તિ, દિવ્યરૂપ પ્રવૃત્તિ, દિવ્યસ્પર્શ પ્રવૃત્તિ અને દિવ્યશબ્દ પ્રવૃત્તિ—આવી પાંચ પ્રકારની પ્રવૃત્તિઓ યોગીને પ્રાપ્ત થવાથી તેને યોગના ઉપાયોમાં ખૂબ શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે અને તે યોગ સાધવામાં આગળ વધે છે.॥૩૫॥

ચિત્તને સ્થિર કરવાનો એક બીજો ઉપાય બતાવે છે:

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

પદાર્થ:- (वा) સમુચ્ચય બતાવનાર 'વા' શબ્દ અહીં વપરાયો છે. (विशोका) શોકને નાશ કરનાર અને સાત્વિક સુખને ઉત્પન્ન કરનાર (ज्योतिष्मती) ચિત્તગત સત્વગુણના

પ્રકાશવાળી પ્રવૃત્તિ ઉત્પન્ન થાય છે. અને તે ચિત્તની સ્થિતિને બાંધનારી છે.

ભાવાર્થ:- યોગનાં અંગોનો અભ્યાસ તથા વૈરાગ્ય વધારે પ્રમાણમાં આગળ વધ્યા પછી કેવળ સાત્વિક સુખને ઉત્પન્ન કરનારી અને સત્વગુણમાંથી ઉત્પન્ન થતા પ્રકાશવાળી પ્રવૃત્તિ ઉત્પન્ન થાય છે; આ પ્રવૃત્તિને 'જ્યોતિષ્મતી'ના નામથી યોગીઓ ઓળખે છે. આ પ્રવૃત્તિનો અનુભવ થયા પછી યોગની સાધનામાં વધારે શ્રદ્ધા અને વધારે ઉત્સાહ થાય છે અને આત્મસાક્ષાત્કાર કરવામાં જે વિપર્યય અને સંશય ઉદ્ભવવાની સંભાવના હોય છે તે દૂર થાય છે. પ્રમાદ જરા પણ રહેતો નથી. શરીરમાં ખૂબ લાઘવ = હલકાપણું, પ્રકાશ અને જ્ઞાનનો વિસ્તાર થાય છે. ચિત્તની તામસ અને રાજવૃત્તિઓ રોકાવા લાગે છે. આ બધાં ચિહ્નો યોગની ભાવિ સફલતાને સૂચવે છે.

હૃદય સંપુટની વચ્ચે તરંગ વગરના પ્રશાંત મહાસાગર જેવા ચિત્તગત સત્વગુણની ભાવના કરવાથી સર્વતઃ આધ્યાત્મિક સત્યજ્ઞાનનો પ્રકાશ વધતો અનુભવાય છે અને બધી વૃત્તિઓનો ક્ષય થતાં ચિત્તની અમોઘ સ્થિરતા ઉત્પન્ન થાય છે. યોગના નિષ્ણાતોએ આ સૂત્રનો બીજો અર્થ પણ કર્યો છે, પણ તેનો ભાવ તો આ અર્થને મળતો જ છે. એ અર્થ સમજવામાં યોગીને સુષુમ્ણા નાડીનું અનુભવાત્મક જ્ઞાન તથા હૃદયકમળને અધોમુખ અને ઊર્ધ્વમુખ કરવાની શક્તિ તથા પ્રાણાયામ કરવામાં કુશળતા હોવી જોઇએ. ॥ ૩૬ ॥

હવે, એક બીજો ઉપાય બતાવી સંપ્રજ્ઞાત યોગનો વિષય બતાવે છે:

वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

પદાર્થ:– (वीतरागविषयम्) જેમાંથી રાગ નાશ પામ્યો છે તે ચિત્ત અથવા જેઓનો રાગ નાશ પામ્યો છે એવા મહાપુરુષનું ચિત્ત, આવા ચિત્તનું ધ્યાન કરવાથી (वा) અથવા (चित्तम्) સાધકનું ચિત્ત સ્થિતિનું નિબંધન બને છે.

ભાવાર્થ:– માણસ સંકલ્પમય છે એમ શાસ્ત્રમાં કહેવામાં આવ્યું છે. જેઓ વીતરાગ બન્યા હોય છે એવા મહાપુરુષોનું નિરંતર ધ્યાન કરવાથી ધ્યાતા પણ તેવો જ વીતરાગ બની જાય છે. અથવા વીતરાગ મહાપુરુષોના રજોગુણ અને તમોગુણથી રહિત બનેલા ચિત્તનું આલંબન કરવાથી યોગનું અનુષ્ઠાન કરનારનું ચિત્ત એકાગ્ર બની રહે છે, એટલે કે એ સાધકને સંપ્રજ્ઞાત યોગની પ્રાપ્તિ થાય છે. કામી માણસ રાત-દિવસ કામની ચિંતા કરે છે અને તે છેવટે કામને પ્રાપ્ત કરે છે, તો પછી સાત્વિક ચિત્તનું નિરંતર ધ્યાન કરનારનું ચિત્ત સાત્વિક = એકાગ્ર કેમ ન બને? મહર્ષિ વશિષ્ઠ અને શુક આદિ મહાત્માઓનું ચિત્ત વીતરાગ હતું માટે યોગી થવા ઈચ્છનારે એ ચિત્તનું નિત્ય ચિંતન કરતા રહેવું. આ પણ પોતાના ચિત્તને સ્થિર કરવાનો એક ઉપાય છે. ॥ ૩૭ ॥

સ્વપ્નનું જ્ઞાન અને નિદ્રા અર્થાત્ સુષુપ્તિનું જ્ઞાન પણ

યોગીના મનની સ્થિર અવસ્થાને ઉત્પન્ન કરનારું બને છે. તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ ३८ ॥

પદાર્થ:- (वा) અથવા (स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनम्) સ્વપ્ન અને નિદ્રાના જ્ઞાનનું આલંબન કરવાથી યુંજાન (યોગને માટે પ્રયત્ન કરનાર) યોગીનું ચિત્ત એકાગ્રતાને પામે છે.

ભાવાર્થ:- ચક્ષુ આદિ બહારની ઇન્દ્રિયોની વૃત્તિઓ બંધ પડી હોય અને કેવળ મનથી જ આત્મા સુખ અને દુ:ખનો અનુભવ કરતો હોય એ અવસ્થા સ્વપ્ન કહેવાય છે. સ્વપ્નના જ્ઞાનનું આલંબન કરવું એટલે સ્વપ્નના જ્ઞાનના વિષયનું આલંબન કરવું. એ તો પ્રસિદ્ધ છે કે વિષય વગરનું જ્ઞાન હોઈ શકતું નથી, નિર્વિષયક જ્ઞાનનો ઉલ્લેખ પણ થઇ શકતો નથી; માટે સૂત્રકારનો આશય આ ઠેકાણે એવો છે કે જ્ઞાન કહેવાંથી જ્ઞાનનો વિષય સમજવો.

કોઈ બનતા યોગીને સ્વપ્ન આવ્યું હોય કે, કોઇ મહાકારુણિક મહાત્મા પોતાના માથા ઉપર હાથ ફેરવી દયાના અમૃત-ઝરણાં વરસાવી રહ્યા છે અને પોતાને યોગની રીતોનો અભ્યાસ કરાવી રહ્યા છે. આ ક્રિયાઓનો ક્રમ ચાલતો હોય એટલામાં આંખ ઊઘડી જાય, અને પોતે જાગરિત થઈ જાય, અને ત્યારે સવાર પડેલું જણાય તો સ્વપ્નમાં જોયેલા એ મહાત્માનું વારંવાર ચિંતન કર્યા કરવું. સંભવ છે કે, તેમ કરવાથી પણ ચિત્તની એકાગ્રતા થઇ જાય. સુષુપ્તિ અવસ્થા તમોગુણથી થાય છે અને સાત્વિક

ગુણથી પણ થાય છે. જાગ્યા પછી જો એમ લાગે કે શરીર ભારે થયું છે, મનમાં બેચેની ખૂબ વધી પડી છે, નિદ્રા તો ખૂબ ગાઢ આવી પણ કશું જણાયું નહિ, તો સમજવું કે તમોગુણથી નિદ્રા આવી ગઈ છે. ચિત્તની એકાગ્રતા માટે એ નિદ્રા (સુષુપ્તિ) કામની નથી.

સત્વગુણના વધારાથી જે નિદ્રા અર્થાત્ સુષુપ્તિ થાય છે તે કલ્યાણકારી છે. જયારે આ નિદ્રા ઊતરી જાય છે ત્યારે સુષુપ્તિ પામનારને જાગ્યા પછી અનુભવ થાય છે કે આજે મને બહુ જ ઊંડાણ ભરી ઊંઘ આવી, કોઇ પણ દેખાવ જણાયો નહિ. છતાં અત્યારે મને ખૂબ આનંદ થઈ રહ્યો છે, શરીર હળવું ફૂલ જેવું થઇ રહ્યું છે, ચિત્ત તો પ્રસન્નતાથી ઊભરાઈ જાય છે. જાગ્યા પછીનો આ અનુભવ સાત્વિક સુષુપ્તિને સૂચવે છે. આ નિદ્રાના જ્ઞાન વિષયનું ચિંતન કરવાથી ચિત્તની એકાગ્રતા થાય છે. ચિત્તની એકાગ્રતાના બતાવેલા ઘણા ઉપાયોમાંનો આ પણ એક ઉપાય છે. યોગી બનવા પ્રયત્ન કરનારે આ બાબતમાં ખૂબ સાવચેત રહેવું અને પોતાને અનુકૂળ આવે તેવા ઉપાયને અમલમાં મૂકવો. ॥ ૩૮ ॥

સંસારમાં માણસો જુદી જુદી રુચિવાળા હોય છે, તેથી કોઇને એક ઉપાય તો બીજાને બીજો ઉપાય ચિત્તની એકાગ્રતામાં અનુકૂળ આવે છે; માટે સૂત્રકાર કહે છે કે:

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ૩૯ ॥

પદાર્થ:– (वा) અથવા (यथाभिमतध्यानात्) પોતાને અનુકૂળ આવે એવા અર્થનું ધ્યાન કરવું.

ભાવાર્થ:- ચિત્તની એકાગ્રતાને માટે વિવિધ ઉપાયો શાસ્ત્રકારોએ બતાવ્યા છે, તેમાંથી પોતાને જે અનુકૂળ આવે અર્થાત્ જેનાથી પોતાનું ચિત્ત એકાગ્રતા તરફ ગતિ કરતું હોય એ ઉપાયનું અનુષ્ઠાન કરવું. અહીં એટલું જરૂર ધ્યાન રાખવું કે જે ઉપાય પોતે સ્વીકાર્યો છે તે સાત્વિક હોવો જોઇએ. સાત્વિક ગુણથી જ યોગના માર્ગમાં આગળ વધી શકાય છે. જો તમોગુણી કે રજોગુણી ઉપાય ભૂલથી સ્વીકારાઇ જશે તો યોગભ્રષ્ટ થવાનો પૂર્ણ સંભવ છે. મહાન યોગીઓએ તો ઓંકાર અને તેની માત્રાઓનું ધ્યાન કરવાનું અને તેનો અર્થ વારંવાર ચિત્ત ઉપર લાવવા જણાવ્યું છે. 'प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत' મરણ પર્યન્ત ઓંકારનું ધ્યાન સાધકે કરવું. (પ્રશ્નોપનિષદ ૫-૧) આ કરવાથી પોતે પર અથવા અપર બ્રહ્મને જરૂર પ્રાપ્ત થશે. જો સાધક= ધ્યાયકની ઇચ્છા ઉપર ઉપાયોની પસંદગી છોડી દેવામાં આવે તો શાસ્ત્રકાર ઋષિ-મુનિઓનો એને માટે ઉપદેશ શામાટે હોય ? ધ્યેય અર્થ શરીરની અંદર નાડી આદિ છે અને શરીરની બહાર સાત્વિક અર્થો છે, પણ આમાં સદ્ગુરુના દિગ્દર્શનની જરૂર છે. ઘણી વખત એવું પણ બનતું હોય છે કે જે માત્ર મનોરંજન જ હોય છે તેને પણ ચિત્તની એકાગ્રતાનો ઉપાય ભૂલથી માની લેવામાં આવે છે, માટે શાસ્ત્ર અને વીતરાગ બ્રહ્મનિષ્ઠ યોગીના ઉપદેશને અનુસરવું એ વધારે શ્રેયસ્કર છે.

સૂત્ર ૩૩ થી ૩૯ સુધીમાં જે જે ઉપાયો બતાવવામાં

આવ્યા છે, તેને યોગના નિષ્ણાતો 'પરિકર્મ' કહે છે. પરિકર્મ એટલે ચિત્તવૃત્તિઓના નિરોધ માટે જે મુખ્ય ઉપાય બતાવ્યો છે તેને પુષ્ટિ આપનાર બીજા ઉપાયો. જેમકે મૈત્રી આદિની ભાવના કરવામાં આવે તો ચિત્ત પ્રસન્ન થાય અને પ્રસન્ન થયેલા ચિત્તમાં વૈરાગ્ય અને અભ્યાસ સ્થિરપદ બની રહે. ॥ ૩૯ ॥

હવે આ બધા પરિકર્મરૂપ ઉપાયોનું ખાસ શું ફળ છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

परमाणुपरममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

પદાર્થઃ- (अस्य) પરિકર્મમાં નિષ્ણાત થયેલું ચિત્ત પરિકર્મિત કહેવાય છે. આ પરિકર્મિત ચિત્તને (परमाणु-परममहत्वान्तः) સૂક્ષ્મમાં ભાવના કરતાં કરતાં પરમાણુ-પર્યન્ત અને સ્થૂલમાં ભાવના કરતાં કરતાં પરમમહત્વ-પર્યન્ત સુધી (वशीकारः) અપ્રતિઘાત પ્રાપ્ત થાય છે, એટલે કે એ ચિત્તને સૂક્ષ્મ કે સ્થૂલ પદાર્થ ઉપર એકાગ્રતા કરવામાં જરાય પણ રુકાવટ થતી નથી. સર્વત્ર એ ચિત્ત એકાગ્રતા કરી શકે છે.

ભાવાર્થઃ- સૂક્ષ્મ પદાર્થ ઉપર એકાગ્રતા કરતાં કરતાં પરિકર્મિત ચિત્તવાળો યોગી પરમાણુ સુધી એકાગ્રતા કરી શકે છે. સૂક્ષ્મતાની અવધિ પરમાણુ છે. એ યોગીના ચિત્તને‌ા ક્યાંય પણ પ્રતિઘાત થતો નથી. અને સ્થૂલ અર્થાત્ મોટા પરિમાણવાળા પદાર્થ ઉપર એકાગ્રતા કરતાં કરતાં આકાશ ઉપર પણ એકાગ્રતા કરી શકે છે. કોઇ પણ

ઠેકાણે પરકર્મિત ચિત્તવાળો યોગી એકાગ્રતા કરવામાં નિષ્ફળ નીવડતો નથી. આમ કરવાથી કોઈ પણ ભૌતિક પદાર્થ એની એકાગ્રતાને અટકાવી શકતો નથી. આ વશીકાર એટલે અપ્રતિઘાતથી–સ્વતંત્રતાથી યોગી પરમ વૈરાગ્યને પામે છે. અને પછી એને પરિકર્મ કરવાની જરૂર રહેતી નથી. ચિત્તની વૃત્તિઓનો પણ નિરોધ થઈ ગયેલો હોય છે. સંપ્રજ્ઞાત અને અસંપ્રજ્ઞાત બંને યોગો તેને પ્રાપ્ત થઈ ગયેલા હોય છે. અહીં યોગી કૃતાર્થ થઈ જાય છે. ॥ ૪૦ ॥

ચિત્તની વૃત્તિઓને રોકવાના ઉપાયો બતાવ્યા, તથા વૃત્તિઓથી રહિત થઈ સ્થિર થયેલા ચિત્તનો વશીકાર (સ્વતંત્રતા) પણ બતાવ્યો. હવે વૃત્તિઓથી રહિત થયેલા ચિત્તનો વિષય કયો છે? આ ૪૧મા સૂત્રમાં સમજાવે છે:

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणे र्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु
तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

પદાર્થ:– (क्षीणवृत्तेः) જેની બધી વૃત્તિઓ ક્ષીણ થઈ ગઈ છે એવા ચિત્તની (अभिजातस्य) ઉત્તમ (मणेः) મણિની (इव) પેઠે (ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु) ગ્રહીતૃ, ગ્રહણ અને ગ્રાહ્ય વિષયોમાં (तत्स्थतदञ्जनता) ચિત્તનું જોડાવું અને તન્મયતા ધારણ કરવી (समापत्तिः) એ સમાપત્તિ છે.

ભાવાર્થ:– વૃત્તિઓથી રહિત થયેલા ચિત્તમાં જે ધર્મ આવિર્ભૂત થાય છે તે સમાપત્તિનું કારણ છે. આ સમાપત્તિ

સંપ્રજ્ઞાત યોગનું ફળ છે. સંપ્રજ્ઞાત યોગ ઉપર કાબુ આવ્યા પછી જ ચિત્તમાં સમાપત્તિનો આવિર્ભાવ થાય છે.

જેમ ઉત્તમોત્તમ સ્ફટિકમણિ લાલ, પીળા આદિ કોઈ પણ રંગવાળા વિષયનું સાંનિધ્ય પામી તે વિષયથી જાણે રંગાયો હોય તેમ લાગે છે, મણિ પાસે લાલ ફૂલ પડયું હોય તો મણિ લાલ દેખાય છે, તેમ ક્ષીણવૃત્તિવાળું ચિત્ત ગ્રાહ્ય, ગ્રહણ અને ગ્રહીતા સાથે જોડાઈ જાય છે અને ગ્રાહ્ય, ગ્રહણ અને ગ્રહીતાના આકારને ધારણ કરે છે.

તત્સ્થ = ગ્રાહ્ય આદિ સાથે જોડાવું, અને

તદંજનતા = તેના આકારને ધારણ કરવો તે.

ગ્રાહ્ય = ઘટ, પટ, નદી, સમુદ્ર, પર્વત વગેરે વિષયો.

ગ્રહણ = ઇન્દ્રિયો, જ્ઞાનેન્દ્રિયો અને કર્મેન્દ્રિયો.

ગ્રહીતૃ = ગ્રહીતા અર્થાત્ અહંકારયુક્ત આત્મા. અથવા અસ્મિતા સાથે એકરૂપતા પામેલો આત્મા.

સાર એ નીકળે છે કે ચિત્તનું ગ્રાહ્યરૂપે, ગ્રહણરૂપે અને ગ્રહીતારૂપે પરિણત થવું એ સમાપત્તિ કહેવાય છે. सम्यग् आपत्तिः = સમાપત્તિ અર્થાત્ ગ્રાહ્યાદિ અર્થ સાથે ચિત્તનું સારી રીતે જોડાવું, તન્મય થઈ જવું, તેના આકારે ચિત્તનું આકારમાં આવવું, એ સમાપત્તિ શબ્દનો અર્થ છે. સમાપત્તિને પણ કેટલાક વિદ્વાનો સંપ્રજ્ઞાત યોગ કહે છે પણ ખરી રીતે જોતાં સૂક્ષ્મ અંતર તો છે જ, કારણ કે સંપ્રજ્ઞાત યોગ ચિત્તમાં આવિર્ભાવ પામ્યા પછી જ સમાપત્તિરૂપ ધર્મનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે.

સૂત્રમાં ગ્રહીતૃ, ગ્રહણ અને ગ્રાહ્ય આવો ક્રમ રાખ્યો છે તેને બદલે ગ્રાહ્ય, ગ્રહણ અને ગ્રહીતૃ એવો ક્રમ રાખવો એ યોગ્ય છે; કારણ કે ગ્રાહ્ય એ સ્થૂળ વિષય છે, ગ્રહણ ગ્રાહ્ય કરતાં વધારે સૂક્ષ્મ છે અને ગ્રહીતૃ તો ગ્રહણ કરતાં પણ વધારે સૂક્ષ્મ છે. પ્રથમ સ્થૂળ વિષયમાં સમાપત્તિ થવી યોગ્ય છે, ઉદાહરણ-જેમ નિશાનબાજ માણસ પહેલાં સ્થૂળ વિષયને લક્ષ્ય બનાવે છે અને પછી સૂક્ષ્મ વિષયને લક્ષ્ય બનાવે છે અને છેવટે સૂક્ષ્મતર વિષયને લક્ષ્ય બનાવે છે.

સ્થૂળ ગ્રાહ્ય વિષયમાં સમાપત્તિ થયા પછી સૂક્ષ્મ ગ્રહણ-ઈન્દ્રિયમાં સમાપત્તિ થાય છે અને પછી સૂક્ષ્મતર અહંકારયુક્ત આત્મામાં સમાપત્તિ થાય છે, આમ સ્વીકારવું જ યોગ્ય છે. અહંકારયુક્ત આત્મા એટલા માટે કહેવામાં આવ્યો છે કે વિશુદ્ધ આત્મા તો કોઈનો વિષય બનતો જ નથી માટે અસ્મિતા (અહંકાર) સાથે જાણે અભેદ પામેલો હોય એવો આત્મા ચિત્તનો વિષય બને છે.

જ્યારે ચિત્તમાં તમોગુણવૃત્તિ અને રજોગુણવૃત્તિ તિરોહિત થઇ હોય અને ચિત્તમાંથી કેવળ સાત્વિકવૃત્તિ જ નીકળતી હોય ત્યારે ચિત્ત ક્ષીણવૃત્તિ કહેવાય છે.

સમાપત્તિમાં ચિત્તની ગ્રાહ્યાકાર, ગ્રહણાકાર અને ગ્રહીત્રાકાર સાત્વિકવૃત્તિ હોય છે. ॥ ૪૧ ॥

આ સમાધિપાદના ૧૭મા સૂત્રમાં સંપ્રજ્ઞાત યોગનું નિરૂપણ કર્યું છે અને એ સંપ્રજ્ઞાત યોગના ચાર વિભાગ

બતાવ્યા છે. જેમકે (૧) વિતર્કના અનુગમવાળો,(૨) વિચારના અનુગમવાળો, (૩) આનંદના અનુગમવાળો અને (૪) અસ્મિતાના અનુગમવાળો સંપ્રજ્ઞાત યોગ. યોગનું બીજું નામ 'સમાધિ' છે અને ત્રીજું નામ સમાપત્તિ પણ છે. હવે સમાપત્તિના ચાર વિભાગ પાડે છે: (૧) સવિતર્ક (૨) નિર્વિતર્ક (૩) સવિચાર (૪) નિર્વિચાર. આ ચારમાંથી આ સૂત્રમાં સવિતર્ક સમાપત્તિનું લક્ષણ બતાવે છેઃ

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥४२॥

પદાર્થ:- (तत्र) તે ચાર પ્રકારની સમાપત્તિઓમાં જે (शब्दार्थज्ञानविकल्पैः) શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાન અને વિકલ્પ પરસ્પર અધ્યાસરૂપોથી (संकीर्णा) સંકીર્ણ = મળેલી સમાપત્તિ છે તે (सवितर्का) સવિતર્ક સમાપત્તિ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:- જાતિ, ગુણ અને દ્રવ્ય આ અર્થો કહેવાય છે, બુદ્ધિની સત્વપ્રધાનવૃત્તિ એ જ્ઞાન કહેવાય છે. આપણે (गौः) 'ગાય' આવા શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરીએ છીએ અને એ શબ્દને જ જાણવા માગીએ છીએ; છતાં એ 'ગાય' શબ્દ સાથે અર્થ અને જ્ઞાન પ્રતીત થાય છે.

બીજું, આ 'ગાય' છે. અહીં આપણે માત્ર ગાયનો જ અર્થ કે, જે એક જાતનું પશુ છે તેને સમજવા માગીએ છીએ; છતાં એ અર્થ સાથે શબ્દ અને જ્ઞાન પ્રતીત થાય છે.

ત્રીજું, 'ગાય' એવું જ્ઞાન મને થયું. અહીં ગાય શબ્દથી માત્ર જ્ઞાન જ સમજવા માગીએ છીએ, છતાં એ જ્ઞાન સાથે શબ્દ અને અર્થ પ્રતીત થાય છે. આમ 'ગાય'

એમ કહેવા સાથે જ શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાન ત્રણે અર્થો પ્રતીત થાય છે. આ પ્રમાણે વિકલ્પમાં પણ સમજવું.

આનો ભાવ એ થયો કે, શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાન જાણે કે, અભેદ સંબંધથી જોડાયાં છે અને એવા સંબંધથી જોડાયલાં એ ત્રણેય જે 'સમાપત્તિ'માં જણાય છે, તે સવિતર્ક સમાપત્તિ કહેવાય છે. વિતર્ક શબ્દનો અર્થ ગાય અથવા ઘડો વગેરે સ્થૂલ પદાર્થો કે જે યોગીઓને સમાધિમાં વિષય તરીકે જણાતા હોય છે. અથવા યોગીએ જે સ્થૂલ પદાર્થ ઉપર એકાગ્રતા કરી હોય છે તે અર્થ વિતર્ક શબ્દથી સમજવો.

આ પ્રમાણે 'સવિતર્ક' સમાપત્તિ'નું લક્ષણ છે, અથવા કહો કે એનું સ્વરૂપ છે.

આ પ્રમાણે સવિતર્ક સમાપત્તિમાં અર્થનો જે સાક્ષાત્કાર થાય છે તે 'અપર પ્રત્યક્ષ' કહેવાય છે. ॥ ૪૨ ॥

'સવિતર્ક સમાપત્તિમાં વિષય સ્થૂલ હોવાથી એ સમાપત્તિ 'સ્થૂલસમાપત્તિ' કહેવાય છે. હવે સવિતર્ક સમાપત્તિનો બીજો ભેદ બતાવે છે. પહેલા ભેદમાં શબ્દ, જ્ઞાન, અને અર્થ એ ત્રણેનો ઉલ્લેખ હોય છે, ભલે પછી તે પરસ્પર અધ્યાસરૂપે હોય, અથવા અભેદરૂપે હોય. આ સૂત્રમાં સમાપત્તિના બતાવેલા બીજા ભેદમાં શબ્દ, જ્ઞાન અને કહેવાતો અભેદ સંબંધ; આ ત્રણેનો ઉલ્લેખ હોતો નથી માત્ર અર્થનો જ ઉલ્લેખ હોય છે તેથી એ સમાપત્તિ 'નિર્વિતર્ક' સમાપત્તિ કહેવાય છે. એનું સ્વરૂપ આ સૂત્રમાં જણાવે છે:

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ ४३ ॥

પદાર્થ:- (स्मृतिपरिशुद्धौ) શબ્દ અને અર્થની સ્મૃતિ (સ્મરણરૂપ જ્ઞાન) દૂર થયા પછી (इव) જાણે કે સમાપત્તિ (स्वरूपशून्या) પોતાના સ્વરૂપથી રહિત હોય, અને (अर्थमात्रनिर्भासा) કેવળ અર્થનું સ્ફુરણ થતું હોય તે (निर्वितर्का) નિર્વિતર્ક સમાપત્તિ છે.

ભાવાર્થ:- આ સૂત્રમાં 'સમાપત્તિ' શબ્દ ૪૨ મા સૂત્રમાંથી અનુવૃત્તિરૂપથી ખેંચી લાવવામાં આવે છે. શબ્દ અને અર્થનો વાચ્ય-વાચકભાવ સંબંધ હોય છે, આ સંબંધ સંકેતરૂપ હોય છે જેમ કે, અમુક શબ્દથી અમુક અર્થ સમજવો. આ સંકેતથી શબ્દમાં રહેલી અર્થને જણાવવાની શક્તિની સ્મૃતિ થાય છે. કેટલાક કહે છે કે શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાન આ ત્રણેનો અભેદ સંબંધ છે, એ સંબંધને અહીં 'સ્મૃતિ' કહી છે.

અર્થ અને જ્ઞાનનો 'વિષયવિષયિભાવ સંબંધ' હોય છે. વિષયને જોતાં જ શબ્દ અને અર્થના સંકેતને જાણનારને તે વિષયનું જ્ઞાન થાય છે. શબ્દ અને અર્થનો સંકેત દૂર થયા પછી નિર્વિતર્ક સમાપત્તિ થાય છે. અને તેમાં કેવળ અર્થનું જ સ્ફુરણ હોય છે, અર્થના શબ્દનું સ્મરણ થતું નથી, અર્થનું જ્ઞાન પણ જાણે કે છૂપાઈ ગયેલું હોય છે, માત્ર અર્થ જ પ્રકટરૂપે હોય છે. સમાપત્તિએ જાણે કે પોતાના સ્વરૂપને પણ ગુમાવી દીધું હોય એમ લાગે છે અને ધ્યેય-રૂપ અર્થ સિવાય બીજા કશાયનું પ્રત્યક્ષ થતું નથી. જ્યારે યોગીને આ જાતની સમાપત્તિ થાય ત્યારે એ નિર્વિતર્ક

સમાપત્તિ કહેવાય છે અને આ સમાપત્તિમાં અર્થનો જે સાક્ષાત્કાર થાય છે, તે પરમ સાક્ષાત્કાર અથવા પરમ-પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન કહેવાય છે. આ સમાપત્તિમાં ધ્યેયરૂપ અર્થ તો સ્થૂલ જ હોય છે, પછી તે અર્થ પાંચ મહાભૂતોમાંનો કોઈ પણ હોય, અથવા એ ભૂતોમાંથી બનેલો કોઈ પણ અર્થ હોય. ॥ ૪૩ ॥

સ્થૂલ વિષયવાળી બે પ્રકારની સમાપત્તિ બતાવી; હવે સૂક્ષ્મવિષયવાળી બે પ્રકારની સમાપત્તિ આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥

પદાર્થ:– (एतया एव) આ સવિતર્ક અને નિર્વિતર્ક સમાપત્તિ દ્વારા (सविचारा) સવિચાર અને (निर्विचारा) નિર્વિચાર (च) અને (सूक्ष्मविषया) સૂક્ષ્મ વિષયવાળી (व्याख्याता) વ્યાખ્યાત થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ:– સમાપત્તિનો અર્થ સમાધિ થાય છે એ યાદ રાખવું, અથવા સમાધિની શરૂઆત થવી એ જ સમાપત્તિ સમજવી. જે સમાપત્તિમાં પાંચતન્માત્રામાંથી કોઈ પણ એક વિષય હોય અથવા ઈંદ્રિય વિષય તરીકે હોય તથા સાથે સાથે શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાન વિકલ્પ પણ હોય અને તે અર્થ સાથે તેના દેશ, કાળ, ધર્મ અને નિમિત્ત પણ સ્ફુરતા હોય તો સમજવું કે એ 'સવિચાર' સમાપત્તિ છે. નિર્વિચાર સમાપત્તિ તેનાથી ઊલટી હોય છે. નિર્વિચાર સમાપત્તિમાં કેવળ સૂક્ષ્મ અર્થ જ સ્ફુરતો હોય છે. શબ્દ, સંબંધ,

દેશ, કાળ, ધર્મ આદિમાંથી કશાયનું સ્ફુરણ થતું નથી. ધર્મી તરીકે માત્ર અર્થ જ સમાધિમાં સ્ફુર્યા કરે છે. અર્થવિષયક પ્રજ્ઞા અર્થાત્ બુદ્ધિ પણ અર્થની અપેક્ષાએ ગૌણ બની રહે છે. જ્યાંસુધી સમાધિ રહે ત્યાંસુધી ધ્યેય-સ્વરૂપ અર્થ સિવાય બીજું કશું જ જણાતું નથી. આ પ્રમાણે સૂક્ષ્મવિષયવાળી નિર્વિચાર સમાપત્તિ હોય છે.

એકંદરે આઠ સમાપત્તિઓ થાય છે. તે આ પ્રમાણેઃ–

(૧) શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાન, દેશ, કાળ અને નિમિત્ત સહિત ભૂતભૌતિક સ્થૂલ અર્થવાળી 'સવિતર્કા' સમાપત્તિ.

(૨) કેવળ સ્થૂલ ભૂતભૌતિક અર્થવાળી 'નિર્વિતર્કા' સમાપત્તિ.

(૩) શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાન, દેશ, કાળ, નિમિત્તક, તન્માત્રા, સૂક્ષ્મધ્યેય અર્થવાળી 'સવિચારા' સમાપત્તિ.

(૪) કેવળ સૂક્ષ્મ તન્માત્રા અને ઇંદ્રિયરૂપ ધ્યેય અર્થવાળી 'નિર્વિચારા' સમાપત્તિ.

(૫) શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાન, દેશ, કાળ અને નિમિત્ત આદિ આનંદધ્યેય અર્થવાળી 'સવિચાર' સમાપત્તિ.

(૬) કેવળ આનંદરૂપ અર્થવાળી 'નિર્વિચાર' સમાપત્તિ.

(૭) શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાન, દેશ, કાળ, અને નિમિત્ત સહિત અસ્મિતારૂપ સૂક્ષ્મ અર્થવાળી 'સવિચાર' સમાપત્તિ.

(૮) કેવળ અસ્મિતારૂપ ધ્યેય અર્થવાળી 'નિર્વિચાર' સમાપત્તિ.

જ્યારે યોગી સમાધિમાંથી જાગે છે ત્યારે તે વ્યુત્થાન દશામાં છે એમ કહેવાય છે. ॥ ૪૪ ॥

સૂક્ષ્મ અર્થ છેવટે ક્યાં સુધી હોય છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ॥ ४५ ॥

પદાર્થ:- (सूक्ष्मविषयत्वं च) અને સૂક્ષ્મવિષયત્વનું (अलिङ्गपर्यवसानम्) પર્યવસાન અલિંગ અર્થાત્ પ્રકૃતિમાં થાય છે.

ભાવાર્થ:- સૌથી છેવટનો સૂક્ષ્મ અર્થ 'પ્રકૃતિ' અથવા 'પ્રધાન' છે. પ્રકૃતિનું બીજું નામ 'પ્રધાન' છે. કાર્યરૂપ સૂક્ષ્મ અર્થ હો કે કાર્યરૂપ સ્થૂલ અર્થ હો-એ બધા પ્રકૃતિના જ આધેય અર્થો છે. "प्रधीयते सर्वं कार्यात्मकं जगत् अस्मिन् तत् प्रधानम्" જેમાં સર્વ અર્થો ધારણ કરાય છે તે 'પ્રધાન.' આ પ્રધાન અને પ્રકૃતિને 'અલિંગ' કહે છે, કારણકે પ્રકૃતિનો કોઈ અર્થમાં લય થતો નથી. लयं गच्छति तल्लिङ्गम् જે પોતાના ઉપાદાન કારણમાં મળી જાય તે 'લિંગ' કહેવાય છે. પ્રકૃતિનું કોઈ ઉપાદાનકારણ નથી, બધાય કાર્યરૂપ અર્થનું મૂળ ઉપાદાનકારણ પ્રકૃતિ જ છે. માટે તે અલિંગ કહેવાય છે. પ્રકૃતિ સૌથી સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ અર્થ છે અને તેથી તે અલિંગ છે.

પ્રશ્ન:- શું પ્રકૃતિ સિવાય અલિંગ કોઈ બીજો સૂક્ષ્મ પદાર્થ નથી?

ઉત્તર:- ના.

પ્રશ્ન:- પુરુષ કે જેને સાંખ્યના-આચાર્યો ચેતન માને છે તે અલિંગ સૂક્ષ્મ નથી? પુરુષરૂપ ચેતન આત્મા પણ

કોઇમાં લય પામતો નથી, અને તેને સૌથી વધારેમાં વધારે સૂક્ષ્મ અર્થ તરીકે શાસ્ત્રકારોએ વર્ણવ્યો છે.

ઉત્તરઃ– ચેતન, આત્મા કોઇ પણ અર્થમાં લય પામતો નથી એ વાત ખરી, પણ અહીં અલિંગનો જરા વધારે અર્થ છે તે સમજી લેવું જોઇએ. જેમકે– યોગની પરિભાષામાં જે કોઇ ઉપાદાન કારણમાં લય ન પામે અને બધા જ અર્થોનું મૂળ ઉપાદાન કારણ હોય તે અલિંગ સૂક્ષ્મ અર્થ. આત્મા ભલે કોઇ અર્થમાં લય ન પામે પણ તે કોઈ દ્રવ્યરૂપ અર્થનું ઉપાદાન કારણ નથી. અથવા કહો કે પ્રકૃતિનું પરિણામ થાય છે જ્યારે આત્માનું પરિણામ થતું નથી. આ કારણથી પુરુષ સૂક્ષ્મ અર્થ ભલે હો પણ તે અલિંગ તો નથી જ. યોગશાસ્ત્રની પરિભાષા પ્રમાણે પ્રકૃતિ અલિંગ સૂક્ષ્મ અર્થ છે જ્યારે ચેતન આત્મા કેવળ સૂક્ષ્મ અર્થ છે. આથી સૂત્રકાર મહર્ષિ પતંજલિએ કહ્યું છે કે સૂક્ષ્મતાની હદ અલિંગ પ્રકૃતિ જ છે. પાંચ મહાભૂતો અને તેમાંથી બનતા અર્થો સ્થૂલ અર્થો કહેવાય છે. પાંચ તન્માત્રાઓ અને ઈંદ્રિયો સૂક્ષ્મ અર્થો છે. અહંકારરૂપ તત્ત્વ તેના કરતાં પણ સૂક્ષ્મ અર્થ છે અને મહત્‌તત્ત્વરૂપ અર્થ અહંકાર કરતાં પણ સૂક્ષ્મ છે અને પ્રકૃતિ અથવા પ્રધાન મહત્‌તત્વ કરતાં પણ સૂક્ષ્મ છે. આ બધા સૂક્ષ્મ અર્થો પરિણામને પામનારા છે. જ્યારે ચેતન આત્મા પરિણામ પામનાર નથી તેથી તે આ પારિભાષિક સૂક્ષ્મ અર્થમાં આવી શકતો નથી. ॥ ૪૫ ॥

હવે સંપ્રજ્ઞાત યોગનું સામાન્ય લક્ષણ આ નીચેનાં સૂત્રથી જણાવે છે:

ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

પદાર્થ:– (ता एव) ઉપર બતાવેલી સમાપત્તિઓ જ (सबीजः) બંધનું કારણ હોવાથી, બી વાળો (समाधिः) યોગ કહેવાય છે એટલે કે સંપ્રજ્ઞાત યોગ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:– આ સૂત્રમાં જે 'સમાધિ' શબ્દ છે તે સંપ્રજ્ઞાત યોગને જ સૂચવે છે, કારણ કે સમાધિમાંથી યોગ થાય છે. સ્થૂલ ગ્રાહ્ય વિષયક બે અને સૂક્ષ્મ ગ્રાહ્ય-વિષયક બે મળી ચાર સમાપત્તિઓ તો સૂત્રમાં જ બતાવી છે.

ગ્રહણવિષયક અર્થાત્ ઇંદ્રિયવિષયક બે અને ગ્રહીતૃ-વિષયક બે મળી ચાર સમાપત્તિઓ ઉપર બતાવેલી રીત પ્રમાણે સમજી લેવી. એટલે સાર એ નીકળે છે કે આઠ પ્રકારની સમાપત્તિઓ આ સૂત્ર પહેલાં બતાવવામાં આવી છે. આ આઠે પ્રકારની સમાપત્તિઓમાં ધ્યેયરૂપ એક અર્થ સ્ફુરતો રહે છે તેથી તે સમાપત્તિઓ 'સબીજ' સમાધિ કહેવાય છે. બીજ શબ્દનો અર્થ 'બી' થાય છે અને બીનો અર્થ કારણ થાય છે. આ સમાપત્તિઓ રૂપ સમાધિ પણ બંધનું કારણ હોવાથી 'સબીજ' સમાધિ કહેવાય છે. 'સબીજ સમાધિ' એ જ સંપ્રજ્ઞાત યોગ કહેવાય છે. જ્યારે 'વિવેક-ખ્યાતિ' અર્થાત્ પ્રકૃતિનો વિવેકપૂર્વક સાક્ષાત્કાર થાય ત્યારે જ નિર્બીજ સમાધિ થાય છે અને તે જ મોક્ષનું કારણ છે. જયાં સુધી સમાધિમાં જડ પ્રકૃતિના કોઇ પણ

પરિણામનું સ્ફુરણ થતું હોય ત્યાં સુધી બંધનું કારણ છે એમ જ સમજવું જોઇએ. સંપ્રજ્ઞાત યોગની કોઇ પણ અવસ્થામાં ચિત્ત સાધિકાર જ છે. સાધિકાર એટલે તાત્કાલિક નહીં તો ભવિષ્યમાં કોઇ ને કોઇ સમયમાં થોડુંઘણું દુઃખ તો આપે જ છે, માટે સબીજ સમાધિમાંથી નિર્બીજ સમાધિમાં મુમુક્ષુ યોગીએ ઊતરવું જ જોઇએ. ॥ ૪૬ ॥

ઉપર સૂત્રમાં કહેલી ચાર સમાપત્તિઓમાં નિર્વિચાર સમાપત્તિ ઉત્તમ છે તે કારણ સાથે આ સૂત્રમાં સમજાવે છેઃ

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

પદાર્થઃ– (निर्विचारवैशारद्ये) નિર્વિચાર સમાપત્તિ અત્યન્ત વિશુદ્ધ થયા પછી (अध्यात्मप्रसादः) બુદ્ધિમાં અને આત્મામાં અતિપ્રસન્નતા આવે છે.

ભાવાર્થઃ– બુદ્ધિના સત્વગુણ સાથે રજોગુણ અને તમોગુણનો જે વધારો થાય છે તે બુદ્ધિની અશુદ્ધિ ગણાય છે અને તેને જ આવરણ કહે છે. જ્યારે એ આવરણથી બુદ્ધિ રહિત થાય છે અને કેવળ સત્વગુણનું જ પરિણામ થયા કરે છે ત્યારે નિર્વિચાર સમાપત્તિમાં ‘વૈશારદ્ય’ આવ્યું છે એમ સમજવું. વૈશારદ્ય એટલે ચિત્તસ્થિતિનો અત્યંત સ્વચ્છ પ્રવાહ. જ્યારે યોગી આ ભૂમિકાએ પહોંચે છે ત્યારે તેની બુદ્ધિમાં અને આત્મામાં અત્યન્ત પ્રસન્નતા રહે છે.

પ્રશ્નઃ– ધ્યેય અર્થ બધા જ પ્રકૃતિના વિકારો જ હોય છે તો એ વિકારોના વૈશારદ્યથી ચેતન આત્મામાં પ્રસન્નતા કેવી રીતે આવે ?

ઉત્તરઃ- પ્રકૃતિજન્ય મહત્તત્ત્વ પ્રાકૃતિક વિકાર છે એમ સાંખ્યાચાર્યો માને છે અને તેનો આત્માની સાથે એવો વિચિત્ર સંબંધ છે કે બુદ્ધિની સ્વચ્છતા અને અસ્વચ્છતાની અસર આત્મામાં થાય જ છે. જેમ કે, ભૂખ એ પ્રાકૃતિક લાગણી છે અને તેથી જ ભોજન કરવાથી કુક્ષિગત ભોજનથી આત્માને તૃપ્તિ થાય છે. બુદ્ધિની નિર્મળતાની અસર આત્મા ઉપર થાય છે એ તો પ્રત્યક્ષ છે. અને નિર્મળતા મેળવવી એ યોગશાસ્ત્રનો એક પ્રાથમિક ઉદ્દેશ છે. જ્યારે આ અધ્યાત્મ-પ્રસાદ=અધ્યાત્મ પ્રસન્નતા યોગીને પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે યોગીને આવો અનુભવ થાય છે –એમ ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિ જણાવે છેઃ प्रज्ञाप्रसादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान् । भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनु पश्यति । જેમ પર્વતના શિખર ઉપર રહેલો માણસ જમીન ઉપર ઊભેલા માણસોને જુએ છે તેમ પ્રજ્ઞારૂપ મહેલમાં રહેલો યોગી બીજાઓને દુઃખોથી પીડાતા જુએ છે. પ્રજ્ઞાના પ્રસાદને પામેલા યોગીને જ્ઞાનો ક્રમથી જ નહીં પણ એકસાથે પણ થાય છે અને એનું જ્ઞાન સત્ય જ હોય છે. ॥ ૪૭ ॥

હવે યોગીને જ્યારે અધ્યાત્મપ્રસાદ ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તેને જે બુદ્ધિ (જ્ઞાન) થાય છે તેનું નામ આ સૂત્રમાં જણાવે છેઃ

ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

પદાર્થઃ- (तत्र) સબીજ યોગની પરિપકવદશામાં (प्रज्ञा) જે પ્રજ્ઞા (બુદ્ધિ અથવા જ્ઞાન) થાય છે તેનું નામ (ऋतंभरा)

'ऋतंभरा' છે. ऋत એટલે સત્ય અને भरा = ધારણ કારનારી = સત્યને જ ધારણ કરનારી પ્રજ્ઞા.

ભાવાર્થ :- જ્યારે યોગી નિર્બીજ યોગની ઉત્તમ કોટિમાં પહોંચી જાય છે ત્યારે તેને ऋतंभरा પ્રજ્ઞાની પ્રાપ્તિ થાય છે એટલે એ પ્રજ્ઞાનો જે વિષય હોય તે ગમે તેટલો દૂર હોય, ગમે ત્યાં ગુપ્ત હોય અને ગમે તેટલો સૂક્ષ્મ હોય તોપણ તે ऋतंभरा પ્રજ્ઞાથી પ્રત્યક્ષ થઈ જાય છે, તે વિષયનો કોઈ પણ ધર્મ ઋતંભરા પ્રજ્ઞાથી છૂપો રહી શકતો નથી. 'ઋતંભરા' એ નામ સાર્થક છે. ऋतं सत्यं बिभर्ति इति = ऋतंभरा ઋતનો અર્થ આ ઠેકાણે સત્ય થાય છે. એટલે કે સત્યને જ ધારણ કરનારી બુદ્ધિ. ઋતંભરા પ્રજ્ઞામાં ભ્રમ અથવા સંશયનો લેશ પણ હોતો નથી. ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિ આ ઠેકાણે અન્ય શાસ્ત્રનું આ પ્રમાણે વચન ટાંકે છે:

आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च ।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योग मुत्तमम् ॥

અર્થ વેદવિહિત શ્રવણ, મનન અને ધ્યાન અર્થાત્ ચિંતન અને તેનું વારંવાર અનુષ્ઠાન કરવું તથા તેમાં ખૂબ આદર હોવો તે. –આમ ત્રણ રીતે (શ્રવણ, મનન અને નિદિધ્યાસન) બુદ્ધિને પ્રાપ્ત કરનાર યોગી પરમ યોગને મેળવી શકે છે.

આ 'ઋતંભરા' પ્રજ્ઞા વિવેક ખ્યાતિને મેળવ્યા પછી પ્રાપ્ત થાય છે. આને 'ધર્મમેઘ સમાધિ' પણ કહે છે. ॥ ૪૮ ॥

હવે આગમ અને અનુમાનજન્ય બુદ્ધિ કરતાં ઋતંભરામાં શો ફેર છે તે જણાવે છે :

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

પદાર્થ:– (श्रुतानुमानाभ्याम्) વેદ અને વેદાંતાદિ-શાસ્ત્રથી તથા અનુમાન પ્રમાણદ્વારા જે જ્ઞાન મેળવાય છે તેના કરતાં (अन्यविषया) જુદા વિષયવાળી ઋતંભરા પ્રજ્ઞા છે કારણ કે (विशेषार्थत्वात्) એ બુદ્ધિમાં વિષયના તમામ ધર્મોનું પણ પ્રત્યક્ષ થાય છે.

ભાવાર્થ:– વેદના યથાર્થ ઉપદેશથી તથા અનુમાન કરવાથી પણ સત્ય અર્થનું જ જ્ઞાન થાય છે, મતલબ કે વેદ અને અનુમાનથી ઉત્પન્ન થનારી બુદ્ધિ પણ સત્યને જ ધારણ કરનારી હોય છે તો પછી એ બુદ્ધિ અને 'ઋતંભરા' બુદ્ધિમાં ફરક શો છે ?

આ પ્રશ્નનો ઉત્તર સૂત્રમાં જ આપવામાં આવ્યો છે કે વેદ અને અનુમાનથી જે બુદ્ધિ ઉત્પન્ન થાય છે તેનો વિષય સામાન્ય હોય છે, વિશેષ નહિ; જ્યારે ઋતંભરા પ્રજ્ઞાનો વિષય સામાન્ય અને વિશેષ બંને હોય છે. શબ્દ-જન્ય જે જ્ઞાન થાય તેનો વિષય સામાન્ય હોય છે જેમકે, કોઇ કોઇને ઉપદેશ આપે કે ગિરનાર પર્વતમાં સિંહ છે, તો સાંભળનારને સામાન્ય સિંહનો બોધ થાય છે, પણ એ સાંભળનાર જ્યારે ગિરનાર પર્વતમાં જઈ સિંહને જુએ છે ત્યારે સિંહ કેટલો ઊંચો, કેટલો લાંબો, કેવો ભયંકર વગેરે વિશેષો પ્રત્યક્ષ થઈ જાય છે, તેમ ધુમાડો જોઈ કોઈ અગ્નિનું અનુમાન કરે તેને પણ અગ્નિ સામાન્યનો જ બોધ થાય છે, જ્યારે એ અનુમાન કરનાર પર્વતમાં

જઈ અગ્નિનું પ્રત્યક્ષ કરે છે ત્યારે અગ્નિમાં રહેલા વિશેષો પણ પ્રત્યક્ષ થાય છે, જેમકે- અગ્નિ કેટલો છે, લાકડાનો છે કે ઘાસનો વગેરે વિશેષ વિષયો. જ્યારે ઋતંભરા પ્રજ્ઞા તો વિષયના સામાન્ય અને તમામ ધર્મોને પ્રત્યક્ષ કરી લે છે, એવા યોગીને વિષયના પ્રદેશમાં પણ જવું પડતું નથી. આ છે યોગનો મહિમા.

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ સમજાય છે કે વેદના ઉપદેશ દ્વારા બ્રહ્મનું ગમે તેટલું જ્ઞાન મેળવ્યું હોય તોપણ તે સામાન્ય જ્ઞાન જ છે. બ્રહ્મનું પૂરેપૂરું જ્ઞાન મેળવવું હોય તો ઋતંભરા પ્રજ્ઞા મેળવવી જ જોઈએ અને આ પ્રજ્ઞા નિર્વિચાર સંપ્રજ્ઞાત યોગની અંતિમ ભૂમિકાએ પહોંચ્યા વગર મળતી નથી, માટે યોગનો અભ્યાસ આત્માને જાણવા ઈચ્છનારે કરવો જોઈએ —એવું સૂત્રકારનું મંતવ્ય સમજાય છે.

શંકાઃ- જો વેદના યથાર્થ ઉપદેશથી પણ વસ્તુના વિશેષ ધર્મો ન જણાતા હોય તો વસ્તુમાં વિશેષ ધર્મ નથી એમ માનવામાં વાંધો શો છે ?

ઉત્તરઃ—જ્યાં પ્રમાણ ન પહોંચે ત્યાં પ્રમેય નથી આવો કોઈ નિયમ જણાતો નથી; માટે જ્યાં પ્રમાણ ન પહોંચે ત્યાં પણ પ્રમેય છે એમ માનવું રહ્યું. દાખલા તરીકે, જ્યાં જ્યાં ધુમાડો છે ત્યાં ત્યાં અગ્નિ છે, કારણ કે અગ્નિ ધુમાડાનો વ્યાપક અર્થ છે. આ કારણથી જ્યાં અગ્નિ ન હોય ત્યાં ધુમાડો પણ નથી આવો નિયમ છે. આ પ્રમાણે પ્રમેયનું વ્યાયક પ્રમાણ નથી, તેથી પ્રમાણ જ્યાં

ન પહોંચી શકે ત્યાં પ્રમેય નથી એમ માની શકાય નહિ. જુઓ, શરદ પુનમની સંપૂર્ણ ખીલેલી રાત્રિએ ચંદ્રમા સોળે કળામાં પ્રવેશ્યો હોય છે તે વખતે ચંદ્રમામાં હરણના ચિહ્ન જેવો કાળો ડાઘો દેખાય છે, એ ડાઘો ચંદ્રમાના પાછલા ભાગમાં હશે કે નહિ? આવી શંકા માણસના મનમાં ન ઊઠે? જરૂર એ શંકા થાય. પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ ચંદ્રમાના પાછલા ભાગમાં નથી પહોંચી શકતું માટે ત્યાં કાળો ડાઘો નથી, તેથી ચંદ્રમાના પાછલા ભાગમાં કાળો ડાઘો હોવાની શંકા કરવી નહિ, આવી રાજાજ્ઞા ન હોઈ શકે. જો પ્રમેયનું પ્રમાણ વ્યાપક હોત તો એવી રાજાજ્ઞા પણ માન્ય રાખી શકાત.

આ છે ઋતંભરા પ્રજ્ઞા અને શ્રુત તથા અનુમાનજન્ય પ્રજ્ઞામાં ફરક. આ કારણથી યોગાભ્યાસ કરવો જોઈએ. ॥ ૪૯ ॥

ઋતંભરા પ્રજ્ઞાનો પ્રતિબંધ અનાદિ વ્યુત્થાન સંસ્કાર પરંપરાથી થાય કે નહિ? એ પ્રશ્નનું આ સૂત્રમાં સમાધાન છે :

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ ५० ॥

પદાર્થઃ– (तज्जः) નિર્વિચાર સમાપત્તિથી ઉત્પન્ન થયેલો (संस्कारः) સંસ્કાર (अन्यसंस्कारप्रतिबन्धी) વ્યુત્થાન સંસ્કારનો પ્રતિબંધ કરનાર હોય છે.

ભાવાર્થઃ–નિર્વિચાર સમાપત્તિની પરિપકવ દશામાં ઉત્પન્ન થયેલ ઋતંભરા પ્રજ્ઞાનો સંસ્કાર વ્યુત્થાનસંસ્કારનો પ્રતિબંધ કરે છે. ઋતંભરા પ્રજ્ઞાનો સંસ્કાર વ્યુત્થાનના સંસ્કાર

કરતાં પ્રબળ હોય છે. ઋતંભરા પ્રજ્ઞાના સંસ્કારનું મૂળ સત્ય છે જ્યારે વ્યુત્થાનના સંસ્કારનું મૂળ અસત્ય હોય છે. સત્ય અર્થ મેળવીને બુદ્ધિ કૃતાર્થ થાય છે. જ્યાં સુધી સત્ય અર્થ બુદ્ધિને નથી મળતો ત્યાં સુધી જ તે ભટક્યા કરે છે. ક્યારેક એ બુદ્ધિ અસત્યને લીધે ભ્રમરૂપે બને છે, તો કોઈક સમયે સંશય રૂપે પણ બને છે. બુદ્ધિનો પ્રયાસ સદા સત્ય મેળવવા માટે જ હોય છે. સત્યમાં જ બુદ્ધિનો પક્ષપાત હોય છે. આ કારણથી વ્યુત્થાન સંસ્કાર નિર્બળ હોય છે, તેથી ઋતંભરાના સંસ્કારથી તે સંસ્કારનો પ્રતિબંધ થાય છે. એટલે કે વ્યુત્થાનના સંસ્કારો પછી થતા જ નથી. ઋતંભરા પ્રજ્ઞાથી નવા સંસ્કારો પડે છે અને તે સંસ્કારોથી ઋતંભરા પ્રજ્ઞા જ ઉત્પન્ન થાય છે. ઋતંભરાપ્રજ્ઞાજન્ય સંસ્કાર ચિત્તને સાધિકાર બનાવશે નહિ, કારણ કે તે, સત્ય જ હોવાથી ક્લેશના નાશના જ કારણ હોય છે. ચિત્તનું ચેષ્ટિત વિવેક–ખ્યાતિ સુધી જ હોય છે, તે મળી ગઈ એટલે ચિત્તનું કામ પૂરું થાય છે. ॥ ૫૦ ॥

ઋતંભરા પ્રજ્ઞાથી જે જે નવીન અને નવીન સંસ્કાર થાય છે તેની કોઈ સીમા છે કે નહિ? એટલે કે એ ક્રમ નિત્ય ચાલુ રહે છે? આનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં છે :

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ ५२ ॥

પદાર્થઃ– (तस्य अपि) નિર્વિચારની વિશારદતાથી જે પ્રજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે તેનો અને એ પ્રજ્ઞાથી ઉત્પન્ન થનાર સંસ્કારનો પણ (निरोधे) નિરોધ થયા પછી (सर्वनिरोधात्)

બધાયનો નિરોધ થવાથી (निर्बीजः) ક્લેશ આદિને નહીં ઉત્પન્ન કરનાર (समाधिः) સમાધિ થાય છે.

ભાવાર્થ:- ઋતંભરા પ્રજ્ઞા અને એના સંસ્કારનો નાશ થાય છે. પર વૈરાગ્યના દીર્ઘકાળ પર્યન્ત સેવન કરવાથી જે વિશુદ્ધ (તમોગુણ અને રજોગુણથી રહિત) સંસ્કાર ઉત્પન્ન થાય છે તે ઋતંભરાપ્રજ્ઞા અને તેના સંસ્કારનો પ્રતિબંધી હોય છે. એટલે કે એ સંસ્કાર ઋતંભરાપ્રજ્ઞાનો અને તેના સંસ્કારનો પણ નાશ કરે છે. સાધારણ રીતે સંસ્કાર જ્ઞાનનો અવિરોધી હોય છે, સ્મરણ આદિ જ્ઞાનનો જનક પણ હોય છે, છતાં અહીં યોગની ચરમ સીમાનો સંસ્કાર જ્ઞાનનો અને પૂર્વે થયેલા સંસ્કારોનો બંનેનો વિરોધી બને છે, એ ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ. વિવેક-ખ્યાતિરૂપ પ્રજ્ઞા થયા પછી તેના જે જે સંસ્કારો અને સંસ્કારોથી જે જે પ્રજ્ઞા થયા કરે છે તે ભોગજનક હોતા નથી પણ મોક્ષ આપનાર હોય છે, પણ આનોય અંત આવવો જોઈએ, નહીં તો મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય જ ક્યાંથી? આથી પર વૈરાગ્યથી ઉત્પન્ન થયેલો સંસ્કાર ઋતંભરાપ્રજ્ઞા અને સંસ્કારનો નાશ કરે છે સંસ્કારનો પણ નાશ થાય છે, જેમ અગ્નિ બધાં ઇંધનોને બાળી નાખી છેવટે પોતે પણ ઠરી જાય છે તેમ. આ છેલ્લો પરવૈરાગ્યજન્ય સંસ્કાર નાશ પામ્યા પછી ચિત્ત-માંથી કોઈ પણ પરિણામ થતું નથી એટલે ચિત્ત અધિકાર-શૂન્ય બની પ્રકૃતિમાં મળી જાય છે જેથી પુરુષ ચિત્તના સંબંધથી રહિત થાય છે અને પોતાના જ સ્વરૂપમાં રહે છે.

જેમ વિશુદ્ધ શુકલ હીરા પાસેથી ઉપાધિરૂપ ફૂલ આદિ સર્વ કોઈ વસ્તુ દૂર થયા પછી એ હીરો પોતાના જ સ્વરૂપમાં સ્થિત થાય છે તેમ. આનું નામ જ અસંપ્રજ્ઞાત યોગ, મોક્ષ, સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠા અથવા મુક્તિ છે.

અહીં આટલું ધ્યાન રાખવું જોઈએ કે સાંખ્યના મતમાં પ્રકૃતિમાં બે જાતનાં પરિણામો થયા કરે છે એક સરૂપ પરિણામ અને બીજું વિરૂપ પરિણામ. પરિણામ વગર પ્રકૃતિ ક્ષણવાર પણ રહી શકતી નથી. જ્યારે વિરૂપ પરિણામ થાય ત્યારે પ્રકૃતિમાં કોઇ ને કોઈ કાર્યરૂપ તત્ત્વ બને છે. સ્વરૂપ પરિણામથી કોઈ પણ કાર્ય બનતું નથી. જેમ સમુદ્રમાંથી વરાળ બને છે, એ વિરૂપ પરિણામનું કાર્ય છે અને તરંગો એ સાગરનાં સરૂપ પરિણામનાં કાર્યો છે તેમ. મુક્ત આત્માને ઉદ્દેશી પ્રકૃતિ અધિકારશૂન્ય બને છે. બદ્ધ આત્માને મુક્ત કરાવી પ્રકૃતિ પોતે પણ તે મુક્ત થયેલા પુરુષની અપેક્ષાએ મુક્ત જેવી સ્થિતિમાં આવી રહે છે. ચિત્તની સર્વ વૃત્તિઓનો નિરોધ થયા પછી પુરુષ અસંપ્રજ્ઞાત યોગમાં કાયમ સ્થિર થાય છે એટલે સ્વરૂપ સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠામાં સ્થિર થઈ જાય છે. ઉપનિષદમાં પણ જીવાત્મા પોતાના નિરુપાધિક સ્વરૂપમાં આવીને સ્થિર થાય એને મુકિત કહી છે. પરમાત્માની પ્રાપ્તિ પણ કહી છે. આ પ્રમાણે પરમ શાંતિ સાથે સાચા અને નિત્ય સુખને પ્રાપ્ત કરવા ઈચ્છનારે યોગ કરવો જ જોઈએ. તે સિવાય સાચી શાંતિનો બીજો ઉપાય નથી. नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।
—આવી શ્રુતિ પણ છે. ॥ ૫૧ ॥

इति पातञ्जलयोगदर्शने गुर्जरभाषाभाष्ये समाधिनामा प्रथमः पादः ॥

આ પાદમાં યોગનું લક્ષણ, વૃત્તિઓનું લક્ષણ, વૃત્તિઓના નિરોધના ઉપાયો, સંપ્રજ્ઞાત યોગ અને અસંપ્રજ્ઞાત યોગ પણ બતાવવામાં આવ્યા છે.



अथ द्वितीयः साधनपादः

સમાધિ-પાદમાં અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય આદિ યોગના ઉપાયો બતાવ્યા છે, પણ એ ઉપાયો યોગી થવા ઇચ્છનાર બધાને એકદમ સાધ્ય અને સરળ નથી. પૂર્વજન્મમાં જેણે યોગનો કંઈક અભ્યાસ કર્યો હોય એવા માણસને જ વૈરાગ્ય અને અભ્યાસ ઉપર રુચિ થાય છે, બાકી બીજાઓ કે જેના ચિત્તમાં પુષ્કળ વિક્ષેપો ભર્યા હોય છે તેમને એ ઉપાયોની રુચિ થતી નથી. એમના મનમાં તો સંશય કાયમ બન્યો રહે છે અને એ તર્ક-વિતર્કમાંથી મુક્ત થતો નથી. બહુ અધ્યાત્મવિદ્યા ભણી જવાથી પણ ચિત્તમાં યોગનાં અંકુરો ફૂટતા નથી, પ્રવચનો કરવાથી પણ વૈરાગ્યવાન્ થઇ શકાતું નથી, તેમ ચિત્તની ચંચળતા ઉપર કાબુ પણ મેળવી શકાતો નથી. આ કારણથી અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય તરફ કંઈક રુચિ થાય તેને માટે કોઈ બીજા ઉપાયોને પણ ઉપયોગમાં લેવા જોઈએ. માટે આ સાધનપાદમાં બીજા ઉપાયો બતાવ્યા છે, તેમાંથી પહેલા ઉપાયને આ પ્રથમ સૂત્રમાં ભગવાન્ પતંજલિ મુનિ બતાવે છે :

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥

પદાર્થ:- (तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि) તપ, સ્વાધ્યાય અને ઈશ્વરપ્રણિધાન (क्रियायोगः) ક્રિયા યોગ છે.

ભાવાર્થ:– જે તપસ્વી ન હોય તે યોગને મેળવી શકતો નથી. ચિત્તમાં અનાદિકાળથી કર્મ, ક્લેશ અને વાસનાનો પ્રવાહ વહેતો રહ્યો છે અને વિષયોના ઉપભોગની આસક્તિ ખૂબ બનેલી છે. આ ચિત્તની અશુદ્ધિ છે. આ અશુદ્ધિ તપ કર્યા વગર દૂર થતી નથી, માટે તપ કરવું જોઇએ. શરીરને કષ્ટમાં નાખી તેને શુષ્ક બનાવી દેવું તેનું નામ તપ નથી; પણ બ્રહ્મચર્યનું પાલન કરવું, ગુરુઓની સેવા કરવી, સાચું બોલવું, મિતભાષી બનવું, વર્ણ અને આશ્રમમાં બતાવેલાં કર્મ કરવાં, સુખ અને દુ:ખનાં દ્વન્દ્વોને સહન કરવાં, હિત અને મિત ભોજન કરવું; આનું નામ તપ છે. માત્ર શરીરના શોષણથી તો શરીરના ધાતુઓ બગડે છે. માટે મિથ્યા તપને દૂર કરી ઉપર બતાવેલા સાચા તપનું નિત્ય અનુષ્ઠાન કરવું.

સ્વાધ્યાય એટલે પ્રથમ ઓંકારનું ઉચ્ચારણ કરી ગાયત્રી આદિ મંત્રનો જપ કરવો. ત્રીજું સાધન ઈશ્વર-પ્રણિધાન છે. કોઈ પણ વિષયભોગ ઉપર આસક્તિ રાખ્યા વગર અને કર્મના ફલની પણ આશા રાખ્યા વગર કર્મ કરતા રહેવું. પરમગુરુ પરમાત્મા ઉપર દૃઢ શ્રદ્ધા રાખવી અને પોતાનું જે કંઇ છે તથા જગતમાં જે કંઈ છે તે બધું પરમાત્માનું છે એમ સમજી કોઈના પણ ધનની ઇચ્છા રાખવી નહિ અને ઇશ્વરપ્રીત્યર્થ કર્મ કરતા રહેવું તેનું નામ ઇશ્વર-પ્રણિધાન છે. આને જ ભક્તિ કહેવામાં આવે છે.

(૧) તપ, (૨) સ્વાધ્યાય, (૩) ઇશ્વર-પ્રણિધાન આ ત્રણને ક્રિયાયોગ કહે છે. જો આ ત્રણ સાધનોનો બરાબર અમલ થાય તો આગળ યોગના માર્ગનો પ્રકાશ જરૂર મળે છે, માટે શરૂઆતનાં આ ત્રણ સાધનોના અનુષ્ઠાનમાં પ્રમાદ કરવો નહિ. આ જ પાદના ૩૨મા સૂત્રમાં બતાવેલા નિયમરૂપ યોગના અંગમાંથી જુદા પાડી આ ત્રણ સાધનો અહીં પ્રથમ સૂત્રમાં બતાવ્યા છે. પ્રભુને પ્રસન્ન કરવાનો તથા યોગરૂપ આત્મસાક્ષાત્કાર કરવાનો આ પ્રાથમિક ક્રિયાયોગ છે, માટે ખૂબ શ્રદ્ધા રાખી તેનું સેવન કરવું જોઇએ. ॥ ૧ ॥

ઉપર બતાવેલા ક્રિયાયોગનું જે પ્રયોજન છે, તે આ સૂત્રમાં સમજાવે છે :

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

પદાર્થ:– (समाधिभावनार्थः) ક્રિયાયોગ સમાધિની ભાવના માટે છે (च) અને (क्लेशतनूकरणार्थः) અવિદ્યા આદિ ક્લેશોને ઓછા કરવા માટે છે.

ભાવાર્થ:– તપ, સ્વાધ્યાય અને ઇશ્વરનું પ્રણિધાનરૂપ ક્રિયાયોગ સમાધિની ભાવના માટે છે. સમાધિ એટલે સમાધિપાદમાં બતાવ્યા પ્રમાણે ચિત્તની એકાગ્રતા. ચિત્તની એકાગ્રતા માટે જે આલંબન ધ્યાનમાં લીધું હોય તેમાં જ વારંવાર ચિત્તની વૃત્તિ થાય, બીજા કોઇ પણ વિષયને ચિત્તમાં આવવા ન દેવો તેનું નામ છે સમાધિની ભાવના. લાંબા સમય સુધી ભાવના કર્યા કરવાથી સમાધિની સફળતા મળે

છે, એટલે કે પછી આપોઆપ ધ્યેયવિષયક ચિત્તની વૃત્તિ થયા કરશે તેને માટે ખાસ પ્રયત્ન નહીં કરવો પડે. બીજું પ્રયોજન ક્લેશોને અલ્પ કરવા એટલે કે ક્લેશોમાં દુઃખ આપવાની જે શક્તિ છે તેને ઓછી કરી નાખવી. જેમ જેમ સમાધિ કરવામાં કાબુ આવતો જશે તેમ તેમ ક્લેશોની શક્તિ ઓછી થતી જશે. આમ થવાથી સમાધિ વધારે ને વધારે ઉચ્ચ કક્ષાએ પહોંચી જશે અને યોગમાં જેને પ્રસં-ખ્યાન સમાધિ કહે છે તે સિદ્ધ થશે. પ્રસંખ્યાન સમાધિથી ક્લેશો બળી ગયેલા બીજ જેવા થઇ રહેશે. જેમ બળેલું બીજ અંકુરને જન્માવી શકતું નથી તેમ બળેલા ક્લેશો પુનર્જન્મ, જાતિ, આયુષ્ય અને ભોગને ઉત્પન્ન કરી શકતા નથી; પછી આનંદમય પરમાત્મા તરફથી જ જ્ઞાન અને આનંદની પ્રાપ્તિ થાય છે. સમાધિના અતિ અભ્યાસથી વિવેકખ્યાતિરૂપ સૂક્ષ્મ પ્રજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે અને તે ક્લેશોના સંબંધથી રહિત હોય છે. છેવટે એ સૂક્ષ્મવિવેક-ખ્યાતિ પણ પ્રકૃતિમાં વિલીન થઇ જશે એટલે આત્મા પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિર થઇ રહેશે. એ જ કૈવલ્ય છે. એ જ મુક્તિ છે.

આટલા માટે શરૂઆતમાં તપ કરવું જોઇએ. તપની સમજણ પણ પહેલા સૂત્રના ભાષ્યમાં આપી છે. ઓંકારનો જપ પણ સ્થિર ચિત્તથી કરવો અને ફળની આશા રાખ્યા વગર ઇશ્વરપ્રીત્યર્થ વિહિત કર્મ કરતા રહેવું. ॥ ૨ ॥

હવે ક્લેશો કયા અને કેટલા છે તે આ સૂત્રમાં સમજાવે છે:

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ ३ ॥

પદાર્થ:- (अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः) (૧) અવિદ્યા, (૨) અસ્મિતા, (૩) રાગ, (૪) દ્વેષ અને (૫) અભિનિવેશ. (क्लेशाः) આ પાંચ કલશો કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:- કલેશોનું બીજું નામ 'વિપર્યય' છે. વિપર્યય એટલે મિથ્યાજ્ઞાન. અવિદ્યાને તો મિથ્યાજ્ઞાન તરીકે સાધારણ રીતે સર્વ માણસો સમજે છે. અસ્મિતા, રાગ, દ્વેષ અને અભિનિવેશ—એ ચાર પણ અવિદ્યામાંથી જ જન્મે છે. અવિદ્યા સાથે એનો નિત્ય-સંબંધ છે. જ્યાં અવિદ્યા નથી ત્યાં એ ચારમાંથી કોઈ પણ નથી. અવિદ્યાના નાશ સાથે જ એ ચારેયનો નાશ થઈ જાય છે. ચિત્તમાં જ્યારે કલેશો ગતિવાળા હોય છે ત્યારે તે ગુણોના અધિકારને મજબૂત કરે છે એટલે કે ગુણોનાં પરિણામ વેગથી વહેતાં હોય છે. કલેશોમાંથી કર્મ અને કર્મોથી કલેશો થયા જ કરે છે. જેમ બીમાંથી વૃક્ષ અને વૃક્ષમાંથી બી જન્મે છે તેમ અનાદિકાળથી આ પ્રમાણે થતું આવે છે; એટલે પહેલું બી કે પહેલું વૃક્ષ એ પ્રશ્ન જ ઊભો થતો નથી. ઉક્ત પ્રશ્ન તો જ્યાં પહેલી જ શરૂઆત હોય ત્યાં થાય છે. કર્મમાંથી વિપાક થાય છે. જાતિ, આયુષ અને ભોગ એ કર્મનો વિપાક છે અર્થાત્ ફળ છે. આ કલેશોને દિન-પ્રતિદિન નિર્બળ કર્યા વગર આત્માનો પ્રકાશ જણાતો નથી, માટે આ કલેશોને ક્ષીણ કરવા યોગીએ પ્રયત્ન કરવો જોઇએ. અને એની ક્ષીણતા માટે જ તપ, સ્વાધ્યાય અને ઈશ્વર-પ્રણિધાનને આચરવાનાં હોય છે. ॥ ૩ ॥

પાંચ ક્લેશો છે અને એ બધા તજવા યોગ્ય છે, કારણ કે એનું મૂળ અવિદ્યા છે. અવિદ્યા એટલે મિથ્યાજ્ઞાન અથવા ભ્રમ. અતત્વને તત્વ તરીકે સમજી લેવું તે. આ બાબતની વિશેષ સમજણ આપવા માટે આ સૂત્રનો ઉલ્લેખ છે:

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

પદાર્થ:- (उत्तरेषाम्) ત્રીજા સૂત્રમાં જે ક્લેશોનો ક્રમ બતાવ્યો છે તેમાં અવિદ્યા પછીના ક્લેશો (प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्) કે જે પ્રસુપ્ત, તનુ, વિચ્છિન્ન અને ઉદાર આવી ચાર અવસ્થાવાળા છે તેમનું (क्षेत्रम्) ખેતર અથવા નિમિત્તકારણ (अविद्या) અવિદ્યા છે.

ભાવાર્થ:- ક્લેશો પ્રસુપ્ત, તનુ, વિચ્છિન્ન અને ઉદાર હોય છે. જે ક્લેશને પ્રસુપ્તિ હોય તે પ્રસુપ્ત ક્લેશ કહેવાય છે.

(૧) પ્રસુપ્તિ=જે ક્લેશ ચિત્તમાં બી રૂપે જ હોય, પોતાનું કોઈ પણ કામ ન કરવું તે ક્લેશની પ્રસુપ્તિ કહેવાય છે. જેમ દૂધમાં દહીં છે પણ તે કાર્યરૂપમાં હોતું નથી તેમ; અથવા બાળકમાં કામ બી રૂપે હોય છે તેમ. જ્યારે નિમિત્ત અને આલંબનનો સાથ મળે ત્યારે એ ક્લેશ પોતાનું કાર્ય કરે છે. પ્રસુપ્તિવાળો ક્લેશ પ્રસુપ્ત ક્લેશ કહેવાય છે. વિદેહ યોગીઓ અને પ્રકૃતિલીન યોગીઓના ક્લેશો પ્રસુપ્ત હોય છે. વિદેહ યોગીઓ અને પ્રકૃતિલીન યોગીઓ કોને કહેવા તે સમાધિપાદમાં સમજાવ્યું છે ત્યાંથી સમજી યાદ કરવું.

જે સમાધિદ્વારા વિવેકખ્યાતિ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઇ ગયું છે અને ક્લેશોનું બી જેમણે બાળી નાખ્યું છે તેવા યોગીઓને આલંબન સમીપ આવે તોપણ ક્લેશ પોતાનું કાર્ય કરવાને શક્તિશાળી બનતો નથી, કારણ કે જેનું મૂળ જ બળી ગયું હોય, જેને શક્તિ જ ન રહી હોય તે પોતાનું કાર્ય કેવી રીતે કરી શકે ? શું બળેલું બી જમીનમાં વાવ્યું હોય તો તે ઊગે ખરું ? નહીં જ. ક્લેશો ફરીથી ઊગવા જ ન પામે એ દશાએ જ્યારે ક્લેશ પહોંચે છે ત્યારે ક્લેશને પાંચમી અવસ્થા પ્રાપ્ત થઇ છે એમ સમજવું.

(૨) હવે ક્લેશની તનુ અવસ્થા સમજીએ. કોઈ પણ કારણથી ક્લેશ દુબળો થઇ જાય ત્યારે ક્લેશ તનુ થઇ ગયો છે. ક્લેશના પ્રતિપક્ષની (વિરોધી પક્ષની) ભાવના કરવાથી ક્લેશની અવસ્થા દુબળી થઇ જાય છે. આ જ પાદના પ્રથમ સૂત્રમાં જે ક્રિયાયોગ બતાવ્યો છે તે ક્લેશનો પ્રતિપક્ષ છે, વિરોધી છે, એટલે તેનું અનુષ્ઠાન કરવાથી ક્લેશની નબળી અવસ્થા થઇ જાય છે. અને એ ક્લેશને 'તનુ ક્લેશ' અથવા નબળો ક્લેશ કહેવામાં આવે છે. આ પ્રમાણે ક્લેશની નબળી થયેલી બીજી અવસ્થા કહેવામાં આવે છે. નબળી અવસ્થા એ જ ક્લેશનું તનુત્વ.

(૩) વિચ્છિન્નતા=ક્લેશનું વચ્ચે વચ્ચે તૂટી પડવું, એ ક્લેશની વિચ્છિન્નતા કહેવાય છે. ક્લેશનો વિચ્છેદ થયો એટલે ક્લેશ પોતાનું કામ કરતો બંધ પડચો. દાખલા તરીકે, વિષયનું અતિ સેવન કરવાથી નબળાઈ આવે છે

અથવા કોઇ રોગ થઈ આવે છે, ત્યારે વિષય સેવનનો રાગ કામ કરતો બંધ પડે છે, આ થયો રાગરૂપ ક્લેશનો વિચ્છેદ. પણ ઔષધ આદિના સેવનથી નબળાઈ જ્યારે દૂર થાય છે એટલે ફરી પાછો એ ક્લેશ પોતાનું કાર્ય કરવું શરૂ કરી દે છે. આમ વચ્ચે વચ્ચે ક્લેશનું તૂટી પડવું તે ક્લેશની વિચ્છિન્ન અવસ્થા કહેવાય છે. બીજું દૃષ્ટાંત જોઇએ. જ્યારે માણસ રાગમાં પૂરેપૂરો સપડાયો હોય છે ત્યારે તેનામાં દ્વેષ કામ કરતો નથી, આ દ્વેષરૂપ ક્લેશની વિચ્છિન્ન અવસ્થા છે. રાગ બંધ પડતાં જ દ્વેષ પાછો કામ કરવા લાગે છે. આ વિચ્છિન્નતા ક્લેશોની ત્રીજી અવસ્થા છે.

(૪) ઉદારતા=ક્લેશ જ્યારે પોતાનું કામ કરતો હોય છે ત્યારે તે 'ઉદાર' ક્લેશ કહેવાય છે. ખૂની જ્યારે ખૂન કરતો હોય છે ત્યારે તેનો દ્વેષરૂપ ક્લેશ ઉદાર બનેલો હોય છે અને તેની (ક્લેશની) તે વખતની અવસ્થા ઉદારાવસ્થા કહેવાય છે.

પ્રશ્નઃ- ચાર અવસ્થાવાળા ક્લેશમાં જે ઉદારાવસ્થાવાળો ક્લેશ છે તે જ દુઃખનું કારણ છે અને તે જ જાતિ, આયુષ્ય અને ભોગને આપે છે, માટે ઉદારાવસ્થાવાળાને જ 'ક્લેશ' આવું નામ આપવું જોઇએ. પ્રસુપ્ત, તનુ અને વિચ્છિન્ન અવસ્થાવાળાને 'ક્લેશ' એવું નામ ન આપવું જોઈએ, કારણ કે એ દુઃખને ઉત્પન્ન કરતા નથી, એટલે કે જાતિ, આયુષ્ય અને ભોગને ઉત્પન્ન કરતા નથી, તો

પછી પ્રસુપ્ત આદિ અવસ્થાવાળાને 'ક્લેશ' એવું નામ શા માટે આપ્યું ?

ઉત્તરઃ– તમારો પ્રશ્ન ઠીક છે પણ પ્રસુપ્ત ક્લેશ સમય મળ્યે ઉદાર થયા વગર રહેવાનો નથી, તેમ તનુ અને વિચ્છિન્ન ક્લેશનું પણ સમજવું, માટે પ્રસુપ્ત, તનુ અને વિચ્છિન્નને પણ ક્લેશ નામ આપવું જોઇએ. શત્રુ લડતો ન હોય પણ મનમાં લડવાની વૃત્તિ તે રાખતો જ હોય છે, તો તે જ્યારે ન લડે ત્યારે પણ શત્રુ જ કહેવાય છે. તેમ ઉપર બતાવેલી ચારે ય અવસ્થાવાળા ક્લેશો જ કહેવાય છે.

આ ચારે ય અવસ્થાવાળા ક્લેશોમાં અવિદ્યાનો સાથ તો હોય જ છે, જો અવિદ્યા નાશ પામે તો એ ક્લેશો પણ ચોક્કસ નાશ પામી જાય છે. માટે અવિદ્યા ક્લેશોનું ક્ષેત્ર છે (–ખેતર છે.) ॥ ૪ ॥

પાંચ ક્લેશો કહેવામાં આવ્યા છે, તેમાં પહેલો અને પ્રબળ ક્લેશ 'અવિદ્યા' છે. અવિદ્યા કોને કહે છે તે સમજવું જોઇએ; માટે 'અવિદ્યાનું' સ્વરૂપ આ સૂત્રમાં સમજાવવામાં આવે છે:

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

પદાર્થઃ– (अनित्याशुचिदुःखानात्मसु) અનિત્યમાં, અશુચિમાં, દુઃખમાં અને અનાત્મામાં (नित्यशुचिसुखात्मख्यातिः) નિત્યત્વ, શુચિત્વ, સુખત્વ અને આત્મત્વનું જ્ઞાન થવું (अविद्या) તે અવિદ્યા કહેવાય છે.

ભાવાર્થઃ– અનિત્યને નિત્ય, અપવિત્રને પવિત્ર, દુઃખને સુખ અને અનાત્મા અર્થાત્ જડને આત્મા–ચેતન સમજવું

તેનું નામ અવિદ્યા છે. આ રીતે જોતાં અવિદ્યાના ચાર પ્રકાર છે અથવા અવિદ્યાના ચાર ચરણ છે. જોકે અવિદ્યા ઘણા પ્રકારની છે, છતાં જન્મના કારણ તરીકે તો સૂત્રમાં બતાવેલી ચાર પ્રકારની અવિદ્યા છે. દોરીમાં થોડા પ્રકાશમાં સાપનો ભ્રમ થાય તો તે પણ અવિદ્યા કહેવાય છે, પણ એ અવિદ્યા જન્મનું કારણ નથી, માટે સૂત્રમાં બતાવેલી અવિદ્યાને બરાબર સમજીએ અને તેનાથી બચવાનો નિત્ય પ્રયત્ન કરીએ.

પહેલું ચરણ (પહેલો પ્રકાર):—

અનિત્ય વસ્તુ નિત્ય કેવી રીતે સમજી લેવાય છે તેનો દાખલો આ પ્રમાણે છેઃ– અનિત્ય એટલે કાર્ય, જે વસ્તુ બનેલી હોય છે તે કાર્ય કહેવાય છે, કાર્યને નિત્ય માની લેવું એ અવિદ્યા છે, ભૂલ છે. આ પૃથ્વી, ચંદ્ર, સૂર્ય, નક્ષત્ર અને વાયુ, વરુણ વગેરેને નિત્ય માનવા અવિદ્યા છે કારણ કે એ બધા બનેલા છે, એનો બનાવનાર પરમાત્મા છે. સૂર્ય, ચંદ્ર આદિ ગ્રહો નિત્ય છે, આપણે તેની ઉપાસના કરીએ અને તેના સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરીએ તો આપણાં બધાં દુઃખ નાશ પામી જાય. આ સમજવું એ ભૂલ છે. જે અનિત્ય છે તે જડ છે, જડની ઉપાસનાથી દુઃખ નાશ પામતાં નથી, માટે પૃથ્વી, સૂર્યાદિ જેવા સ્વરૂપમાં છે તેવા જ સમજવા જોઇએ અને તેનો તેવી રીતે ઉપયોગ કરવામાં જ સુખ છે. પૃથ્વી અન્નાદિને ઉત્પન્ન કરે છે તો તેમાંથી અન્નાદિ કેવી રીતે મેળવવા, એનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવું જોઇએ.

બીજું ચરણ (બીજો પ્રકાર) :—

અશુચિ એટલે અપવિત્ર; અપવિત્રને પવિત્ર સમજવું એ અવિદ્યા છે. દાખલા તરીકે : આ પાંચભૂતમાંથી બનેલું શરીર. ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિ પ્રાચીન શ્લોકનું ઉદ્ધરણ આપી શરીરની અપવિત્રતા આ પ્રમાણે બતાવે છે :

स्थानाद् बीजादुपष्टम्भान्निःस्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिता ह्यशुचिं विदुः ॥

(स्थान) શરીરનું ઉત્પત્તિસ્થાન માનું ઉદર છે અને તેમાં મૂત્ર આદિનો સંબંધ છે.

(બીજ) શરીરનું ઉપાદાન કારણ રજ અને વીર્ય છે.

(ઉપષ્ટંભ) ખાવામાં અને પીવામાં આવેલા પદાર્થોનું રસ આદિ રૂપે પરિણમવું અને તેનાથી શરીરનું ધારણ થવું તે.

(નિઃષ્યંદ) શરીરમાંથી પરસેવો થયા કરે છે અને તે કોઈ વખત દુર્ગંધવાળો પણ હોય છે.

(નિધન) મરણ. મરણ થયા પછી અથવા તેમાંથી જીવ નીકળી ગયા પછી શરીરને કોઈ અડકતું નથી, એ શરીરને ઝાઝીવાર ઘરમાં રહેવા પણ દેતા નથી, એને કાં તો બાળી નાખે છે અથવા જમીનમાં દાટી દે છે.

આ પાંચ કારણમાંથી કોઈ એવું કારણ નથી જણાતું કે જે પવિત્ર હોય; અને ઉપાદાનકારણની અપવિત્રતાથી ઉપાદેય કાર્ય પણ અપવિત્ર બને છે. આ શરીરને

અત્તર આદિ લગાવી સુગંધિત બનાવવામાં આવે છે, બીજા પદાર્થોથી પણ સુંદર દેખાઇ આવે તેવું કરવામાં આવે છે, પણ એ તો આધેયશૌચ = કૃત્રિમ પવિત્રતા છે અને તે ક્ષણિક છે. ખરી રીતે શરીર પવિત્ર નથી પણ આત્માના સંબંધથી અને આરોગ્યથી પવિત્ર દેખાય છે બાકી કેવળ શરીર તો ઉપરના કારણોથી અપવિત્ર છે, છતાં કવિ લોકો શરીરને માટે અતિશયોક્તિ કરે છે કે, આ કન્યાનું કેવું સુંદર શરીર છે જાણે કે ચંદ્રમાનો ટુકડો હોય, મધ અને અમૃતથી જાણે એના બધા અવયવો બન્યા હોય, ચંદ્રમામાંથી જ જાણે આ કન્યા નીકળી આવી હોય, કાળા કમળ જેવી કેવી સુંદર એની આંખ છે, શરીરની ચેષ્ટાથી અને આંખની ચંચલતાથી જાણે કે સંસારને આનંદમય બનાવતી હોય. આવું વર્ણન કરી તેમાં પવિત્રતા છે એવું બતાવવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવે છે, પણ તાત્વિક દૃષ્ટિએ તો શરીર-માત્ર અપવિત્ર જ છે.

ત્રીજું ચરણ (ત્રીજો પ્રકાર):– દુઃખમાં સુખત્વનું ભાન થવું તે અથવા દુઃખને સુખ સમજી લેવું તે. આ જ પાદમાં સૂત્રકાર પોતે જ જણાવે છે કે– परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः । (૨–૧૫) આત્માના સ્વરૂપમાં મગ્ન રહેનાર વિવેકી યોગીને સંસારમાં બધું દુઃખ જ જણાય છે. પરિણામ, તાપ, સંસ્કાર અને દુઃખ તરફ નજર કરો; સત્ત્વ, રજ અને તમોગુણની વૃત્તિના વિરોધનો વિચાર કરો તો તમને પણ બધું દુઃખ જ

જણાશે. આવા દુઃખમાં પણ અવિવેકી માણસોને સુખ જણાય છે અને તેને લીધે સંસાર ચાલ્યા કરે છે.

ચોથું ચરણ (ચોથો પ્રકાર):– જે આત્મા નથી તેમાં આત્મત્વનું જ્ઞાન થવું તે. દાખલા તરીકે : શરીર એ ભોગનું સાધન છે, એટલે કે શરીરમાં રહી આત્મા સુખ અને દુઃખને ભોગવે છે, માટે શરીર ભોગનું અધિષ્ઠાન ગણાય છે. શરીર પાંચ ભૂતોનું બનેલું છે એટલે તે જડ છે, અનાત્મા છે. તેવી જ રીતે મન અને ઇંદ્રિયો પણ અનાત્મા છે. હવે જો કોઈ શરીર, મન, ઇંદ્રિયો અથવા જ્ઞાનને આત્મા તરીકે માને તો તે અવિદ્યા કહેવાય છે. સાંખ્યના આચાર્ય શ્રી પંચશિખાચાર્યે આ સંબંધમાં આ પ્રમાણે કહ્યું છે : 'व्यक्तमव्यक्तं वा सत्त्वमात्मत्वेनाभिप्रतीत्य तस्य सम्पदमनु नन्दत्यात्मसम्पदं मन्वानस्तस्य व्यापदमनुशोचत्यात्मव्यापदं मन्वानः स सर्वोऽप्रतिबुद्धः ।'

અર્થ:– વ્યક્ત અથવા અવ્યક્ત સત્વને આત્મા તરીકે માનીને પછી એની જ્યારે એને પ્રાપ્તિ થાય છે ત્યારે તે પ્રાપ્ત થયેલા સત્વગુણને આત્મા માનતો યોગી આનંદ પામે છે, તેમ જ એ સત્વ જ્યારે અદશ્ય થાય છે ત્યારે તે યોગી શોક કરે છે, કારણ કે, એ અદશ્યતા (વિનાશ)ને જ આત્મવિનાશ માને છે. ખરી રીતે આવી માન્યતા ધરાવનાર યોગીને પ્રતિબોધ થયો જ નથી એમ જ સમજવું.

આ પ્રમાણે ચાર ચરણવાળી અથવા ચાર વિભાગવાળી અવિદ્યા છે, એ જ ક્લેશની પરંપરાનું અને કર્માશયનું મૂળ છે.

અવિદ્યા એટલે કેવળ વિદ્યાનો અભાવ સમજવો નહીં, કારણ કે, કેવળ અભાવ ક્લેશનું કારણ હોઇ શકે નહીં, માટે વિદ્યાથી ભિન્ન કોઇ વિરોધી ભાવ–વસ્તુને જ અવિદ્યા માનવી રહી. જેમકે, 'અમિત્ર' આ શબ્દનો અર્થ મિત્રનો કેવળ અભાવ નથી પણ મિત્રથી ભિન્ન મિત્રવિરોધી કોઇ ભાવરૂપ વ્યક્તિ વિશેષ છે તેમ. આ પ્રમાણે અવિદ્યા-રૂપ પહેલા ક્લેશની વ્યાખ્યા છે. ॥ ૫ ॥

હવે અવિદ્યા પછી બીજો ક્લેશ અસ્મિતા છે. તેનું લક્ષણ આ સૂત્રમાં બાંધે છે :

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

પદાર્થ:– (दृग्दर्शनशक्त्योः) દૃક્‌શક્તિ અને દર્શનશક્તિની (एकात्मता) એકાત્મતા (इव) જાણે (अस्मिता) અસ્મિતા છે.

ભાવાર્થ:– દૃક્ એટલે દર્શન કરનાર દ્રષ્ટા = આત્મા. દર્શન એટલે બુદ્ધિ તત્વ પ્રકૃતિનું પ્રાથમિક સાત્વિક પરિણામ. દૃક્‌શક્તિ એટલે દ્રષ્ટૃશક્તિ અને દર્શનશક્તિ એટલે બુદ્ધિ-શક્તિ અથવા અંતઃકરણ શક્તિ. આ બે શક્તિઓ સ્વભાવે જુદી જુદી છે. દૃક્‌શક્તિ = એ જ પુરુષ. પુરુષ = આત્મા. આત્મા અપરિણામી છે જ્યારે બુદ્ધિ પરિણામિની છે. આ સનાતન ભેદ દૃક્‌શક્તિમાં અને દર્શન શક્તિમાં રહેલો છે. છતાં અવિદ્યાને લીધે એ બંનેને એક સમજી લેવાં એ જ અસ્મિતા-રૂપ ક્લેશ છે. ક્લેશ દુઃખનું જ કારણ છે. બુદ્ધિને જ્યારે આત્મા સમજવામાં આવે છે ત્યારે આત્મામાં જે ઉદાસીનતા છે તે ઢંકાઈ જાય છે. હું ભોક્તા છું એવું

આત્મા માને છે. આત્માનું કોઈ પરિણામ નથી છતાં જ્યારે બુદ્ધિ સાથે તાદાત્મ્ય જેવું સમજાય છે ત્યારે આત્મા પોતાને સુખી–દુઃખી વગેરે માનવા લાગે છે. બુદ્ધિ ખરી રીતે કર્ત્રી નથી છતાં જ્યારે આત્મા સાથે પોતાને એકરૂપ માને છે ત્યારે તેમાં કર્તૃત્વધર્મ પણ દેખાઇ આવે છે. અને સંસાર શરૂ થાય છે. આ બધું અસ્મિતાને લીધે થાય છે.

સાંખ્યશાસ્ત્રના મહાન આચાર્ય પંચશિખ આચાર્ય અસ્મિતાના લક્ષણને આ પ્રમાણે સમજાવે છેઃ

'बुद्धितः परं पुरुषमाकारशीलविद्यादिभिर्विभक्तमपश्यन् कुर्यात् तत्रात्मबुद्धिं मोहेन ' इति ।

અર્થઃ– પુરુષ બુદ્ધિથી જુદો છે. પુરુષનો આકાર સદા વિશુદ્ધિ, પુરુષનું શીલ ઔદાસીન્ય, અને પુરુષની વિદ્યા છે ચૈતન્ય. જ્યારે બુદ્ધિનું સ્વરૂપ અવિશુદ્ધિ, બુદ્ધિનું શીલ અનૌદાસીન્ય અને બુદ્ધિ અચેતન છે = જડ છે. છતાં મોહને લીધે મનુષ્ય ભેદને જોઈ શકતો નથી તેથી બુદ્ધિમાં અને તેના પરિણામસ્વરૂપ અહંકારમાં આત્મત્વનો અભેદ માને છે. આ ખોટી માન્યતાને જ 'અસ્મિતા' કહેવામાં આવે છે. મોહ એટલે અવિદ્યાએ ઉત્પન્ન કરેલો સંસ્કાર અથવા તમોગુણ. અવિદ્યા જાતે જ તમોગુણ હોવાથી તેમાંથી જન્મેલા સંસ્કારો પણ અવિદ્યારૂપ જ હોય છે. ઉપનિષદોમાં આ 'અસ્મિતા'ને હૃદયની ગ્રંથિ કહેવામાં આવી છે. અસ્મિતા દૂર થતાં જ મુક્તિનાં દ્વાર ઊઘડી જાય છે. ॥ ૬ ॥

હવે ક્રમથી આવતા ત્રીજા ક્લેશનું લક્ષણ બાંધે છે.

ત્રીજો કલેશ 'રાગ' છે. અસ્મિતાને લીધે રાગ ઉત્પન્ન થાય છે. સૂત્ર આ પ્રમાણે છે :

सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

પદાર્થ:- (सुखानुशयी) સુખના ઉપભોગ કરવાથી (रागः) રાગ નામનો કલેશ ઉત્પન્ન થાય છે.

ભાવાર્થ:- અનાદિકાળથી સર્વ કોઈ માનવને સુખનો અનુભવ હોય છે. જેણે કોઈ પણ દિવસ કોઈ પણ જાતનું સુખ ન ભોગવ્યું હોય એવો કોઇ માણસ નથી. સુખના અનુભવ કરવાથી તેના સંસ્કારો પડે છે અને એ સંસ્કારોથી સુખની સ્મૃતિ થાય છે એટલે કે ભોગવેલાં સુખો યાદ આવ્યા કરે છે. એ યાદીથી ફરીથી એવાં અથવા એનાથી ચડિયાતાં સુખો ભોગવવાની ઇચ્છા થયા કરે છે અને તેથી સુખને મેળવવાનાં જે જે સાધનો હોય તેને મેળવવા પ્રયત્ન કરે છે. આથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે સુખ અને સુખના સાધનોને મેળવવાની જે પ્રબળ ઇચ્છા છે તે જ 'રાગ' કહેવાય છે. 'સુખનો અનુશય' = સુખની તૃષ્ણા અથવા સુખ ભોગવવાનો લોભ, આવાં નામોથી પણ રાગ નામનો કલેશ સમજી શકાય છે. ॥ ૭ ॥

હવે 'દ્વેષ' નામક ચોથા કલેશનું લક્ષણ બાંધે છે:

दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

પદાર્થ:- (दुःखानुशयी) દુઃખના અનુભવની પાછળ ઉત્પન્ન થનાર ક્રોધ, દુઃખ આપનારને મારી નાખવાની ઇચ્છા (द्वेषः) દ્વેષ નામક 'કલેશ' કહેવાય છે.

ભાવાર્થઃ– જેણે દુઃખ અનુભવ્યું છે અને પછી એ દુઃખના અનુભવથી પડેલા સંસ્કારથી સ્મરણ થયા કરે છે, એ સ્મરણથી દુઃખ અને દુઃખ આપનાર જે કોઇ હોય તેના તરફ તિરસ્કાર, ક્રોધ વગેરે જે લાગણી થાય છે તે 'દ્વેષ' નામક ક્લેશ કહેવાય છે. ॥ ૮ ॥

હવે 'અભિનિવેશ' નામક પાંચમાં ક્લેશનું લક્ષણ બાંધે છે:

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥ ९ ॥

પદાર્થઃ– (स्वरसवाही) સર્વ પ્રાણીઓને પોતાનામાં એકસરખો જ અભિલાષરૂપ રસ વહન કરી રહ્યો છે, (विदुषः अपि) વિદ્વાન માણસોને પણ (तथारूढः) તેવો જ રસ ચાલુ છે, તે રસનું નામ (अभिनिवेशः) અભિનિવેશ રૂપ પાંચમો ક્લેશ છે.

ભાવાર્થઃ– બધાય પ્રાણીઓની આ એક સદૈવ પ્રાર્થના હોય છે કે, 'मा न भूवम्, भूयासम् इति'।

અર્થઃ– હું અભાવી ન થાઉં એટલે કે હું મરું નહિ અને જીવ્યા કરું. આથી સમજાય છે કે સર્વ માણસોને મરણનો ભય છે. જો પ્રાણી અથવા માણસ કદી પણ મર્યો જ ન હોય તો એ સ્પષ્ટ થાય કે, તેણે મરણના ભયનો અનુભવ કર્યો નથી. જો મરણનો ભય ન અનુભવ્યો હોય તો ઉપર બતાવવામાં આવેલી પ્રાર્થના એ કરી શકે નહિ. જ્યારે ઉક્ત પ્રાર્થના સર્વ કોઇ પ્રાણીઓને છે તો સ્પષ્ટ થાય છે કે, પૂર્વજન્મમાં માણસે મરણનો ભય અનુભવ્યો છે, જેથી

આ જન્મમાં પ્રાર્થના કરે છે કે હું મરણથી સદા બચતો રહું અને જીવ્યા કરું, આવી પ્રાર્થના સાધારણ માણસો જ કરે છે એમ નહીં પણ વિદ્વાન માણસો પણ એવી પ્રાર્થના કરતા જ હોય છે. આ કારણથી સમજાય છે કે પ્રાણી-માત્રમાં વહેતો કાયમનો મરણત્રાસ અને જીવવાની સદાતન ઇચ્છા એ નિત્ય આગ્રહરૂપ 'અભિનિવેશ' છે. મરવું નહીં અને સદૈવ જીવતા જ રહેવાનો અભિલાષ રાખવો, એ જ અભિનિવેશ છે અને તે જ પાંચમો ક્લેશ છે.

નાસ્તિકોને પણ 'નહીં મરવાનો અભિલાષ અને જીવ-વાની સદાતન ઇચ્છા હોય છે.' એથી પૂર્વજન્મ છે એમ નાસ્તિકોએ માનવું જોઈએ. કારણ કે પૂર્વજન્મના મરણના અનુભવ વગર આ જન્મમાં તેની સ્મૃતિ થાય જ નહીં. સર્વજ્ઞકલ્પ જેવા વિદ્વાનોને પણ મરણના દુઃખની સ્મૃતિ થાય છે. કારણ કે અનુભવજન્ય વાસના પ્રાણીમાત્રના મનમાં એકસરખી રીતે પડી હોય છે. તેથી મરણના દુઃખની સ્મૃતિ થાય છે અને તેનાથી બચવા પ્રાણીમાત્ર પ્રયાસ કરે છે. આ જન્મમાં તો કોઈને મરણ થયું નથી માટે આ જન્મ પહેલાં જન્મેલા માણસનું જ મરણ માનવું જોઈએ એ તો દીવા જેવી સ્પષ્ટ વાત છે. પહેલાં કદી નહીં મળેલાં એવાં શરીર, ઇંદ્રિય, બુદ્ધિ અને વેદનાનો સંબંધ થવો તેનું નામ 'જન્મ.' અને એ શરીર આદિ ચારેયનું વિલીન થઇ જવું, નાશ પામવું અથવા એકબીજાથી બધાયનું જુદું પડી જવું તેનું નામ 'મરણ' છે. આ જોડાણ અને વિયોજન અનાદિ કાળથી કર્મના નિયમ પ્રમાણે ચાલ્યાં જ કરે છે અને તેથી ન

મરવાની અને જીવવાની આશારૂપ પ્રાર્થના પણ હોય છે. આ જ 'અભિનિવેશ' છે. આ અભિનિવેશ પણ દુઃખનું કારણ છે. ॥ ૯ ॥

આ સાધન-પાદની શરૂઆતમાં જ તપ, સ્વાધ્યાય અને ઇશ્વર-પ્રણિધાન બતાવવામાં આવ્યાં છે, એને 'ક્રિયાયોગ' અથવા 'કર્મયોગ' કહેવામાં આવે છે એ પણ સમજાવવામાં આવ્યું છે. ક્રિયાયોગનું પ્રયોજન કલેશોને નબળા કરી નાખવા એ છે. કલેશોની ક્રમથી બનતી જુદી જુદી અવસ્થાઓ હોય છે, જેમકે પ્રસુપ્ત, તનુ, વિચ્છિન્ન અને ઉદાર. કલેશો પ્રસુપ્ત આદિ ચાર અવસ્થામાં હોય છે તે સ્થૂલ કલેશો કહેવાય છે.

જ્યારે કલેશો બળેલા બી જેવા થઈ જાય છે ત્યારે તે સૂક્ષ્મ કલેશો કહેવાય છે. કલેશોની દગ્ધબીજ અવસ્થા, એ કલેશોની પાંચમી અવસ્થા કહેવાય છે.

સૂત્રકાર પતંજલિ મહર્ષિએ કલેશોની પાંચમી અવસ્થા બતાવી નથી, પણ ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિએ પોતાના ભાષ્યમાં બતાવી છે.

કલેશોની પાંચમી અવસ્થાને ન બતાવવી, એમાં સૂત્રકારનો આ પ્રમાણે આશય જણાય છે. જેમકે—જે વસ્તુનો નાશ અથવા તેમાં કશોક ફેરફાર કરવો એ માનવીય પ્રયત્નને આધીન હોય તેવાનો નિર્દેશ કરવો ઠીક છે, પણ કલેશો પાંચમી અવસ્થાએ પહોંચ્યા પછી તે માનવ પ્રયત્નના વિષય તરીકે રહેતા નથી. એટલે કે પાંચમી અવસ્થામાં

માણસથી કશોય ફેરફાર કરી શકાતો નથી, તો તેનો નિર્દેશ કરવાથી શો લાભ ?

સ્થૂલ ક્લેશોને નબળા કરવા માટે અભ્યાસ, વૈરાગ્ય, પાદ–૧ સૂત્ર–૩૩માં જણાવેલાં પરિકર્મ અને અસંપ્રજ્ઞાત યોગ વગેરે કારણ તરીકે છે. ક્લેશો પાંચમી અવસ્થાએ પહોંચ્યા પછી તેનો આધાર જે ચિત્ત છે તે પણ ચરિતાર્થ થઇ ગયેલું હોય છે, એટલે કે તે અધિકારવાળું રહ્યું નથી, એટલે કે એ જન્મ, આયુષ્ય અને ભોગ આપી શકતું નથી; માટે અધિકારવિહીન બનેલા એ ચિત્તે પોતાની પ્રકૃતિ જે અસ્મિતા છે તેમાં મળી જવું જ રહ્યું.

ચિત્ત જ્યારે પોતાની પ્રકૃતિમાં લીન થઇ જાય છે ત્યારે તેમાં રહેલા પાંચમી અવસ્થાવાળા ક્લેશો અથવા સૂક્ષ્મ ક્લેશો પણ ચિત્ત સાથે જ વિલીન થઇ જાય છે. કાર્યનું કારણમાં વિલીન થવું એને 'પ્રતિપ્રસવ' કહે છે અથવા પ્રતિલોમ પરિણામ પણ કહે છે. સૂક્ષ્મ ક્લેશોનો કેવી રીતે નાશ કરવામાં આવે છે તે વાત હવે સૂત્રકાર આ નિમ્ન સૂત્રમાં સમજાવે છે :

તે પ્રતિપ્રસવહેયાઃ સૂક્ષ્માઃ ॥ ૧૦ ॥

પદાર્થઃ– (તે) તે (સૂક્ષ્માઃ) જ્ઞાનરૂપ અગ્નિથી બળી ગયેલા બી જેવા, કાર્ય કરવાને માટે શક્તિહીન થયેલા સૂક્ષ્મ ક્લેશો (પ્રતિપ્રસવહેયાઃ) પ્રતિલોમરૂપ પરિણામથી છોડી દેવા જોઇએ.

ભાવાર્થઃ– પ્રકૃતિ અને પુરુષના વિવેકજ્ઞાન દ્વારા ક્લેશોને કર્તવ્યશૂન્ય બનાવવામાં આવે છે, એટલે કે વિવેકજ્ઞાન

પ્રાપ્ત થયા પછી અવિદ્યા આદિ ક્લેશો કોઇ પણ જાતનું પરિણામ કરી શકતા નથી, વાસનારૂપે જ ચિત્તમાં સ્થિર થઇ જાય છે. છતાં એ ક્લેશોનો નાશ તો કરવો જ જોઇએ. ચિત્તને તેના કારણભૂત અસ્મિતામાં વિલીન કરવું એ ચિત્તનો પ્રતિપ્રસવ કહેવાય છે. ચિત્તનું ઉપાદાન કારણમાં વિલીનીકરણ થયા પછી ચિત્તને આધારે રહેલા ક્લેશો પોતાનું અસ્તિત્વ જ ધરાવી શકતા નથી, આધાર નાશ પામ્યા પછી આધેય ન જ રહી શકે, માટે ચિત્તનો પ્રતિ-પ્રસવ કરવો અને તેને લીધે વાસનારૂપે રહેલા ક્લેશો પણ નાશ પામી જશે. આ કાર્ય જે યોગી અસંપ્રજ્ઞાત યોગમાં કુશળ થયો હશે, તે જ કરી શકશે. ॥ ૧૦ ॥

હવે સ્થૂલ ક્લેશો નાશ કરવાનો ઉપાય આ નિમ્ન સૂત્રમાં બતાવે છે :

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

પદાર્થ:– (तद्वृत्तयः) ક્લેશોની જે સ્થૂળ વૃત્તિઓ છે તે બધી (ध्यानहेयाः) પ્રસંખ્યાન જ્ઞાનથી છોડી દેવી જોઇએ.

ભાવાર્થ:– તપ, સ્વાધ્યાય અને ઇશ્વરપ્રણિધાન રૂપ ક્રિયાયોગથી નિર્બળ બનાવી દેવામાં આવેલા ક્લેશો પણ પોતાનું કામ તો કરતા રહે છે, માટે નિર્બળ બનેલા ક્લેશોની સ્થૂલ વૃત્તિઓ ધ્યાનદ્વારા અર્થાત્ ચિત્તની એકાગ્રતા દ્વારા હેય એટલે કે તજવા યોગ્ય બનાવી દેવી જોઇએ. ભાવ એ છે કે ચિત્તની એકાગ્રતારૂપ ધ્યાનના અભ્યાસથી ક્લેશોની સ્થૂલ વૃત્તિઓનો નાશ કરવો જોઇએ. પ્રથમ

સ્થૂલ ક્લેશોની વૃત્તિઓનો નાશ કરવો અને પછી સૂક્ષ્મ ક્લેશોનો નાશ કરવો. જેમ મેલાં કપડાંનો સ્થૂલ મેલ કપડાને માત્ર ધોવાથી નાશ પામે છે પણ સૂક્ષ્મ મેલ તો તેને સાબુ આદિ લગાડવાથી નાશ પામે છે, તેમ સ્થૂલ અને સૂક્ષ્મ ક્લેશોનો નાશ કરવો જોઇએ. ક્લેશો આત્માના શત્રુઓ છે. સ્થૂલ ક્લેશો થોડી શક્તિ ધરાવતા શત્રુઓ છે અને સૂક્ષ્મ ક્લેશો મહાશક્તિ ધરાવતા શત્રુઓ છે, માટે તેનો નાશ કરવો જ જોઇએ. એનો નાશ થયા પછી પરમાત્મદર્શન, આત્મદર્શન અને મુક્તિ પ્રાપ્ત કરી શકાય છે. ॥ ૧૧ ॥

અવિદ્યા આદિ પાંચ ક્લેશો દુઃખનું કારણ છે, એ વાત ખરી, પણ એ સીધા જ દુઃખનાં કારણ બને છે કે કોઇને ઉત્પન્ન કરીને દુઃખનું કારણ બને છે? દાખલા તરીકેઃ—રાઇફલની ગોળી દુઃખનું કારણ બને છે, પણ જ્યાં સુધી એ ગોળી શત્રુને વાગે નહીં ત્યાં સુધી તો એ દુઃખનું કારણ નથી જ. એટલે કે, સ્વરૂપતઃ એ ગોળી દુઃખનું કારણ નથી, પણ જ્યારે એ ગોળીમાં વેગ આવે અને શત્રુના શરીરમાં ઘૂસી જાય છે ત્યારે તે દુઃખનું કારણ છે એમ કહેવાય. કારણમાંથી જ્યારે કોઈ વ્યાપાર જન્મે ત્યારે કારણ સુખ અને દુઃખ આપી શકે છે. તે જ પ્રમાણે ક્લેશોનો વ્યાપાર શું છે? ક્લેશો શું ઉત્પન્ન કરીને માનવ જાતને દુઃખ આપે છે? તે બાબત આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર સમજાવે છેઃ

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १२ ॥

પદાર્થ:– (क्लेशमूलः) ક્લેશ જેનું મૂળ છે એવો (कर्माशयः) કર્માશય હોય છે અને તે (दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः) આ જન્મ અને ભાવિ જન્મમાં પણ ભોગ્ય હોય છે.

ભાવાર્થ:– કર્માશય એટલે ધર્મ અને અધર્મ. વાસના-રૂપે રહેલાં કર્મો જ ધર્મ અને અધર્મ કહેવાય છે.

आशेरते सांसारिकाः पुरुषा अस्मिन् इत्याशयः कर्मणाम् आशयः स कर्माशयः । જેમાં સાંસારિક પુરુષો બંધાયેલા હોય છે તે આશય કહેવાય છે. કર્મ એટલે ધર્મ અને અધર્મ. માટે કર્માશય એટલે ધર્મ અને અધર્મ. અવિદ્યા આદિ ક્લેશોને લીધે માણસો સારાં અથવા ખરાબ કર્મ કરે છે અને આ કર્મથી જે સંસ્કાર ઉત્પન્ન થાય છે તે ધર્મ અને અધર્મ. ભાવ એ થયો કે ક્લેશો કર્માશય એટલે કે ધર્મ અને અધર્મને ઉત્પન્ન કરી દુઃખનાં કારણ બને છે, સારાં કર્મ અર્થાત્ વેદવિહિત કર્મ કરી માણસ સુખને મેળવે છે. સુખ ઉપર રાગ હોય તો જ સુખના કારણને માણસ આચરે છે. ભૌતિક પરિણામો તો દુઃખ-કારક હોય છે. લોભ પણ 'રાગ' જ કહેવાય છે, તેનાથી માણસ પારકાના ધનનું હરણ કરે છે એટલે લોભરૂપ રાગ દુઃખનું જ કારણ બને છે. ક્લેશો સાંસારિક સુખ-નથી આપતા, એવું શાસ્ત્રકારનું તાત્પર્ય નથી પણ આધ્યાત્મિક જે ખરું સુખ છે તે સુખને તો ક્લેશો આપી શકતા જ નથી. પ્રાકૃતિક સુખ દુઃખથી ઘેરાયેલું હોવાથી એ સુખને શાસ્ત્રકારે દુઃખ-પક્ષમાં ગણ્યું છે.

ક્લેશોથી ઉત્પન્ન થયેલો 'કર્માશય' હરેક માણસમાં હોય છે, અરે હરેક પ્રાણીમાં હોય છે.

આ 'કર્માશય' આ જન્મ પૂરો થાય ત્યાંસુધીમાં ભોગવાઇ જાય છે અને બાકી રહે તો બીજા જન્મમાં પણ ભોગવાય છે. માટે એક જ જન્મમાં બધો કર્માશય ભોગવી લેવાય છે એવો નિયમ નથી.

दृष्टजन्मवेदनीयः = दृष्ट = દેખાયેલો એટલે ચાલુ શરીરથી ભોગવાતો.

वेदन = ભોગ, અને वेदनीय = ભોગવવા યોગ્ય.

अदृष्ट = નહીં દેખાયેલો. એટલે બીજા જન્મે જે ભોગવાશે તે.

अदृष्टजन्मवेदनीयः=આવતા બીજા જન્મમાં જે ભોગવી શકાય તે.

'કર્માશય' બે પ્રકારનો છેઃ– (૧) ચાલુ શરીરે ભોગવી લેવા યોગ્ય, (૨) ભવિષ્યમાં મળનાર બીજા જન્મે = બીજા શરીરે ભોગવવા યોગ્ય. અતિવૈરાગ્યથી પ્રણવ મંત્રનો જપ અને તેના અર્થની ભાવના કરી, તપશ્ચર્યા કરી, સમાધિ કરી જે કર્માશય થયેલો હોય છે તે આ જ જન્મમાં ભોગવાઇ જાય છે.

ભય પામેલા, રોગી, ગરીબ અને વિશ્વાસુ થયેલા મહાનુભાવ તપસ્વીઓ ઉપર વારંવાર અપકાર કર્યો હોય તો તેથી પાપપૂર્ણ કર્માશય થાય છે અને તેનો જલદી પરિપાક થાય છે. નંદીશ્વરે બાળપણમાં જ પવિત્ર કર્માશય કરી

ઉચ્ચપદ પ્રાપ્ત કર્યું હતું અને નહુષ ઈંદ્રપદ પ્રાપ્ત કર્યા પછી ઋષિઓ તરફ દુર્વર્તન કરી એક જ જન્મમાં અધોગતિને પામ્યો હતો. ઘણા પાપથી બનેલો કર્માશય વર્તમાન જન્મથી ભોગવી લેવાતો નથી, તેને માટે તો એક અથવા બે શરીરને ધારણ કરવાં પડે છે.

જેના ક્લેશો તપ, સ્વાધ્યાય, ઇશ્વરપ્રણિધાન અને સમાધિ દ્વારા ક્ષીણ થઇ ગયા હોય છે તેને ભવિષ્યમાં ભોગવવા જેવો કોઇ કર્માશય જ હોતો નથી. તેમનો બધો જ કર્માશય આ એક જ જન્મમાં ભોગવાઇ જાય છે અને પછી મુક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે. ॥ ૧૨ ॥

અવિદ્યામાંથી જ 'કર્માશય' ઉત્પન્ન થાય છે. યોગીને જ્યારે વિદ્યા ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે અવિદ્યાનો જરૂર નાશ થાય છે. વિદ્યા ઉત્પન્ન થયા પછી કોઇ કર્માશય થતો નથી કારણ કે અવિદ્યારૂપ કારણ નાશ પામવાથી તેના કાર્યસ્વરૂપ કર્માશય ન જન્મે એ સ્વાભાવિક છે, પણ યોગીના ચિત્તમાં જે પહેલાંના કર્માશયો હોય છે તેને લીધે પુનર્જન્મ થયા કરશે અને મુક્તિ મળશે નહિ, કારણ કે અનાદિકાળથી ભેગા થયેલા કર્માશયો ક્યારે ભોગવાઈ રહે તે ચોક્કસ કહી શકાય નહિ. આ કારણથી જે યોગીને વિદ્યા ઉત્પન્ન થઇ હશે તેને પણ સંસાર ચાલુ જ રહેશે. આ શંકાનું સમાધાન આ નિમ્ન સૂત્રમાં કરવામાં આવે છે :

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥

પદાર્થ:– (मूले सति) મૂળ હોય તો (तद्विपाकः) કર્મનો

વિપાક થાય. (जात्यायुर्भोगाः) જાતિ, આયુષ્ય અને ભોગ આ કર્માશયોનું પરિણામ છે.

ભાવાર્થ:– જાતિ = મનુષ્યત્વ, પશુત્વ અને પક્ષિત્વ આદિ જાતિઓ. આયુષ્ય એટલે માણસ આદિ એક વ્યક્તિનો એક જ શરીર સાથે લાંબા સમય સુધી સંબંધ રહેવો તે. ભોગ એટલે વિષયોના, ઇન્દ્રિયો દ્વારા સુખ–દુ:ખના અનુભવો.

જાતિ આદિ વિપાકો કર્માશયમાંથી જન્મે છે માટે તે કર્મનો પરિપાક કહેવાય છે. કર્મનું પરિણામ પણ કહેવાય છે. અવિદ્યા આદિ પાંચ ક્લેશો હોય તો જ કર્માશયમાં જાતિ આદિ વિપાક થાય છે. જો અવિદ્યા વિદ્યાને લીધે નાશ પામી ગઈ હોય અને કર્માશય વિદ્યમાન હોય તોપણ તેમાંથી જાતિ, આયુષ્ય અને ભોગરૂપ પરિણામ થતું નથી, કારણ કે અવિદ્યા આદિ ક્લેશો કર્મના સહકારી કારણો છે, માટે તેના વગર કર્મ કોઈ પણ પાકને જન્માવી શકે નહિ. દાખલા તરીકે– બીમાંથી અંકુર જન્મે છે ખરું, પણ તે બી પાણીથી તરબોળ થયેલી યોગ્ય ભૂમિમાં પડયું હોય તો. પાણીથી તરબોળ થયેલી ભૂમિ બીનું સહકારી કારણ છે, માટે યોગ્ય ભૂમિ વગર બી એમ ને એમ પડી રહે છે અને છેવટે તેનો નાશ થાય છે પણ તેમાંથી અંકુર તો ન જ જન્મે. બસ આ જ પ્રમાણે ક્લેશો વગર કર્માશય નકામો થઈ જાય છે. વિદ્યા ઉત્પન્ન થઇ એટલે અવિદ્યા આદિ ક્લેશો નાશ પામે છે અને પછી કર્માશય નકામો થઇ જાય છે, જેથી યોગીને મુક્તિ મળવામાં કોઇ વાંધો

આવતો નથી. અનાદિકાળથી ભેગા થયેલા કર્માશયો પણ વિદ્યા ઉત્પન્ન થયા પછી નકામા થઇ જાય છે.

તુષથી (–ઉપરનાં છોતરાંથી) રહિત થયેલા ચોખાના દાણા ઉગતા નથી, તેમ અવિદ્યા આદિ ક્લેશોથી રહિત થયેલા કર્માશયો ઊગતા નથી એટલે કે તે જન્મ, આયુષ્ય અને ભોગ આપી શકતા નથી. આ જ કારણથી સૂત્રકારે સૂત્રમાં જણાવ્યું છે કે મૂળ હોય તો જ કર્માશય એટલે ધર્મ અને અધર્મ જન્મ, આયુષ્ય અને ભોગરૂપ વિપાકને જન્માવે છે, નહીં તો નહિ.

હવે એક બીજો વિચાર કરીએ.

શું એક કર્મ એક જ જન્મને ઉત્પન્ન કરે છે કે એક કર્મ અનેક જન્મને ઉત્પન્ન કરે છે?

શું અનેક કર્મો મળી એક જ જન્મને ઉત્પન્ન કરે છે કે અનેક કર્મો મળી અનેક જન્મોને ઉત્પન્ન કરે છે?

(૧) એક કર્મ એક જ જન્મને ઉત્પન્ન કરે છે એ પક્ષને સ્વીકારવામાં દોષ એ જણાય છે કે, અનાદિકાળથી ભોગવાઈ જતાં કર્મોમાંથી બાકી રહેલાં કર્મો ઘણાં એમ ને એમ ચિત્તભૂમિમાં પડયાં હોય છે અને નવાં કર્મોનો પણ ઉમેરો થતો રહે છે, આ બધાં કર્મોને પોતપોતાનાં ફળ આપવાનો વારો કયારે આવશે? તે કહી શકાય નહિ. માટે આ પક્ષ ઠીક નથી.

(૨) એક કર્મ અનેક જન્મોને ઉત્પન્ન કરે છે એમાં તો એના કરતાં એ દોષ વધી જાય છે. જયારે એક-એક

કર્મ એક જન્મને ઉત્પન્ન કરે અને બીજાં સંચિત કર્મોને પોતાનાં ફળ આપવાનો વારો નથી આવતો તો પછી એક કર્મ અનેક જન્મોને ઉત્પન્ન કરે તો તો બાકી રહેલાં સંચિત કર્મોનો વારો આવે જ ક્યાંથી ?

(૩) અનેક કર્મ અનેક જન્મોને પેદા કરે છે એમ સ્વીકારવાથી પણ ઉપરનો દોષ દૂર થતો નથી. જો આ દોષો તરફ ધ્યાન આપવામાં ન આવે તો વૈદિક કર્મોનું અનુષ્ઠાન કોઈ કરે જ નહિ, કારણ કે ભૂતકાળમાં કરેલાં અને વર્તમાનકાળમાં કરાતાં કર્મોનું ફળ ન મળવાથી નિષ્ફલ કર્મ કરે જ શામાટે. સર્વ કોઇ સુખ મેળવવાને માટે જ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

(૪) આ કારણને લીધે પહેલા ત્રણ પક્ષોને દૂર કરી ચોથો પક્ષ કે જે આ પ્રમાણે છે- 'અનેક કર્મોથી એક જ જન્મ થાય છે' એ જ પક્ષ ઠીક છે--અને તે આ પ્રમાણે છે—જન્મથી માંડીને મરણ પર્યન્ત જે સારાં કે ખરાબ કર્મોનો સરવાળો થયો હોય તે બધાથી એક જ જન્મ બને છે અને એ જન્મમાં આયુષ અને ભોગ પણ એ જ કર્મરાશિથી મળે છે. 'કર્માશય' જન્મ, આયુષ અને ભોગ આપે છે માટે ત્રિપાક એ કર્માશય કહેવાય છે. આથી એ સામાન્ય સિદ્ધાંત નીકળે છે કે, કર્માશય એકભવિક છે.

આ કર્મ સિવાય સંચિત કર્મો હશે તે પણ યોગ્ય સમય મળ્યે ફળ આપશે જ. અને જો એટલામાં યોગીને વિદ્યા અર્થાત્ વિવેકજ્ઞાન થઇ જશે તો તે કર્મો જ્ઞાનરૂપ અગ્નિથી નાશ પામશે, અને એ યોગી મુક્તિ પામશે.

સંચિત કર્મ ક્યારે ફળ આપશે તે ચોક્કસ કરી શકાતું નથી, માટે 'એ કર્મોની ગતિ ગહન છે' —એમ કહેવામાં આવ્યું.

આ ઉપરથી જાણવું જોઈએ કે એકભવિક કર્માશય છે આ સામાન્ય નિયમ, અને 'અનેકભવિક કર્માશય છે' એ અપવાદ છે. ॥ ૧૩ ॥

કર્મનું મૂળ અવિદ્યા, અસ્મિતા, રાગ, દ્વેષ અને અભિનિવેશરૂપ પાંચ કલેશો છે. જાતિ, આયુષ અને ભોગરૂપ વિપાકનું મૂળ કર્મ (ધર્મ અને અધર્મ) છે, કલેશ અને કર્મ બંને તજવાં જોઇએ કારણ કે દુઃખ તેમાંથી જ જન્મે છે. આથી એમ કહેવાનો હેતુ નથી કે તે સુખનું કારણ નથી. વિષયજન્ય સુખનું તે કારણ છે જ, પણ તે દુઃખ આપનાર હોવાથી ત્યાજ્ય છે. દુઃખરહિત સુખનું કારણ જે હોય તે જ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે. એમ અધ્યાત્મદર્શી સમજે છે. જાતિ, આયુષ અને ભોગને આપનાર વિપાક પણ ત્યાજ્ય છે, કારણ કે એ પણ દુઃખનું કારણ છે. વિષયોના સેવનથી નર્યું સુખ તો મળતું જ નથી. જો દુઃખ જરાપણ ન જોઇતું હોય તો વિષયજન્ય સુખને છોડવું જ જોઈએ. આ કારણથી કેવળ સુખને ઇચ્છનારે વિપાકોને પણ તજવા જોઇએ. સુખ અને દુઃખના અનુભવો રૂપ ભોગ પણ છોડવા જ જોઇએ. તો જ અસંપ્રજ્ઞાત યોગ અને મુક્તિ મેળવી શકાય. વિપાકો પણ છોડવા જોઇએ તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥

પદાર્થ:– (તે) આ સર્વનામ વિપાકને બદલે વપરાયું છે માટે તે વિપાકો (ह्लादपरितापफलाः) સુખ અને દુઃખરૂપ ફળને ઉત્પન્ન કરે છે (पुण्यापुण्यहेतुत्वात्) કરણ કે વિપાક પુણ્ય અને અપુણ્ય એટલે ધર્મ અને અધર્મ બંનેમાંથી જન્મે છે.

ભાવાર્થ:– જાતિ, આયુષ્ય અને ભોગરૂપ વિપાક ધર્મ અને અધર્મને લીધે જન્મે છે. જે ધર્મરૂપ કારણથી જન્મે છે તે સુખ આપે છે અને જે અધર્મરૂપ કારણથી જન્મે છે તે દુઃખ આપે છે.

ધર્મની પાછળ અધર્મ જોડાયેલો છે તેથી સુખની પાછળ દુઃખ જોડાયેલું છે. દુઃખ પ્રતિકૂલ છે, કોઈપણ વખતે માણસ દુઃખને ઇચ્છતો જ નથી. અરે કોઈ પ્રાણી પણ દુઃખને ચાહતું નથી. વિપાક દુઃખરહિત નથી, કોઈક વખતે એ સુખ આપે તોપણ એ દુઃખના કારણ તરીકે મટતો નથી. ઝેરવાળું મીઠું દૂધ શરૂઆતમાં સુખ આપે છે પણ છેવટે તે ભયંકર દુઃખ આપ્યા વગર રહેતું નથી. વિપાકમાં પણ આ જ રીત છે, માટે વિપાક છોડવા યોગ્ય છે. પુણ્ય અને અપુણ્યરૂપ કર્મમાંથી જન્મતા વિપાકો સુખ અને દુઃખ બંનેના કારણ છે. એ આ સૂત્રનો ઉપલક દૃષ્ટિએ સ્પષ્ટ અર્થ છે. ॥ ૧૪ ॥

સાધારણ સાંસારિક માણસો જે વખતે વિષયોનાં વિવિધ સુખો ભોગવે છે તે વખતે એ સુખોની આસપાસ દુઃખો સૂક્ષ્મ અવસ્થામાં વિદ્યમાન હોય છે, તેને તેઓ જોઈ શકતા

નથી; પણ વિવેકી યોગીજનો તો તેને જોઈ શકે છે. તે વાત આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર જણાવે છેઃ

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च
दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

પદાર્થઃ- (परिणामतापसंस्कारदुःखैः) પરિણામ, તાપ અને સંસ્કારથી દુઃખો જન્મે છે, માટે એ ત્રણે ય દુઃખ છે (च) અને (गुणवृत्तिविरोधात्) સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ ગુણોથી વૃત્તિમાં વિરોધ હોવાથી (विवेकिनः) વિવેકી યોગીજનને સંસારમાં (सर्वम्) બધું (दुखम् एव) દુઃખ જ લાગે છે.

ભાવાર્થઃ-(૧) પરિણામદુઃખતા = ચેતન અને અચેતન-રૂપ સાધનમાંથી સુખનો અનુભવ કરી શકાય છે. રાગને લીધે જ વિષયનાં સુખો ભોગવી શકાય છે. જે વિષયમાંથી માણસ રાગી થઈ સુખ અનુભવે છે તે વિષય જ્યારે કોઇ બીજો લઈ લે છે ત્યારે લઈ લેનાર વ્યક્તિ ઉપર દ્વેષ થાય છે અને તે વિષયને પાછો ન મેળવી શકે ત્યારે મોહ ઉત્પન્ન થાય છે. જે આપણે 'અજવિલાપ' આદિમાં વાંચીએ છીએ આમ રાગ, દ્વેષ અને મોહથી 'કર્માશય' બંધાય છે. મન, વાણી અને શરીરથી સુખ ભોગવાય છે અને 'કર્માશય' બંધાય છે. રાગ, દ્વેષ અને મોહથી પ્રવૃત્તિ થાય છે અને તેનાથી ધર્મ અને અધર્મરૂપ કર્માશય બંધાય છે. મહર્ષિ ગૌતમે પણ કહ્યું છે કે : 'प्रवृत्तिलक्षणा दोषाः' (न्यायदर्शन, ૧-૧-૧૮) પ્રવૃત્તિ કરાવનાર દોષો જ છે અને તે રાગ,

દ્વેષ અને મોહ છે. જે વખતે સુખ અનુભવાય છે તે જ વખતે સૂક્ષ્મરૂપે ચિત્તમાં દુઃખ પણ હોય છે અને તે દુઃખ જયારે સ્થૂલ રૂપે થાય છે ત્યારે સુખ અદૃશ્ય થઈ જાય છે. એટલે ભવિષ્યકાળમાં રહેલું દુઃખ વર્તમાનમાં જ આવે છે.

(૧) પરિણામદુઃખતા–વિષયોના ઉપભોગથી ઇંદ્રિયોને ક્ષણિક શાંતિ મળે છે પણ મનમાંથી તૃષ્ણા તો જતી જ નથી. જે માણસ દુઃખ દૂર કરવા વિષયો તરફ દોડે છે તે વીંછીના ઝેરથી બચવા સાપના ઝેરનો ભોગ થઈ પડે છે. આ મુમુક્ષુ યોગીની સમજ છે, અને તેથી તે દુઃખ દૂર કરવા અસંપ્રજ્ઞાત યોગ તરફ જ વળે છે. સાંસારિક માણસને આ સમજ હોતી નથી તેથી દુઃખ આવવાનું હોય તો ભલે આવે પણ વિષયસુખને છોડવું નહિ, એવું તેઓ માને છે. આ છે પરિણામદુઃખતા અને તે 'પ્રતિકૂલ' છે, તે સુખાવસ્થામાં પણ યોગીને જ દુઃખ આપે છે.

(૨) તાપદુઃખતા—સુખના અનુભવ વખતે જ સુખ આપનાર આ વિષય નાશ પામશે એવી બીક રહે છે અને તેથી નાશ કરનાર ઉપર દ્વેષ થાય છે, દ્વેષને લીધે મનમાં 'તાપ' (પીડા) થાય છે. આને તાપદુઃખતા કહેવામાં આવે છે.

(૩) સંસ્કારદુઃખતા—સુખનો ઉપભોગ કરવાથી એનો સંસ્કાર મનમાં પડે છે અને પછી સુખ નાશ પામે છે. સંસ્કારમાંથી પુણ્ય અને પાપરૂપ કર્મોની સહાયતાના બળે સુખ-દુઃખ ઉત્પન્ન થાય છે. આમ સુખ-દુઃખમાંથી

તેના સંસ્કાર અને સંસ્કારમાંથી ફરીથી સુખ-દુઃખ—આમ ને આમ ચાલ્યા જ કરે છે. આનું નામ છે સંસ્કારદુઃખતા.

સુખમાં ઓતપ્રોત થઈ રહેલાં સૂક્ષ્મ દુઃખો સાચા યોગીઓને જ દુઃખી કરે છે, કારણ કે, સાચો યોગી બહુ જ કોમળ બની ગયેલો હોય છે. જેમ કોઈ ઝીણું તણખલું આંખમાં પડયું હોય તો આંખને તે દુઃખ આપે છે કારણ કે આંખ બહુ કોમળ અવયવ છે. શરીરના બીજા ભાગ ઉપર એ તણખલું પડે તો તે ભાગને દુઃખ આપતું નથી કારણ કે તે અવયવ આંખની અપેક્ષાએ બહુ કઠણ હોય છે. આ જ પ્રમાણે અયોગી સાંસારિક માણસો કઠણ ચિત્તના હોવાથી સૂક્ષ્મદુઃખોથી ચેતતા નથી.

(૪) ગુણવૃત્તિવિરોધદુઃખતાઃ— સત્વ, રજ અને તપ આ ત્રણ ગુણો કહેવાય છે. એના વિરોધી પરિણામો થયા કરે છે અને સુખ-દુઃખ આવ્યા જ કરે છે. તેથી કહેવામાં આવ્યું છે કે તડકા પાછળ છાયા અને છાયા પાછળ તડકો આવ્યા જ કરે છે. ચક્રની પેઠે સુખદુઃખો ફર્યા કરે છે; માટે એને તો સહન કર્યે જ છૂટકો, આવું સંસારના માણસો માને છે. આ જાતના દુઃખને ગુણવૃત્તિવિરોધ-દુઃખતા કહેવાય છે.

સંસારદુઃખને દૂર રાખી સદૈવ સુખ ભોગવી શકાતું નથી, આથી વિવેકી યોગી લોકોને સંસારનાં સુખો પણ દુઃખરૂપે જ જણાય છે.

સત્વ, રજ અને તમ આ ત્રણ ગુણો સાથે જ રહે છે, અને ક્ષણે-ક્ષણે પરિણામ પામતા જ રહે છે. સત્વનું

પરિણામ સુખ, રજોગુણનું પરિણામ દુઃખ અને તમોગુણનું પરિણામ મોહ હોય છે. આ કારણથી સમસ્ત જગત્ સુખ-દુઃખ અને મોહવાળું જ છે. યોગી લોકો આ જ કારણથી વિષયજન્ય સુખને વિષમિશ્રિત અન્ન જેવું માને છે અને તેનાથી બચવા માટે સતત પ્રયત્ન કરતા હોય છે.

આ દુઃખના સાતત્યનું કારણ અવિદ્યા છે. અવિદ્યાનો નાશ સત્ય જ્ઞાનથી થાય છે, કારણ કે અવિદ્યા એ અસત્ય જ્ઞાન છે.

આ 'યોગદર્શન' ચાર વિભાગમાં વહેંચાયેલું છે. જેમ ચિકિત્સા-શાસ્ત્ર ચાર વિભાગમાં વહેંચાયેલું છે તેમ. ચિકિત્સા-શાસ્ત્ર (૧) રોગનું, (૨) રોગના કારણનું, (૩) આરોગ્યનું અને (૪) ઓસડનું પ્રતિપાદન કરે છે; તેમ આ યોગદર્શન (૧) સંસારનું, (૨) સંસારના કારણનું, (૩) મોક્ષનું અને (૪) મોક્ષના ઉપાયનું નિરૂપણ કરે છે. (૧) મોટે ભાગે આ સંસાર દુઃખથી ભરેલો છે માટે તે 'હેય'—તજવા યોગ્ય છે. (૨) પ્રધાન અને પુરુષ (આત્મા)નો સંયોગ હોવો તે હેય=સંસારનું કારણ છે. (૩) સંયોગની અત્યંત નિવૃત્તિ થવી તે 'હાન' (મુક્તિ) કહેવાય છે અને (૪) હાનનો (મુક્તિનો) ઉપાય સમ્યગ્દર્શન છે.

દુઃખને છોડનાર 'હાતા' કહેવાય છે. હાતા એ જ આત્મા છે. હાતા (આત્મા અથવા દ્રષ્ટા)ના સ્વરૂપને ઉત્પન્ન કરી શકાતું નથી, માટે તે ઉપાદેય નથી. તેમ તેના સ્વરૂપનો નાશ કરી શકાતો નથી માટે એ સ્વરૂપ હેય

નથી. જો હાતા–દ્રષ્ટાના સ્વરૂપનો નાશ કરી શકાય તો 'ઉચ્છેદવાદ' સિદ્ધ થાય છે. આત્માનો ઉચ્છેદ થાય તો મોક્ષ ભોગવે કોણ ? જો હાતા–દ્રષ્ટાના સ્વરૂપને ઉત્પન્ન કરી શકાતું હોય તો તેનો અર્થ એ થયો કે, આત્માને ઉત્પન્ન કરી શકાય છે. જો આત્મા ઉત્પન્ન થતો હોય તો તે અનિત્ય જ હોય અને અનિત્ય હોય તો મોક્ષ ભોગવનાર કોઈ રહે નહિ. આ કારણથી આત્માનું સ્વરૂપ ઉપાદેય અર્થાત્ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે કારણ કે તે તો નિત્ય પ્રાપ્ત છે, વળી તે કાર્ય નથી તેમ હેય પણ નથી. એથી આત્મા શાશ્વત ઠરે છે અને આ જ કારણથી દ્રષ્ટા, હેય, હેયનું કારણ અને હાન–ચારેયનું યથાર્થજ્ઞાન એ જ સમ્યગ્દર્શન છે. ॥ ૧૫ ॥

હવે શાસ્ત્રકાર પોતે જ ખૂબ લંબાણથી ચાર વ્યૂહને શાસ્ત્રીય રીતે ચાર ભાગમાં બતાવે છે. તેમાં પ્રથમ હેય જે દુઃખ છે તે કઇ અવસ્થામાં હોય તો દૂર કરી શકાય ? તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

हेयं दुःख मनागतम् ॥ १६ ॥

પદાર્થઃ– (अनागतम्) જે દુઃખ ન આવ્યું હોય પણ આવવાનું હોય તે (दुःखम्) દુઃખ (हेयम्) તજવા યોગ્ય છે.

ભાવાર્થઃ– ત્રણ કાળ છેઃ ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્ય-કાળ. જ્યારે દુઃખની સાથે વિશેષણ લગાડી વ્યવહાર કરીએ એટલે ત્રણ પ્રકારનાં દુખો છે એવો વ્યવહાર થાય

છે. ભૂતકાળમાં થયેલું દુઃખ તે 'અતીતદુઃખ,' વર્તમાન-કાળનું દુઃખ તે ભોગવાતું 'વર્તમાન દુઃખ' અને જે દુઃખ આવવાનું છે તે 'ભાવિદુઃખ' અથવા ભવિષ્યકાળનું દુઃખ.

અતીતદુઃખ તો ભોગવાઈ ગયું છે તેથી એનો નાશ= તિરોભાવ તો થઈ ચૂકયો છે માટે તે 'હેય' દુઃખ નથી. જેમાં દૂર થવાની યોગ્યતા હોય તે 'હેય' કહેવાય છે.

વર્તમાન દુઃખ તો ભોગવાય છે. જે ક્ષણે જે ભોગવાય તે જ ક્ષણે તે નાશ કેમ પામે ? વસ્તુ માત્રના ભોગ-ક્ષણ અને નાશ-ક્ષણ જુદા જુદા હોય છે. ભોગ અને નાશ આ બંને એક જ વસ્તુમાં અને એક જ ક્ષણમાં વિરોધી બની રહે છે. આ કારણથી વર્તમાન દુઃખ ભોગવાતું હોવાથી તે પણ 'હેય' હોતું નથી.

અનાગત એટલે નહીં આવેલું, પણ જે ભવિષ્યમાં આવવાનું હોય તે દુઃખ 'હેય' હોય છે. વર્તમાન દુઃખ ભોગવાઇને આપોઆપ નાશ પામી જશે, માટે દુઃખને દૂર કરવાનો પ્રયત્ન ભાવિદુઃખને માટે જ સ્થિર થાય છે.

યોગીઓને ભવિષ્યમાં આવનારાં દુઃખો ન જ આવે, સદાને માટે આવતાં અટકી જાય એની જ ચિંતા હોય છે અને પ્રયત્ન પણ એને માટે જ તેઓ કર્યા કરે છે.

સાંસારિક માણસો ભાવિદુઃખોને દૂર કરવા સચેત હોતા નથી. એટલે દુઃખો આવ્યાં કરે છે અને તેઓ ભોગવાય પણ છે. આ માટે સૂત્રકારે કહ્યું છે કે ભવિષ્યમાં

આવનારું દુઃખ 'હેય' છે, માટે એને દૂર કરવા પ્રયત્ન કરો. ॥ ૧૬ ॥

જે 'હેય' દુઃખ છે તેનું જ કારણ બતાવવામાં આવે છે. એટલે કે 'હેય' દુઃખનું કારણ શું છે? કયા કારણથી હેય દુઃખ આવે છે? જો કારણ જાણી શકાય તો કારણનો નાશ કરી શકાય અને કારણનો નાશ થાય તો કાર્ય ન જ બને એ સર્વકોઈ જાણે છે. 'कारणनाशात् कार्यम् नश्यति' નૈયાયિકો સમવાયિકારણ અને અસમવાયિકારણ નાશ પામવાથી તેનું કાર્ય પણ નાશ પામે છે એમ માને છે. એ નિયમ અહીં લાગુ પડે છે. હવે 'હેય'=દુઃખનું કારણ શું છે? તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

પદાર્થ:– (द्रष्टृदृश्ययोः) દ્રષ્ટા અને દશ્યનો (संयोगः) સંયોગ (हेयहेतुः) દુઃખનો હેતુ અર્થાત્ કારણ છે.

ભાવાર્થ:– દ્રષ્ટા અને દશ્યનો સંયોગસંબંધ થવો તે જ હેય=દુઃખનું કારણ છે, માટે એ સંયોગસંબંધનો નાશ કરવો જોઇએ.

પ્રશ્ન:– દ્રષ્ટા એટલે શું ?

ઉત્તર:– બુદ્ધિનો પ્રતિસંવેદી પુરુષ અર્થાત્ મહત્તત્ત્વ-રૂપ બુદ્ધિને જાણનાર પુરુષ, એટલે કે આત્મા.

પ્રશ્ન:– દશ્ય એટલે શું ?

ઉત્તર:– મહત્તત્ત્વરૂપ બુદ્ધિનાં પરિણામ અર્થાત્ કાર્યો. આ સમસ્ત સંસાર પરંપરારૂપે મહત્ તત્ત્વનું જ પરિણામ

છે. ઇંદ્રિયો અને ઇંદ્રિયોથી જાણી શકાતાં બધાં જ કાર્યો 'દૃશ્ય' ગણાય છે. ટૂંકમાં કહીએ તો જડમાત્ર દૃશ્ય છે.

મહર્ષિ પતંજલિ સાંખ્યશાસ્ત્રની પ્રક્રિયામાં માને છે તેથી તેમણે સાંખ્યશાસ્ત્રમાં માનવામાં આવેલાં તત્ત્વો ઉપર યોગશાસ્ત્ર રચ્યું છે. એટલે એમ કહી શકાય કે 'આત્મા' અસંગ છે, ઉદાસીન છે. તો પછી આત્મામાં જાણવાનું જ્ઞાન ક્યાંથી આવ્યું ? આનો ઉત્તર એ છે કે બુદ્ધિનો સંબંધ તો આત્મા સાથે થાય છે તેથી બુદ્ધિના ધર્મો આત્મામાં પ્રતીત થાય છે. આથી પૃથ્વી, પાણી, પવન, તેજ, વાયુ વગેરે સંસાર દૃશ્ય બને છે અને તેનો અનુભવ કરનાર આત્મા છે. બુદ્ધિ ઉપર આત્માનું જે પ્રતિસંવેદિત્વ છે તે જ યોગમાં અનુભવ કહેવાય છે. પ્રતિ-સંવેદિત્વ એટલે બુદ્ધિમાં આત્માનું પ્રતિબિંબ. પ્રતિબિંબ પણ સંબંધવિશેષ જ છે. નિરાકાર આત્માનું પ્રતિબિંબ ન હોઇ શકે. પ્રકૃતિ જડ છે તેથી તેનાં પરિણામ પણ જડ છે, છતાં ચેતનસ્વરૂપ આત્માના સંપર્કથી બુદ્ધિ ચેતન જેવી જણાય છે.

પ્રશ્નઃ– દ્રષ્ટા એટલે આત્મા અને દૃશ્ય એટલે બુદ્ધિ આદિ સમસ્ત સંસાર. આ દ્રષ્ટા અને દૃશ્યનો પ્રાથમિક સંયોગસંબંધ ક્યારે થયો ?

ઉત્તરઃ– આ બંને દ્રષ્ટા અને દૃશ્ય અનાદિ છે અને એનો સંબંધ પણ અનાદિ છે. આથી એવું માનવામાં આવે છે કે સંયોગ જ હેયરૂપ દુઃખનું કારણ છે. જો આ

સંયોગ દૂર થાય તો મુક્તિ મળે, કારણ કે સંયોગને દૂર કરી શકાય છે અથવા ભાવિ સંયોગ દૂર રાખી શકાય છે. સંયોગ સદાયને માટે દૂર રહે તો દુઃખ ન આવે અને એનાથી કાયમની મુક્તિ રહે. દાખલા તરીકેઃ પગનું તળીયું ભેદ્ય છે (ભેદી શકાય એવું છે), કાંટો ભેદક છે (ભેદન કરનાર છે).

હવે જો કાંટા ઉપર પગ ન પડે તો પગનું તળિયું ભેદાય નહીં અથવા જોડા પહેરી લીધા હોય તોપણ કાંટો પગના તળિયામાં ભેદન કરી શકે નહીં. આમ ભેદક, ભેદ્ય અને ભેદન આ ત્રણના જાણવાથી ભેદનજન્ય દુઃખ થતું નથી, કારણ કે ત્રણ વસ્તુને જાણવામાં એવું સામર્થ્ય છે. દુઃખને જાણ્યા પછી દુઃખ દૂર કરી શકાય છે. આત્મા અને દૃશ્યમાં પણ એ જ રીત છે. જોકે આત્મામાં વાસ્તવિક દુઃખ નથી છતાં રજોગુણ તાપક છે અને સત્વગુણ તપ્ય છે. સત્વગુણ પરિણામી છે માટે તાપ તેમાં જ થાય છે. અપરિણામી અને નિષ્ક્રિય આત્મામાં તાપ (દુઃખ) થતો નથી, છતાં બુદ્ધિના સંબંધને લીધે બુદ્ધિ પોતામાં રહેલા તાપને આત્મામાં પ્રતીત કરાવે છે, આ કારણથી આત્મા માને છે કે, 'હું દુઃખી છું' —આ પ્રક્રિયા સાંખ્યની છે, બીજા શાસ્ત્રકારોની નહીં. યોગને તો બધાય શાસ્ત્રકારો માને છે પણ સૌ સૌનાં તત્ત્વજ્ઞાન પ્રક્રિયાની દૃષ્ટિએ જુદાં જણાય છે. આ જ કારણથી સર્વમાન્ય યોગને 'પાતંજલ' એવું વિશેષણ આપવામાં આવ્યું છે. પાતંજલિએ ઉપદેશેલો યોગ તે પાતંજલ યોગ. વેદમાં, ઉપનિષદમાં અને ન્યાય,

વૈશેષિકમાં પણ યોગનું પ્રતિપાદન છે. આ સૂત્રમાં ઉપર પ્રમાણે દ્રષ્ટાનું સ્વરૂપ બતાવવામાં આવ્યું છે. ॥ ૧૭ ॥

હવે સૂત્રકાર પોતે જ દૃશ્યના સ્વરૂપને અને તેના ઉપયોગને જણાવે છે :

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं
भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

પદાર્થ:- (प्रकाशक्रियास्थितिशीलम्) પ્રકાશ, ક્રિયા અને સ્થિતિના શીલવાળું (भूतेन्द्रियात्मकम्) પાંચ સૂક્ષ્મભૂત અને પાંચ મહાભૂતના સ્વભાવવાળું (भोगापवर्गार्थम्) ભોગ અને મોક્ષને આપનારું (दृश्यम्) દૃશ્ય છે.

ભાવાર્થ:- સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ આ ત્રણે ગુણો છે. એનો સ્વભાવ આ પ્રમાણે છે:- સત્વનું પરિણામ પ્રકાશ છે. પ્રકાશ એટલે જ્ઞાન અને સુખ આદિ આધ્યાત્મિક સંપત્. આ ત્રણ ગુણનાં પરિણામ (૧) પાંચ સૂક્ષ્મભૂત એટલે પૃથ્વીતન્માત્રા, જલતન્માત્રા, તેજતન્માત્રા, વાયુતન્માત્રા અને આકાશતન્માત્રા. (૨) પાંચમહાભૂત એટલે પૃથ્વી, જળ, તેજ, વાયુ અને આકાશ. (૩) ઇન્દ્રિયો. પાંચ જ્ઞાનેન્દ્રિયો, પાંચ કર્મેન્દ્રિયો અને બુદ્ધિ; અહંકાર અને મન. ખરી રીતે બુદ્ધિને જ મન અને ચિત્ત કહેવામાં આવે છે. આ ભૂત અને ઇન્દ્રિયોરૂપે પરિણામ થવાનું પ્રયોજન એ છે કે આત્માને ભોગ અને મુક્તિ મળે. આત્મા અનાદિકાળથી ભોગ એટલે સુખ-દુઃખ આદિનો અનુભવ કરે છે, માટે સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ ગુણોનાં પરિણામો પણ

અનાદિકાળથી થતા આવે છે. આ ત્રણે ગુણો એકબીજા સાથે મળીને જ પરિણામ પામે છે. એક મુખ્ય બને ત્યારે બીજા બે ગુણો ગૌણ બની રહે છે. દાખલા તરીકેઃ સત્વ-ગુણમાંથી જ્યારે શાંતિ આપનાર પરિણામ થાય છે ત્યારે રજોગુણ અને તમોગુણ પોતાના પરિણામો જન્માવતાં નથી, એટલે તે તે વખતને માટે ગૌણ કહેવાય છે. સંપૂર્ણ જગત્ આ ત્રણ ગુણમાંથી જન્મે છે માટે એને પ્રધાન કહે છે. प्रधीयते समस्तं जगत् अस्मिन् इति प्रधानम्। જગતનાં બધાંય કાર્યો આ ત્રણ ગુણો ભેગા રહીને જ કરે છે માટે તે 'સંભૂયકારી' કહેવાય છે.

પ્રશ્નઃ– જો બધા ગુણો ભેગા મળીને કાર્ય ઉત્પન્ન કરતા હોય તો માટી અને તંતુઓ મળીને વસ્ત્ર અથવા ઘડાને ઉત્પન્ન કેમ કરતા નથી ?

ઉત્તરઃ– તુલ્યજાતીય અર્થ ઉત્પન્ન કરવામાં ગુણો એક-બીજાના ઉપાદાન તરીકે સહકારી બને છે. માટી અને વસ્ત્ર આ બંને તુલ્યજાતીય નથી. માટીનો તુલ્યજાતીય અર્થ ઘડો છે અને તંતુઓનો તુલ્યજાતીય અર્થ વસ્ત્ર છે, માટે વસ્ત્ર બનાવવામાં ઉપાદાનકારણ તરીકે માટી કારણ બનતું નથી. તંતુઓનું તુલ્યજાતીય કાર્ય વસ્ત્ર છે, માટે તંતુઓ જ ઉપાદાનકારણ તરીકે એકબીજાના સહકારી રહે છે. નિમિત્ત-કારણ તો તુલ્યજાતીય ન હોય તોપણ સહકારી બને છે.

આ ત્રણે ગુણોની પ્રવૃત્તિ પુરુષને ભોગ અને મુક્તિ આપવા માટે જ છે. તેથી ગુણો પુરુષાર્થ–પ્રયુક્ત કહેવાય

છે. પુરુષની સમીપતા હોવાથી ગુણો પુરુષ ઉપર ઉપકાર કરે છે. જેમ લોહચુંબક લોઢાની સમીપતામાં આવવાથી જ લોઢા ઉપર આકર્ષણરૂપ ઉપકાર કરે છે તેમ. આ કારણથી ગુણો પરાર્થ કહેવાય છે. ધર્મ અને અધર્મ આદિ નિમિત્તકારણ કહેવાય છે પણ તે ગુણોની પ્રવૃત્તિનું કારણ નથી. નિમિત્તકારણ તો ગુણોની પ્રવૃત્તિને અટકાવનાર વિઘ્નોને દૂર કરવાનું હોય છે. ઉદાહરણ તરીકે: પાણી એક ક્યારામાંથી બીજા ક્યારામાં પોતાની મેળે જાય છે પણ આડે જે પાળ હોય છે તેને દૂર કરવાનું કામ પાણી વાળનારનું હોય છે. પાણીમાં શકિત ઉત્પન્ન કરવાનું કે પાણીના સ્વભાવને ફેરવવાનું કામ પાણી વાળનારનું હોતું નથી.

એક ગુણને બીજા બે ગુણો મદદ કરનાર જ હોય છે, મુખ્ય ગુણના પરિણામને તોડી નાખવા માટે બીજા બે ગુણો કદીપણ કામ કરતા નથી, આ કારણથી આ ત્રણે ગુણો સદૈવ સંભૂયકારી છે અને ભેગા મળીને કામ કરનાર આ ત્રણ ગુણો જ દૃશ્ય કહેવાય છે. ગુણોનાં પરિણામો જેમ જેમ વધારે સ્થૂલ બને છે તેમ તેમ તે ઇંદ્રિયગ્રાહ્યતામાં સરળ બને છે. પાંચ તન્માત્રા દૃષ્ટિગોચર નથી પણ જ્યારે તે મહાભૂતરૂપે પરિણમે છે ત્યારે દૃષ્ટિગોચર થાય છે. એથી સમજી શકાય છે કે સત્વ, રજ અને તમ અને તેના પરિણામો જ 'દૃશ્ય' કહેવાય છે.

પુરુષ સાથે ગુણોનું વિભાગપૂર્વક અવધારણ ન થવું અથવા અવિભાગપૂર્વક અવધારણ થવું એ જ 'ભોગ' છે.

પુરુષને પોતાના સ્વરૂપનું ગુણોની સાથેના વિભાગપૂર્વક અવધારણ થવું તેનું નામ મોક્ષ છે આ બે જાતના અવધારણ સિવાય ત્રીજું કોઇ દર્શન નથી. અવધારણ એટલે દર્શન. ઉપર બતાવેલાં બે જ દર્શનો છે ત્રીજું કોઈ દર્શન નથી. આવો સાંખ્યશાસ્ત્રના નિષ્ણાતોનો સિદ્ધાંત છે.

ખરી રીતે ભોગ અને અપવર્ગ (મુક્તિ) બુદ્ધિમાં જ છે, પણ તેનો વ્યપદેશ (કથન) પુરુષમાં (આત્મામાં) થાય છે; જેમકે લડનાર તો સૈનિકો હોય છે તેથી ખરો જય અથવા પરાજય તો સૈનિકોમાં હોય છે, છતાં તેનો વ્યપદેશ (વ્યવહાર) રાજામાં થાય છે. અમુક રાજા જીત્યો અથવા અમુક રાજા હાર્યો વગેરે. આમ થવાનું કારણ એ છે કે જય અને પરાજયનું પરિણામ રાજાને જ ભોગવવાનું હોય છે. ભોગ અને અપવર્ગનો વ્યપદેશ પુરુષમાં થવાનું પણ આ જ કારણ છે.

ગ્રહણ, ધારણ, ઊહ, અપોહ, તત્વજ્ઞાન અને અભિનિવેશ વગેરે પણ બુદ્ધિમાં છે. અને પુરુષમાં તો તેનો આરોપ છે, કારણ કે આ બધાનું ફળ પુરુષને જ ભોગવવાનું હોય છે. સાંખ્યશાસ્ત્રના મતમાં પુરુષ જ 'ભોક્તા' છે. ॥ ૧૮ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં 'દૃશ્ય'નું સ્વરૂપ બતાવ્યું. હવે એ દૃશ્યની ચાર અવસ્થાઓ છે તે પણ જાણવી જોઇએ. એ અવસ્થાઓનું બીજું નામ 'પર્વ' છે. આ સૂત્રમાં તે સંપૂર્ણ રીતે સમજાવે છે :

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥

પદાર્થ:– (विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि) (૧) વિશેષ, (૨) અવિશેષ, (૩) લિંગમાત્ર અને (૪) અલિંગ –આ ચાર (गुणपर्वाणि) ગુણોના પર્વ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:– સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ આ ત્રણ ગુણોની ચાર અવસ્થાઓ છે. એ અવસ્થાઓ જ ગુણપર્વ કહેવાય છે. એનાં નામ વિશેષ, અવિશેષ, લિંગમાત્ર અને અલિંગ છે.

આકાશ, વાયુ, અગ્નિ, પાણી અને ભૂમિ આ પાંચ મહાભૂતો અને પાંચ જ્ઞાનેન્દ્રિયો, પાંચ કર્મેન્દ્રિયો તથા મન —આ અગિયાર ઇન્દ્રિયો 'વિશેષ' કહેવાય છે. શબ્દમાત્રા, સ્પર્શતન્માત્રા, રૂપતન્માત્રા, રસતન્માત્રા અને ગંધતન્માત્રા તથા અહંકાર —આ છ અર્થોને 'અવિશેષ' કહે છે. મહત્તત્વરૂપ બુદ્ધિને 'લિંગમાત્ર' કહે છે. મૂળ પ્રકૃતિને 'અલિંગ' કહે છે.

(૧૬) વિશેષો (૬) અવિશેષો, (૧) લિંગમાત્ર અને (૧) અલિંગ. ૧૬ + ૬ + ૧ + ૧ = ૨૪ અવિકાર પ્રકૃતિ કોઈનો વિકાર નથી માટે 'અવિકાર' અને વિકાર મળીને થાય છે.

પ્રકૃતિનો કોઇપણ કારણમાં લય થતો નથી માટે 'અલિંગ' કહેવાય છે. જેનો લય થાય તે 'લિંગ' કહેવાય છે. મહતતત્વ બુદ્ધિનો પ્રકૃતિમાં લય થાય છે માટે તે 'લિંગમાત્ર' કહેવાય છે. અથવા શબ્દાદિનો ભોગ અને વિવેકખ્યાતિરૂપ મોક્ષજનક જ્ઞાનને જણાવનાર હોવાથી 'લિંગમાત્ર' કહેવાય છે. સામાન્ય રીતે લિંગના બે અર્થ ઉપરના લખાણથી જણાય છે. શાંત, ઘોર અને મૂઢ આદિ

લક્ષણોથી રહિત હોવાથી અહંકાર અને પાંચ તન્માત્રાઓને 'અવિશેષ' કહેવામાં આવ્યા છે. શાંત, ઘોર અને મૂઢ આદિ લક્ષણો પાંચ મહાભૂતોમાં અને અગિયાર ઈંદ્રિયોમાં જણાતા હોવાથી તે 'વિશેષ' કહેવાય છે.

સામ્યાવસ્થામાં રહેલા ત્રણ ગુણો કે જેને પ્રકૃતિ કહેવામાં આવે છે તે સામ્યઅવસ્થામાં પુરુષાર્થરૂપ ક્રિયા કરવામાં સમર્થ ન હોવાથી તે વખતે તે 'અસત્' કહેવાય છે. કાર્યજનક સત્તાવાળો જે અર્થ હોય તે જ 'સત્' કહેવાય છે. ગુણો જ્યારે કાર્ય કરતા હોય ત્યારે 'સત્' અને ન કરતા હોય ત્યારે 'અસત્' કહેવાય છે. આ કારણથી તે 'સત્', 'અસત્' પણ કહેવાય છે. ખરી રીતે તો આ ત્રણે ગુણો સત્ છે અને નિત્ય પણ છે. મહત્-તત્વાદિ બધા વિકારો હોવાથી અનિત્ય છે. સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ આ ત્રણને ગુણ એટલા માટે કહેવામાં આવે છે કે તે પુરુષને માટે જ છે. તેઓ પોતાને માટે કશું કરતા નથી પણ આત્માને માટે પ્રવૃત્તિ કરે છે માટે તે આત્માના 'શેષ' છે. જેનો ઉપયોગ બીજાને માટે થાય તે ગુણ અથવા 'શેષ' કહેવાય છે.

૧૬ વિશેષો પછી કોઈ બીજું તત્વ નથી, એટલે કે વિશેષોનો તત્ત્વાન્તર–પરિણામ નથી. એટલે કે તત્વ તરીકે પરિણામ નથી.

પ્રશ્નઃ– શું વિષયોમાં કોઈ પણ પરિણામ નથી ? જો એ પરિણામરહિત હોય તો અપરિણામી કહેવાય અને એ તો શાસ્ત્રની પ્રતિજ્ઞાથી વિરુદ્ધ છે ?

ઉત્તરઃ– વિશેષોમાં બીજી જાતનું પરિણામ છે. ધર્મ, લક્ષણુ અને અવસ્થારૂપ પરિણામ વિશેષોમાં હોય છે. પરિણામ બે જાતનાં છેઃ (૧) તત્વાન્તર પરિણામ અને (૨) ધર્મલક્ષણાવસ્થા પરિણામ. પ્રકૃતિ, મહત્તત્ત્વ, અહંકાર અને પાંચ તન્માત્રાઓમાં 'તત્ત્વાન્તર પરિણામ' હોય છે અને વિશેષોમાં ધર્મલક્ષણાવસ્થા પરિણામ હોય છે. ॥ ૧૯ ॥

દૃશ્ય કોને કહેવામાં આવે છે તે સત્તર અને અઢારમા સૂત્રમાં સમજાવ્યું. હવે આ નિમ્ન સૂત્રમાં દ્રષ્ટાના સ્વરૂપને સમજાવે છેઃ

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

પદાર્થઃ– (द्रष्टा) દ્રષ્ટા = પુરુષ = આત્મા (दृशिमात्रः) કેવળ દૃક્શક્તિ છે, (शुद्धः) તદ્દન શુદ્ધ છે, તેમાં કોઈ ધર્મ વગેરે નથી, ચેતનસ્વરૂપ જ છે (अपि) તોપણુ (प्रत्ययानु-पश्यः) બુદ્ધિમાંથી નીકળતી વૃત્તિઓને કેવળ સંનિધાનથી જુએ છે.

ભાવાર્થઃ– દ્રષ્ટા એટલે આત્મા અથવા પુરુષ. આ દ્રષ્ટા સ્વરૂપ આત્મા કોઈપણ વિશેષણવાળો નથી; જ્ઞાન, ઇચ્છા, ધર્મ, અધર્મ વગેરે મહત્તત્ત્વસ્વરૂપ બુદ્ધિમાં છે અને તે વૃત્તિરૂપે જણાય છે. આ કારણુથી સાંખ્યના મતમાં આત્મા શુદ્ધ કહેવાય છે. બુદ્ધિ સાથે આત્માનું પૂરેપૂરું સાદૃશ્ય નથી તેમ પૂરેપૂરું વૈરૂપ્ય પણુ નથી. બુદ્ધિને કોઈક વિષય કોઈક વખતે જણાયેલો હોય છે અને કોઈક વખત જણાયલો

હોતો નથી, આથી બુદ્ધિ જ્ઞાતાજ્ઞાતવિષયવાળી કહેવાય છે. જ્યારે વિષય જ્ઞાત હોય છે ત્યારે બુદ્ધિ વિષયાકાર હોય છે અને જ્યારે વિષય અજ્ઞાત હોય ત્યારે વિષયાકાર બુદ્ધિ હોતી નથી. બુદ્ધિના વિષયો ગાય, ઘડો, ગિરિ, સમુદ્ર વગેરે હોય છે અને બુદ્ધિની વૃત્તિઓ એવા વિષયોવાળી થાય છે માટે બુદ્ધિ પરિણામિની છે.

આત્માને તો બુદ્ધિની વૃત્તિઓ સદૈવ જ્ઞાત જ હોય છે, આત્મામાંથી કદીપણ વૃત્તિ ઊઠતી નથી તેથી પુરુષ = આત્મા અપરિણામી છે. આથી આત્મા 'સદાજ્ઞાતવિષય' કહેવાય છે. (જુઓ પાદ–૪–સૂત્ર–૧૮મું.)

વળી બુદ્ધિ ત્રિગુણાત્મક હોવાથી પરાર્થ છે એટલે કે પુરુષને માટે જ કામ કરનારી છે, પોતાને માટે કશું જ કરતી નથી. ત્રણે ગુણો સંહત્યકારી અર્થાત્ ભેગા મળી પુરુષને માટે કામ કરનાર હોય છે, તેથી બુદ્ધિ પણ સંહત્યકારિણી છે, કારણ કે તે ત્રિગુણાત્મક છે.

આત્મા ત્રિગુણાત્મક નથી, એ તો માત્ર ઉપદ્રષ્ટા અર્થાત્ સંનિધાનને લીધે દ્રષ્ટા જ હોય છે. આ કારણથી બુદ્ધિ સાથે પુરુષનું સારૂપ્ય નથી એટલે કે બુદ્ધિ સદૃશ પુરુષ નથી.

પ્રશ્નઃ– તોપછી બુદ્ધિથી સંપૂર્ણ રીતે વિરૂપ એટલે જુદો પડતો માનો ?

ઉત્તરઃ– બુદ્ધિથી પૂરેપૂરો વિરૂપ નથી. જોકે પુરુષ સર્વ-વિશેષણોથી રહિત છે અને તેથી તે શુદ્ધ છે, છતાં બુદ્ધિની વૃત્તિઓને તો તે જુએ છે એટલે કે તે વૃત્તિઓથી રંગાય

છે, જેમ વિશુદ્ધ સ્ફટિક મણિ પાસે પડેલા લાલ આદિ રંગવાળા ફૂલોથી પ્રતિબિંબને લીધે રંગાયલો જણાય છે તેમ. આ કારણથી બુદ્ધિની વૃત્તિ જેવો આત્મા છે એમ કહેવાય છે. જેમ આગળ કહેવામાં આવ્યું છે કે– 'वृत्ति-सारूप्यमितरत्र' (૧–૪.) વ્યુત્થાન અવસ્થામાં તથા સંપ્રજ્ઞાત યોગની અવસ્થામાં આત્મા વૃત્તિઓના સારૂપ્યને ધારણ કરે છે. પંચશિખ આદિ આચાર્યો આ વાતનું સમર્થન કરે છે તે આ સૂત્રના વ્યાસભાષ્યમાંથી સમજી શકાય છે.

આત્મામાં જોકે વિશેષણો માનવામાં આવે તો તેમાં આવતા વિશેષણોથી જ અને જતા વિશેષણોથી આત્માની કૂટસ્થતા રહી શકતી નથી. કૂટસ્થતા એટલે સદૈવ એકરૂપતા– કેવળ ચેતન આત્મા. આ સૂત્રથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે આત્મા બુદ્ધિનો પૂરેપૂરો સદૃશ નથી તેમ પૂરેપૂરો અસદૃશ પણ નથી. છતાં એમાં વાસ્તવિક રીતે કોઇ પણ વિશેષણ તો નથી જ. ॥ ૨૦ ॥

આ જ પાદના સૂત્ર અઢાર અને ઓગણીસમાં દૃશ્યનું સ્વરૂપ બતાવ્યું છે અને વીસમા સૂત્રમાં દ્દષ્ટાનું સ્વરૂપ બતાવ્યું છે. હવે દૃશ્ય અને દ્રષ્ટામાં કોણ શેષ છે અને કોણ શેષી છે ? –શેષ એટલે જે બીજાને માટે કામ કરે તે, અને શેષી એટલે જેને માટે કામ કરવામાં આવે છે તે. દાખલા તરીકે, મજૂર શેઠને માટે કામ કરે છે એટલે મજૂર 'શેષ' કહેવાય અને શેઠ 'શેષી' કહેવાય. આ પ્રમાણે દૃશ્ય અને દ્રષ્ટાનો શેષ–શેષિભાવસંબંધ આ સૂત્રમાં બતાવવામાં આવે છે :

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

પદાર્થઃ- (तदर्थः एव) તેના એટલે દ્રષ્ટાના લાભને માટે જ (दृश्यस्य) કારણાત્મક અને કાર્યાત્મક ત્રણ ગુણરૂપ દૃશ્યનું (आत्मा) સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થઃ- દૃશિરૂપ આત્મા અથવા પુરુષના લાભને માટે જ અથવા પુરુષના પ્રયોજનની સિદ્ધિને માટે જ દૃશ્યનું સ્વરૂપ છે. ભાવ એ થયો કે પુરુષને (આત્માને) સુખદુઃખ ભોગવાવવાં અને છેવટે મુક્તિ અપાવવી આ બે પ્રયોજન પૂરાં કરવા માટે દૃશ્ય પ્રવૃત્તિ કર્યા કરે છે. જોકે દૃશ્ય જડ છે છતાં ચેતનરૂપ પુરુષના સંબંધમાં આવતાં જ દૃશ્ય ચેતન જેવું બની જાય છે. એટલે કે બીજાના ચૈતન્યથી જડ દૃશ્ય ચેતન જેવું બની જાય છે અને જે કામ ચેતન કરે તે કામ ચેતન જેવું બનેલું જડ દૃશ્ય પણ કરે.

દાખલા તરીકેઃ- અગ્નિના ગાઢ સંબંધમાં આવીને તપી ગયેલું લાલચોળ લોઢું અગ્નિની માફક બાળવાનું કામ કરે છે અને એ તપેલું લોઢું અગ્નિ જેવું ગણાય છે તેમ. આ રીતે દૃશ્ય (સત્વગુણ રજોગુણ અને તમોગુણ) ચેતનના સંબંધમાં આવી ચેતન જેવા બની જાય છે.

દૃશ્ય જ્યારે તમામ સુખ અને દુઃખ રૂપભોગ પુરુષને ભોગવાવી લે છે અને પછી મુક્તિ પણ અપાવી દે છે ત્યારે પુરુષ આ ત્રણે ગુણોને જોઇ શકતો નથી એટલે ત્રણે ગુણો મુક્ત પુરુષની અપેક્ષાએ દૃશ્ય રહેતા નથી. આનો ભાવ એ ન સમજવો કે પુરુષ મુક્ત થયા પછી ત્રિગુણાત્મક

બુદ્ધિનો અને ત્રણે ગુણોનો નાશ થાય છે. ફક્ત એટલું સમજવું કે મુક્ત પુરુષની અપેક્ષાએ ગુણોમાં દશ્યતા રહેતી નથી, એટલે કે મુક્ત પુરુષનો ભોગ ગુણોમાં તથા તેના કાર્યમાં રહેતો નથી. સ્વ-સત્તાએ મહત્‌તત્વરૂપ બુદ્ધિ અને ગુણો તો કાયમ રહે છે.

પ્રશ્નઃ– સાંખ્યાચાર્યોના મતમાં પ્રકૃતિ અને પુરુષ એ જ તત્ત્વ છે. તેમાં પુરુષ ચેતન છે અને પ્રકૃતિ જડ છે, તો જડ પ્રકૃતિમાં પરોપકાર કરવાનું જ્ઞાન ક્યાંથી આવ્યું ?

ઉત્તરઃ– આ બધું જડ અને ચેતનના સંબંધનું જ કાર્ય છે. સંબંધને લીધે એકબીજાના સંબંધો એકબીજામાં આરોપિત થાય છે. લોઢાના આશ્રયથી અદશ્ય અગ્નિ દશ્ય જેવો થઈ રહે છે અને ઠંડું લોઢું અગ્નિ જેવું થઈ રહે છે. જો અગ્નિને કોઇ આશ્રય ન મળે તો તે દષ્ટિગોચર જ થાય નહિ.

પ્રશ્નઃ– સામાન્ય રીતે ચેતનની વ્યાખ્યા એ છે કે, જેનામાં જ્ઞાન હોય તે. પ્રકૃતિના સત્વગુણમાંથી જ્ઞાન જન્મે છે તો પછી જ્ઞાનવૃત્તિવાળી પ્રકૃતિ ચેતન શામાટે ન કહેવાય ?

ઉત્તરઃ–સાંખ્યાચર્યોને ચેતનની આ વ્યાખ્યા કબૂલ નથી, જેમકે બાળે તે અગ્નિ. તપેલું લોઢું બાળે છે છતાં તે અગ્નિ નથી. તેમ પ્રકૃતિમાં મહતતત્ત્વ બુદ્ધિમાં જ્ઞાનરૂપ વૃત્તિ હોવા છતાં પ્રકૃતિ અથવા બુદ્ધિ જેનું સાંનિધ્ય પામી જ્ઞાનવૃત્તિરૂપે પરિણમે છે તે જ ચેતન છે. પુરુષના સંપર્કમાં

આવી પ્રકૃતિ પરિણામિની થઇ રહી છે માટે પુરુષ ચેતન છે અને પ્રકૃતિ તથા બુદ્ધિરૂપ તેનું મહત્‌તત્ત્વરૂપ કાર્યમાં જ્ઞાન હોવા છતાં તે જડ છે.

પ્રકૃતિ અને પુરુષમાં એક બીજો ભેદ છે તે પણ ધ્યાનમાં રાખવો. પ્રકૃતિ અથવા ગુણો સંહત્યકારી છે જ્યારે પુરુષ સંહત્યકારી નથી. સંહત્યકારી એટલે કાર્ય કરવામાં જેઓને બીજાની જરૂર રહે છે તે. જે સંહત્યકારી હોય તે પદાર્થ જ હોય. જેમકે સુંદર મહેલ બનેલો છે તે એકબીજાની —સીમેંટ, લોઢું અને લાકડાની મદદ લઇ બન્યો છે માટે પરાર્થ છે. પર = આત્મા, એટલે કે તે આત્માના ઉપભોગને માટે છે. મહેલ પોતાના સ્વાર્થ સાધવા માટે ઊભો નથી. આથી સ્પષ્ટ સમજાશે કે દશ્ય દ્રષ્ટાને માટે જ છે અર્થાત્ જડ-ચેતનના ઉપયોગ માટે છે. ॥ ૨૧ ॥

દશ્યનું પ્રયોજન પૂરું થવા છતાં દશ્યનો નાશ કેમ થતો નથી ? એનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં આપે છે :

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ २२ ॥

પદાર્થઃ- (कृतार्थं प्रति) જે પુરુષ મુક્તિ પામ્યો તેના તરફ (नष्टम् अपि) દશ્ય અદશ્યતાને-પામ્યું છતાં (अनष्टम्) નાશ પામ્યું નથી (तदन्यसाधारणत्वात्) મુક્ત પુરુષથી બીજા બદ્ધ પુરુષો પ્રત્યે દ્રશ્ય સાધારણ હોવાથી.

ભાવાર્થઃ- પ્રથમ એ જાણવું જોઈએ કે ચેતન સ્વરૂપ આત્મા એક નથી પણ ઘણા છે, અસંખ્ય છે. વેદાન્ત-

શાસ્ત્રોમાં પણ અનેક આત્માઓ છે એમ કહેવામાં આવ્યું છે. જે કોઈ ઠેકાણે એક જ આત્મા છે એમ કહેવામાં આવ્યું છે તેનો અર્થ એ છે કે આત્મા કૂટસ્થ, વ્યાપક અને અનંત છે, તેથી દેશ, કાળ અને બીજા કારણોથી તેનું માપ કાઢી શકાતું નથી. આત્મત્વ જાતિ ને આત્મા એક છે. अजां ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोग्यमजोऽन्यः ॥ (તૈ. આ. ૬–૧૦) એક અનાદિ આત્મા દશ્યના ભોગ ભોગવે છે જ્યારે બીજો અનાદિ-આત્મા દશ્યને મુક્તિ મળ્યા પછી તેનો ભોગ છોડી દે છે. આ વાક્યથી પણ આત્માઓ અનેક છે એમ સિદ્ધ થાય છે. વળી સુખ-દુઃખ વગેરેની વ્યવસ્થા જોવામાં આવે છે. કોઇ આત્મા સુખી હોય છે તો કોઈ દુઃખી હોય છે, કોઈ જ્ઞાની હોય છે તો કોઈ અજ્ઞાની હોય છે, કોઈ રોગી હોય છે તો કોઈ નીરોગી હોય છે; આ વ્યવસ્થા એવું સૂચવી જાય છે કે આત્મા અસંખ્ય છે, જો એક જ આત્મા હોત તો તેને મુક્તિ અપાવી દશ્ય નાશ પામત અને સંસારનો ઉચ્છેદ ક્યારનોય થઈ ગયો હોત, પણ સંસાર ચાલુ છે, આત્મામાં એક પછી એક મુક્તિ પામતા જાય છે માટે આત્મા અસંખ્ય છે એમ જાણવું જોઇએ. 'નષ્ટ' શબ્દનો અર્થ અદૃષ્ટ થવું એ છે. અભાવને પામવું એવો અર્થ ન કરવો. णश अदर्शने । नश् ધાતુનો અર્થ 'અદર્શન' થાય છે. ભાવ એ થયો કે દ્રશ્યે = બુદ્ધિએ એક આત્માને ભોગ અને અપવર્ગ અપાવ્યા અને આત્માને પ્રકૃતિ તથા આત્માનું વિવેક જ્ઞાન થઇ ગયું અને તે મુક્ત પણ થઈ ગયો, એટલે દશ્યરૂપ બુદ્ધિ બીજા

આત્માઓને મુક્ત કરાવવા પ્રયત્ન ચાલુ જ રાખે છે. દવાખાનામાં એક રોગીને સારો કરી દવાખાનામાંથી છૂટો (મુક્ત) કરવામાં આવે છે તેથી કંઈ દવાખાનું બંધ થઈ જતું નથી. બીજા દર્દીઓને પણ દર્દમુક્ત કરવાનું કામ દવાખાનાને માથે છે. આ દ્રષ્ટાંતથી સમજી શકાશે કે દૃશ્યની પ્રવૃત્તિ તો ચાલુ જ રહે છે. પ્રકૃતિ ધર્મી કહેવાય છે અને તેમાંથી બનતા મહત્ તત્ત્વરૂપ વિકારો તેના ધર્મ કહેવાય છે.

પ્રકૃતિરૂપ ધર્મી અને આત્માનો અનાદિ સંબંધ છે તેમ મહત્તત્ત્વરૂપ ધર્મોનો સંબંધ પણ આત્મા સાથે અનાદિકાળથી છે.

જે આત્માઓ વિવેકજ્ઞાનને પામી મુક્ત થયા છે તે 'કુશલ આત્મા' કહેવાય છે અને જેને વિવેકજ્ઞાન નથી થયું તથા સુખ-દુઃખ ભોગવ્યા કરે છે તે અકુશલ આત્માઓ = બદ્ધ આત્માઓ કહેવાય છે. ॥ ૨૨ ॥

દૃશ્ય તથા દ્રષ્ટાની વ્યાખ્યા કરી આપી હવે સંયોગની વ્યાખ્યા આ નીચેના સૂત્રમાં કરવામાં આવે છે:

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २३ ॥

પદાર્થ:– (स्वस्वामिशक्त्योः) 'સ્વ' એટલે 'દૃશ્ય' અને શક્તિ, સ્વ = ભાવ, દૃશ્ય અને સ્વામી = આત્માની શક્તિઓના (स्वरूपोपलब्धिहेतुः) સ્વરૂપના સાક્ષાત્કારનું જે કારણ છે (संयोगः) તે સંયોગ છે.

ભાવાર્થ:– દશ્ય એ સંવેદ્ય તરીકે છે, એટલે એ જાણવા યોગ્ય છે અને સ્વામી અર્થાત્ આત્મા સંવેદક તરીકે છે એટલે કે તે જાણનાર છે. જાણવા યોગ્ય અને જાણનાર તરીકે રહેલા સત્વ, રજસ્, અને તમસ્ આ ત્રણ ગુણો અને આત્મા –એ બેનાં સ્વરૂપની જાણકારી જેને લીધે થાય છે તે સંયોગ છે. (ભાવ એ છે કે દશ્ય અને દ્રષ્ટાના સ્વરૂપનું જ્ઞાન સંયોગને લીધે જ થાય છે.)

સામાન્ય રીતે સંયોગ એને કહે છે કે જે બે પદાર્થો જુદા જુદા હોય, તેમનું ભેગું થવું. દાખલા તરીકે:– ઝાડ ઉપર ફળ છે, તે કોઇપણ કારણથી ભૂમિ ઉપર પડયું એટલે ફળ અને ભૂમિનો સંયોગ થયો એમ કહેવાય.

બીજો દાખલો:– એક મલ્લ એક તરફ ઊભો છે અને બીજો બીજી તરફ ઊભો છે, હવે તેઓ બંને કુસ્તી કરવા એકબીજાને ભેટે છે ત્યારે કહેવાય છે કે બંનેનો ભેટો થયો અર્થાત્ સંયોગ થયો. આમ જુદા રહેલા અર્થોનું ભેગું થવું તેનું નામ સંયોગ. શાસ્ત્રીય ભાષામાં કહીએ તો અપ્રાપ્ત બે અર્થોની પ્રાપ્તિ થવી તેનું નામ સંયોગ.

પહેલી અપ્રાપ્તિ હોય અને પછી પ્રાપ્તિ થાય તેનું નામ સંયોગ છે. આવો સંયોગ દશ્ય અને દ્રષ્ટામાં સંભવી શકતો નથી, કારણ કે દ્રષ્ટા સાંખ્યશાસ્ત્ર-કારોના મતમાં વ્યાપક અને અનાદિ છે. વ્યાપક અર્થોનો ઉપર બતાવેલી રીત પ્રમાણે સંયોગ થઇ શકે નહી, બન્ને અર્થો હમેશાને માટે મળેલા જ છે.

અનાદિકાળથી એકબીજામાં ઓતપ્રોત છે. પ્રકૃતિ અને પુરુષ દેશભેદે અથવા કાળભેદે કદી પણ જુદા હતા જ નહીં અને અત્યારે પણ નથી, એટલે એ બેનો અપ્રાપ્તિ-પૂર્વક પ્રાપ્તિરૂપ સંયોગ નથી જ. તો પછી આ સૂત્રમાં સંયોગપદથી શું સમજવું ?

આનો ઉત્તર એ છે કે, ભોગ્યનો સ્વભાવ એ સ્વશક્તિ છે અને આત્માનું સ્વરૂપ સ્વામિશક્તિ છે. આ બે શક્તિ-ઓની ઉપલબ્ધિ (ઓળખાણ)નું કારણ એ સંયોગ છે. શરીર, બુદ્ધિ, ઇન્દ્રિય, મન અને વેદના આદિ પણ દશ્ય કહેવાય છે, કારણ કે એ પ્રકૃતિ અથવા પ્રધાનરૂપ દશ્યનાં જ પરિણામો છે. પરિણામનો પરિણામી સાથે અભેદ માની સર્વ દશ્ય જ કહેવાય છે. અપૂર્વ શરીર, બુદ્ધિ, મન, ઇન્દ્રિય અને વેદના આદિ મળવાં એ જન્મ કહેવાય છે. આ જન્મોની પરંપરા અનાદિ હોવા છતાં વ્યક્તિરૂપ જન્મોનો તો આદિ છે. કોઈપણ જન્મ—વ્યક્તિ અનાદિ નથી, માટે એ જન્મનું જે કારણ છે તેનું નામ સંયોગ છે.

ભોક્તા અને ભોગ્યનું જે આ સ્વરૂપ છે તે જ સંયોગ કહેવાય છે. બંનેનું આ સ્વરૂપ અનાદિ છે એટલે એનો સંયોગ પણ અનાદિ છે. સાંખ્યશાસ્ત્રના મતમાં દશ્ય–દ્રષ્ટાના સ્વરૂપ અને સંયોગમાં કશો ભેદ નથી. દશ્યમાં અનાદિ-કાળથી ભોગ્યત્વ છે અને આત્મામાં અનાદિકાળથી ભોક્તૃત્વ છે. અને ભોગ્યત્વ-ભોક્તૃત્વ સ્વરૂપ અનાદિ હોવાથી સંયોગ પણ અનાદિ છે.

પ્રશ્નઃ– સૂત્રમાં શક્તિ શબ્દ શામાટે મૂક્યો છે? स्वस्वामिनोः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः આવું સૂત્ર બનાવ્યું હોત તો શું ન ચાલત?

ઉત્તરઃ– 'शक्ति' શબ્દ મૂકવાની ખાસ જરૂર છે. કારણ કે, પ્રલયકાળમાં ભોગ્યત્વ અને ભોક્તૃત્વ હોતાં નથી પણ એ બંને અર્થો પ્રલયકાળમાં પ્રકૃતિમાં અને આત્મામાં શક્તિરૂપે તો રહે જ છે. એ ભાવ વ્યક્ત કરવા માટે 'શક્તિ' શબ્દ મૂકવાની જરૂર પડી છે. ॥ ૨૩ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં જેને 'સંયોગ' કહ્યો છે તેનું પણ કારણ છે, માટે એ સંયોગના કારણને આ સૂત્રમાં સમજાવે છેઃ

तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

પદાર્થઃ– (तस्य) તેનું (हेतुः) કારણ (अविद्या) અવિદ્યા છે. 'તેનું' આ સર્વનામ સંયોગને માટે વપરાયું છે.

ભાવાર્થઃ– શરીર ભોગ્ય છે અને દશ્ય પણ છે. આત્મા તેનો ભોક્તા છે. આમ દશ્ય અને દ્રષ્ટાનો જે સંયોગ થયો તેનું કારણ અવિદ્યા છે. અવિદ્યા એટલે अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्याति रविद्या ॥ (૨–૫) અનિત્યમાં નિત્યબુદ્ધિ, અપવિત્રમાં પવિત્રબુદ્ધિ, દુઃખમાં સુખબુદ્ધિ અને અનાત્મામાં આત્મબુદ્ધિ રાખવી તે અવિદ્યા કહેવાય છે. આ અવિદ્યાને લીધે જ વારંવાર જન્મ–મરણ થયા કરે છે. આ વર્તમાન જન્મ પહેલાંના જન્મમાં પણ ઉપર કહેલી અવિદ્યા જ કારણરૂપે હતી. આમ સંસાર અનાદિ છે અને જન્મની પરંપરા પણ અનાદિ છે અને તેના કારણ

રૂપે ઉપર જણાવેલી અવિદ્યા પણ અનાદિ છે. પ્રલય કાળમાં પણ અવિદ્યા રહે છે. હરેક બદ્ધ પુરુષની અવિદ્યા પ્રકૃતિમાં બીજ રૂપે રહે છે. જ્યારે સર્જન થાય છે ત્યારે પ્રકૃતિમાંથી મહત્તત્વરૂપ બુદ્ધિ બને છે. આ બુદ્ધિમાં પ્રકૃતિમાં રહેલી અવિદ્યા પણ રહેલી હોય છે અને જે પુરુષની જે જે અવિદ્યાયુકત બુદ્ધિ હોય છે તેને તેનો ફરીથી સંયોગ થાય છે અને તેથી પુરુષ સુખ-દુઃખનો ભોકતા વારંવાર બન્યા કરે છે. આથી સૂત્રમાં જણાવ્યું છે કે સંયોગનું કારણ અવિદ્યા છે. સાંખ્યશાસ્ત્રના મત પ્રમાણે અવિદ્યા ચિત્તનો ધર્મ છે. ચિત્ત અને બુદ્ધિનો એક જ અર્થ છે. સાંખ્યશાસ્ત્રમાં ચિત્તરૂપ કોઇ જુદો અર્થ નથી, બુદ્ધિને જ ચિત્ત કહેવામાં આવે છે. જયાંસુધી મોક્ષ ન મળે ત્યાં-સુધી અવિદ્યા સંસારાવસ્થામાં સ્થૂલરૂપે અને પ્રલયકાળમાં સૂક્ષ્મરૂપે રહે છે જ. આ યોગશાસ્ત્રના ચાર વ્યૂહ બતાવ્યા છે: (૧)-હેય, (૨) હેયનો હેતુ, (૩) હાન અને (૪) હાનનો ઉપાય. એમાંથી પહેલા બે વ્યૂહો અહીં પૂરા થાય છે. ॥૨૪॥

હવે યોગશાસ્ત્રનો ત્રીજો વ્યૂહ, જેને 'હાન' કહેવામાં આવે છે, તેને સમજાવવા નીચે પ્રમાણે સૂત્રની રચના કરે છે:

तद्भावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥

પદાર્થ:– (तद्भावात्) તેના અભાવથી (संयोगाभावः) સંયોગનો અભાવ થાય છે, અને એ જ (हानम्) હાન કહેવાય છે. (तद्) તે હાન (दृशेः) દ્દષ્ટા=પુરુષનું (कैवल्यम्) કૈવલ્ય (મોક્ષ) કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:- અવિદ્યારૂપ અદર્શનનો અભાવ થવાથી બુદ્ધિ અને પુરુષના સંયોગનો પણ અભાવ થાય છે. અભાવ થોડા વખત માટેનો નહીં પણ આત્યંતિક અભાવ થાય છે એટલે સદાને માટે અભાવ થાય છે. આ જ હાન પુરુષનું 'કૈવલ્ય' કહેવાય છે, પુરુષનો મોક્ષ કહેવાય છે. મુક્તિ પામેલા પુરુષને હવે પ્રકૃતિ અને તેના કાર્યમાં આવવું પડશે નહિ. સત્વગુણ, રજોગુણ અને તમોગુણ મુક્ત પુરુષને માટે નિરધિકાર થયા છે. અધિકારથી ભ્રષ્ટ થયેલા ગુણો પુરુષને સુખ-દુઃખમાં નાખી શકશે નહિ. આ આત્યન્તિક હાન પછી પુરુષને શરીર મળવાનું નથી, તેથી પ્રકૃતિમાંથી જન્મતા સુખ-દુઃખો આત્માને ભોગવવા નહીં પડે. અનાદિ કાળથી ચાલતી સંસાર નદી અહીં બંધ પડી જાય છે. દ્રષ્ટા આત્માને પોતાના સ્વરૂપમાં હવે રહેવાનું છે. દુઃખનો સદાને માટે ઉપરમ થવો એ જ પરમપુરુષાર્થ છે. ॥ ૨૫ ॥

હવે ચોથો 'વ્યૂહ' જે હાનનો ઉપાય છે તેને બતાવે છે. 'હાન' એટલે જ મોક્ષ, એવું ઉપરના સૂત્રમાં સ્પષ્ટ સમજાવવામાં આવ્યું છે, હવે એ હાનનો ઉપાય શો છે તે આ સૂત્રમાં સમજાવે છે:

विवेकख्याति रविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

પદાર્થ:- (अविप्लवा) વચ્ચે વચ્ચે મિથ્યાજ્ઞાનની ઉત્પત્તિના સંપર્કથી રહિત (विवेकख्यातिः) પ્રકૃતિ અને પુરુષના ભેદનો સાક્ષાત્કાર થવો એ (हानोपायः) આત્યન્તિક હાનનો અર્થાત્ દુઃખના અભાવનો ઉપાય છે.

ભાવાર્થઃ– વિપ્લવ એટલે અનાદિ મિથ્યાજ્ઞાનની વાસનાથી વિવેકખ્યાતિ અર્થાત્ પ્રકૃતિ અને પુરુષના ભેદ-જ્ઞાનનું અદૃશ્ય થઈ જવું તે. આવા વિપ્લવથી સદાને માટે રહિત થયેલો વિવેક–સાક્ષાત્કાર હાનનો અર્થાત્ આત્યંતિક દુઃખનિવૃત્તિનો ઉપાય છે.

અનાદિકાળથી મિથ્યાજ્ઞાન થતાં આવે છે અને તેથી કરી તેની વાસના = સંસ્કાર પણ અનાદિકાળથી જ છે. મિથ્યાજ્ઞાન થોડા વખતને માટે નાશ પામે છે પણ વાસના નાશ પામતી નથી અને તેને લીધે પાછું મિથ્યાજ્ઞાન થઈ આવે છે. સતત ક્રિયાયોગ અને પરમવૈરાગ્ય દ્વારા આ અનાદિકાળથી ઘર કરી બેઠેલી વાસનાનો પ્રથમ જડમૂળથી નાશ થવો જોઈએ. વાસનારહિત ચિત્ત બળેલા બીજ જેવું હોય છે. એવા ચિત્તમાંથી કદીપણ મિથ્યાજ્ઞાન જન્મતું નથી. એવું ચિત્ત અધિકારશૂન્ય થઈ ગયેલું હોવાથી તેણે તો પોતાની પ્રકૃતિમાં મળી જવાનું રહે છે. એટલે એવું ચિત્ત નાશ જ પામે છે.

આવી દશામાં યોગીને હું પુરુષ છું, પ્રકૃતિ નથી, શરીર પણ નથી, મારો જન્મ પણ નથી કેવળ ચેતન જ છું, આવો કેવળ સત્વવૃત્તિથી જ્ઞાનપ્રકાશ હોય છે. આ પ્રકાશ પણ છેવટે રહેતો નથી કારણ કે સત્વગુણ પણ મુક્ત પુરુષ તરફ નિરધિકાર છે એટલે કે સત્વગુણ મુકત પુરુષને કશો પણ ઉપકાર કરી શકતો નથી. યોગીનું અંતિમ શરીર છૂટયા પછી તે (યોગી) કેવળ ચેતનરૂપે રહે છે. પ્રકૃતિના પ્રભાવથી

નિતાંત દૂર રહે છે. પ્રકૃતિની બધી જ શકિતઓ, પ્રકૃતિના બધાં જ રૂપો મુકત થયેલ પુરુષે જોઇ લીધેલાં હોય છે એટલે પ્રકૃતિ તેના તરફ જઇ શકતી નથી. જવાનું કશું પ્રયોજન પણ નથી.

શંકાઃ– જયારે વિવેકજ્ઞાન જ મુકિતનું સાધન છે તો પછી યોગનું અનુષ્ઠાન શામાટે કરવું ? સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં ચિત્તને એકાગ્ર કરવાનું પ્રયોજન શું ? ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ પણ શા કામનાં ?

ઉત્તરઃ– સંપ્રજ્ઞાત યોગ, ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ આ બધાં વિવેકજ્ઞાનને ઉત્પન્ન કરવામાં ઉપયોગી છે, માટે તેનું અનુષ્ઠાન કરવું જોઇએ.

શંકાઃ– શાસ્ત્ર ભણીને પ્રકૃતિ અને પુરુષના ભેદનું જે જ્ઞાન મેળવ્યું છે એનાથી શું મુકિત ન મળે ?

ઉત્તરઃ– ના, એ તો શ્રવણ થયું કહેવાય, શ્રવણ ઉપર મનન અને નિદિધ્યાસન કરવાં જોઇએ અને એમાં જ ક્રિયાયોગ, સંપ્રજ્ઞાતયોગ, ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિનો ઉપયોગ છે. એનો સંપૂર્ણ ઉપયોગ થયા પછી વિપ્લવ વગરની વિવેકખ્યાતિ–અર્થાત્ વિવેકજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, એ જ પરમસાક્ષાત્કાર છે.

આ પ્રમાણે આત્યંતિક દુઃખનિવૃત્તિ થવાનો જે ઉપાય છે તે જ હાનનો ઉપાય છે, એ જ યોગશાસ્ત્રનો ચોથો વ્યૂહ પણ છે.

શંકાઃ– અવિદ્યા આદિ કલેશોની પરંપરા અનાદિ છે એમ જયારે તમે સ્વીકારો છો, તો પછી અનાદિ ભાવનો

નાશ શી રીતે થઇ શકે? અનુત્પત્તિ ધર્મવાળો કોઇ પણ અર્થ અનિત્ય હોઇ શકે? જો કહો કે, 'હા' તો પછી આત્મા આદિ અનાદિ અર્થોનો નાશ શામાટે ન માનવો? આથી અમને લાગે છે કે, કલેશોની અનાદિ પરંપરાનો નાશ થતો નથી અને પરિણામે આત્યંતિક દુઃખની નિવૃત્તિ પણ થતી નથી અને તેથી મોક્ષ પણ નથી, સદૈવ સંસાર જ છે.

સમાધાનઃ– કલેશોની પરંપરા અનાદિ છે એમ કહેવામાં પણ, કોઇ પણ એકાદ કલેશ વ્યકિત અનાદિ છે એમ તો કહેવામાં આવ્યું નથી. અવિદ્યા આદિ બધા જ કલેશો ખોટા સંકલ્પ કરવાથી ઉત્પન્ન થાય છે. રાગ, દ્વેષ, મોહ વગેરે બધા જ આધ્યાત્મિક ભાવોનું મૂળ કારણ ખોટા સંકલ્પો છે. સ્ત્રીના અથવા પુરુષના શરીર વિષે મિથ્યા સંકલ્પ કરવાથી રાગ ઉત્પન્ન થાય છે, મોહ અને દ્વેષ પણ ઉત્પન્ન થાય છે, પણ જયારે તત્વજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે મિથ્યાસંકલ્પ = ખોટા સંકલ્પ જ ઉત્પન્ન થતા નથી. તત્વજ્ઞાન થવાથી અવિદ્યા આદિ કશું જ મિથ્યાજ્ઞાન રહેતું નથી. વ્યકિતગત રીતે બધા જ ઉત્પન્ન થતા હોય અને નાશ પામતા હોય એવા આધ્યાત્મિક ભાવોની પરંપરા અનાદિ હોય તોપણ તે નાશ પામે છે. પરમાણુ અને સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ એ તો આધ્યાત્મિક ભાવો નથી, એ તો અનાદિ સત્ય બાહ્ય ભાવો છે; વ્યકિતગત રીતે પણ અનાદિ છે માટે એનો નાશ ન માની શકાય, પણ કલેશોની પરંપરાનો નાશ તો તત્વજ્ઞાનથી માનવામાં કોઇ પણ જાતનો દોષ જણાતો નથી. આથી સ્પષ્ટ સમજાશે કે

આત્યંતિક હાન એટલે આત્યંતિક દુઃખની નિવૃત્તિ હોવાની શક્યતા છે અને તેના ઉપાય રૂપે વિવેકખ્યાતિ-રૂપ તત્વજ્ઞાન પણ છે જ. એને પરિણામે આત્મસ્વરૂપ-પ્રતિષ્ઠારૂપ મોક્ષ હોવામાં કોઈ પણ સંશય રહેતો નથી. ॥ ૨૬ ॥

યોગીને જ્યારે વિવેકખ્યાતિ ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તેનો અસંપ્રજ્ઞાત યોગ છેવટની સીમાએ પહોંચી ગયેલો હોય છે અને તે વખતે તેને સાત પ્રકારની યથાર્થ બુદ્ધિ (જ્ઞાન) ઉત્પન્ન થાય છે. આ યથાર્થજ્ઞાનને પ્રજ્ઞા કહેવામાં આવે છે. યોગની છેવટની ભૂમિની આ પ્રજ્ઞા છે એટલે એને 'પ્રાંતભૂમિ પ્રજ્ઞા' કહેવામાં આવે છે. આ બધું આ સૂત્રમાં સમજાવવામાં આવે છે:

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥

પદાર્થઃ– (तस्य) જે યોગીને વિવેકખ્યાતિ ઉત્પન્ન થઇ છે તેને (सप्तधा) સાતપ્રકારની અવસ્થાવાળી અને (प्रान्तभूमिः) છેવટની ભૂમિકાવાળી [प्रज्ञा] યથાર્થ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે.

પદાર્થઃ– યોગ જ્યારે સંપૂર્ણ થાય છે ત્યારે ચિત્ત ઉપરથી બધી જ અશુદ્ધિ દૂર થઇ ગઈ હોય છે અને તે વખતે ચિત્તસત્વ અત્યંત નિર્મલ બની ગયું હોય છે. હવે કોઈ રજોગુણની કે તમોગુણની વૃત્તિ ચિત્તમાંથી ઊઠવાની નથી. સત્વ અને પુરુષના ભેદવાળી વિવેકખ્યાતિરૂપ જ્ઞાન પરમ નિષ્ઠાને અર્થાત્ સ્થિરતાને પામ્યું હોય છે એ વખતે વિવેક-ખ્યાતિના સાત પ્રકાર હોય છે, તેનું પણ યથાર્થજ્ઞાન

યોગીને થઇ ગયેલું હોય છે. એ સાતપ્રકાર આ પ્રમાણે છે:

(૧) યોગી તે વખતે સમજે છે કે, 'હેય'ને સંપૂર્ણ રીતે જાણી લીધું છે, હવે આ હેયનું કશું પણ જાણવા જેવું રહ્યું નથી. હેય એટલે દુઃખ.

(૨) મેં દુઃખના કારણોનો નાશ કરી નાખ્યો છે. બધાં જ દુઃખનાં કારણો ક્ષીણ થઈ ગયા છે, હવે ક્ષીણ કરવા જેવું કશું જ બાકી રહ્યું નથી.

(૩) મેં દુઃખની આત્યંતિક-નિવૃત્તિરૂપ 'હાન'ને પ્રાપ્ત કરી લીધું છે, હવે એના સંબંધમાં કશું જાણવા જેવું કે નિશ્ચય કરવા જેવું રહ્યું નથી.

(૪) હાનનો ઉપાય વિવેકખ્યાતિ હોય છે, તે ઉપાય પણ મેં મેળવી લીધો છે, હવે કોઇ પણ અર્થની ભાવના કરવાની રહી નથી.

—આ ચાર અવસ્થાઓ યોગીએ પ્રયત્ન કરીને મેળવેલી હોય છે તેથી તે 'કાર્ય અવસ્થા' કહેવાય છે. 'કાર્ય વિમુક્તિ' પણ કહેવામાં આવે છે. આ ચાર પ્રકારની 'કાર્ય-વિમુક્તિ' મેળવ્યાની સાથે જ ચિત્તની પણ વિમુક્તિ થઇ જાય છે તેના ત્રણ પ્રકાર છે અને તે આ પ્રમાણે છે :

(૧) મારી બુદ્ધિ અર્થાત ચિત્તસત્વ ચરિતાર્થ થઈ ગઈ છે. તેણે જે કરવાનું હતું તે બધું જ કરી લીધું છે. ભોગ અને મુક્તિ એણે પુરુષને અપાવી દીધાં છે. મારી બુદ્ધિને હવે કાર્ય કરવાનો અધિકાર રહ્યો નથી, હવે તો એ

દાઝી ગયેલા બીના જેવી થઈ રહી છે, એમાંથી હવે કશું જ ઊગવાનું નથી.

(૨) સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ આ ગુણો પણ તેના કારણમાં મળી ગયા છે. પ્રકૃતિમાં લીન થયેલા એ ગુણો ફરીથી મારા માટે પ્રાદુર્ભૂત થવાના નથી, કારણ કે પ્રાદુર્ભાવ પામવાનું કોઈપણ પ્રયોજન રહ્યું નથી.

(૩) આ અવસ્થામાં યોગી જીવનમુક્ત કહેવાય છે આ વર્તમાન દેહ એ એનો છેલ્લો દેહ છે. આ શરીરના પડ્યા પછી પુરુષ ચરમ મુક્તિને પામે છે, એટલે પોતાના ચૈતન્યમય સ્વરૂપને પામી જાય છે, એના ઉપર હવે પ્રધાનની છાયા પણ રહેતી નથી. એ વિમલ, કેવલી પુરુષ કહેવાય છે. ત્રણે ગુણોના સંબંધથી રહિત થયેલો હોવાથી મુક્ત પુરુષ ગુણાતીત કહેવાય છે.

—આ ત્રણને કારણમુક્તિ કહેવાય છે બંને મળી સાત પ્રકારની કાર્યકારણની અવસ્થાવાળી અથવા સાતપ્રકારવાળી 'પ્રાંતભૂમિ પ્રજ્ઞા' કહેવાય છે.

ઉપર પ્રમાણે હેય, હેયનો ઉપાય, હાન અને હાનનો ઉપાય બતાવવામાં આવ્યા છે. એને ચાર પ્રકારનો વ્યૂહ પણ કહેવામાં આવે છે. ॥ ૨૭ ॥

'હાન' નો ઉપાય ઉપર બતાવવામાં આવ્યો છે. એ ઉપાય 'વિવેકખ્યાતિ' જ છે. આ વિવેકખ્યાતિને ઉત્પન્ન કરવાનું સાધન શું છે? વિવેકખ્યાતિ કોઈ અનાદિ-સિદ્ધ અર્થ નથી. એને તો ઉત્પન્ન કરવાની હોય છે જ,

એમ માનવું રહ્યું. તેથી હવે વિવેકખ્યાતિને ઉત્પન્ન કરવાનું સાધન બતાવે છે. વિવેકખ્યાતિને ઉત્પન્ન કરવાનું સાધન યોગનાં અંગોનું અનુષ્ઠાન છે, તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २८ ॥

પદાર્થ:– (योगाङ्गानुष्ठानात्) યોગનાં અંગોનું અનુષ્ઠાન કરવાથી (अशुद्धिक्षये) અશુદ્ધિનો–પાપનો ક્ષય થવાથી (आ विवेकख्यातेः) વિવેકખ્યાતિ ઉત્પન્ન થાય ત્યાં સુધી (ज्ञानदीप्तिः) જ્ઞાનનો પ્રકાશ વધતો રહે છે.

ભાવાર્થ:– યોગના અંગો, યમ નિયમ આદિ આગળ કહેવામાં આવશે. તેનું અનુષ્ઠાન કરવાથી ચિત્ત ઉપરથી અશુદ્ધિ દૂર થતી જાય છે અને વિવેકખ્યાતિની ઉત્પત્તિનો માર્ગ સરળ બનતો જાય છે. છેવટે જ્યારે વિવેકખ્યાતિ ઉત્પન્ન થાય છે એટલે પછી જ્ઞાનના પ્રકાશનો વધારો થતો નથી. કારણ કે, વિવેકખ્યાતિ એ જ્ઞાનના પ્રકાશના વધારાની સીમા છે. પૃથ્વી, પાણી, તેજ, વાયુ આદિ ભૂત ભૌતિક વિષયનું જ્ઞાન વધતું-વધતું આત્મા અને પ્રકૃતિના ભેદ-વિષય સુધી પહોંચી જાય છે. સંપૂર્ણ જડ પદાર્થોનું જ્ઞાન તેના પ્રકાર સાથે થઈ ગયું અને છેવટે મૂળ પ્રકૃતિ અને પુરુષના ભેદનું પણ જ્ઞાન થઈ ગયું, હવે કોઈ પણ વિષય બાકી રહેતો નથી. એટલે વિવેકખ્યાતિ પછી કશું જ જાણવા જેવું રહેતું નથી, માટે વિવેકખ્યાતિની ઉત્પત્તિ સુધી જ જ્ઞાનનો પ્રકાશ વધ્યા કરે છે. અશુદ્ધિનો અર્થ છે મિથ્યા-

જ્ઞાન. એક તરફ મિથ્યાજ્ઞાનનો ક્ષય થતો રહે છે અને બીજી તરફ સત્યજ્ઞાનનો પ્રકાશ વધ્યા કરે છે, આ છે યોગના અંગોને આચરણમાં મૂકવાનું ફળ.

(૧) યોગના અંગોનું અનુષ્ઠાન અશુદ્ધિના વિયોગનું કારણ છે. જેમ લાકડાં ફાડવાનું કારણ કુહાડો છે તેમ.

(૨) વિવેકખ્યાતિને મેળવવાનું કારણ પણ યોગના અંગોનું અનુષ્ઠાન છે. જેમ સુખનું કારણ ધર્મ છે તેમ.

શંકાઃ–શાસ્ત્રમાં બધાં મળી કેટલાં કારણો જણાવ્યાં છે?

ઉત્તરઃ– નવ. જુઓ પ્રમાણ–

उत्पत्तिस्थित्यभिव्यक्तिविकारप्रत्ययाप्तयः ।
वियोगान्यत्वधृतयः कारणं नवधा स्मृतम् ॥

(૧) ઉત્પત્તિનું કારણ (૨) સ્થિતિનું કારણ (૩) અભિ-વ્યક્તિનું કારણ (૪) વિકારનું કારણ (૫) પ્રત્યય (જાણવા)નું કારણ (૬) આપ્તિ (પ્રાપ્તિ)નું કારણ (૭) વિયોગનું કારણ (૮) અન્યત્વ (ભેદ)નું કારણ (૯) ધૃતિ (ધારણ)નું કારણ; –આ નવ કારણો છે. તેની દાખલા સાથે સમજ આ પ્રમાણે છે :

(૧) મનને લીધે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે માટે જ્ઞાનની ઉત્પત્તિનું કારણ મન છે.

(૨) મનની સ્થિતિથી જ ભોગ અને મુક્તિ મેળવાય છે. ભોગ અને મુક્તિ એ પુરુષાર્થ છે, માટે પુરુષાર્થતા એ મનની સ્થિતિનું કારણ છે. જો ભોગ અને મુક્તિ ન હોય તો મનની સ્થિતિ પણ ન હોય. જેમ આહાર કરવો

એ શરીરની સ્થિતિનું કારણ છે તેમ પુરુષાર્થતા મનની સ્થિતિનું કારણ છે.

(૩) સૂર્ય આદિ બહારના તેજસ્વી અર્થોના પ્રકાશને લીધે અંધારામાં પડેલાં પદાર્થોનાં રૂપો અભિવ્યક્ત થાય છે તેથી પ્રકાશ અભિવ્યક્તિનું કારણ છે.

(૪) અગ્નિ ચોખાના અવયવોના કઠણ સંયોગોને ઢીલા કરે છે. આ ઢીલાપણું ચોખાના દાણાનો વિકાર છે. એટલે અગ્નિ પકાવવા યોગ્ય ચોખા વગેરેના વિકારનું કારણ છે.

(૫) ધૂમાડાથી અગ્નિ જાણવામાં આવે છે એટલે કે ધૂમાડાથી અગ્નિનું અનુમાન–જ્ઞાન થાય છે. જ્ઞાનને પ્રત્યય કહે છે. ધૂમાડાના જ્ઞાનથી અગ્નિનું જ્ઞાન થાય છે એટલે અગ્નિના જ્ઞાનનું કારણ ધૂમાડાનું જ્ઞાન છે. આ પ્રમાણે પ્રત્યય = જ્ઞાન પણ કારણ છે.

(૬) યોગના અંગોનું અનુષ્ઠાન કરવાથી વિવેક ખ્યાતિની પ્રાપ્તિ થાય છે, માટે પ્રાપ્તિનું પણ કારણ હોય છે.

(૭) અશુદ્ધિનો વિયોગ પણ યોગના અનુષ્ઠાનને લીધે થાય છે માટે વિયોગનું પણ કારણ હોય છે.

(૮) સોનાને એક સ્થિતિમાંથી (અવસ્થામાંથી) બીજી સ્થિતિમાં લાવનાર સોની પણ કડાં અને વીંટી વગેરે અલંકારના ભેદનું કારણ છે. આથી સમજાશે કે અવસ્થાના ભેદનું પણ કારણ છે.

(૯) ઇંદ્રિયોને ધારણ કરી રાખનાર શરીર છે માટે શરીર ઇંદ્રિયોના ધારણ (ધૃતિ)નું કારણ છે.

આ પ્રમાણે બાહ્ય જગતમાં નવ કારણો છે, તેમ જ શરીરની અંદર પણ નવ કારણો છે તે યોગશાસ્ત્રમાંથી જિજ્ઞાસુ માણસે જાણી લેવાં, અહીં બધું લખવાથી ગ્રંથનો વધારો થઈ જાય છે. ॥ ૨૮ ॥

યોગ એટલે ચિત્તવૃત્તિઓનો નિરોધ. કોઈ પણ એક જ વિષયની વૃત્તિ ચાલુ રહે અને બીજી બધી વૃત્તિઓનો વિરોધ થાય ત્યારે એ ચિત્ત 'સંપ્રજ્ઞાત' યોગને પામ્યું છે એમ કહેવાય. અને બધી જ વૃત્તિઓનો નિરોધ થઇ જાય ત્યારે 'અસંપ્રજ્ઞાત' યોગ કહેવાય છે. આમ બે પ્રકારનો યોગ છે.

આ 'યોગ' જેમાંથી નિષ્પન્ન થય છે તે અંગો કહેવાય છે. આ અંગો કેટલાં છે તેનો નિર્ણય આ સૂત્રમાં કરે છે. મહર્ષિ પાતંજલિ યોગનાં આઠ અંગો માને છે અને તે આ પ્રમાણે–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान-
समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

પદાર્થઃ– (यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान–समाधयः) (૧) યમ (૨) નિયમ (૩) આસન (૪) પ્રાણાયામ (૫) પ્રત્યાહાર (૬) ધારણા (૭) ધ્યાન (૮) અને સમાધિ આ (अष्टौ) આઠ (अङ्गानि) અંગો છે. એટલે કે યોગના અંગો છે.

ભાવાર્થઃ– આઠ કરતાં વધારે ય નથી અને ઓછાં ય નથી, પણ આઠ જ અંગો છે.

શંકાઃ- અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય, શ્રદ્ધા, વીર્ય, સ્મૃતિ, સમાધિ અને પ્રજ્ઞા, પ્રણવનો જપ અને તેના અર્થની ભાવના સતત કરવી તેમ જ મૈત્રી આદિ પરિકર્મો-આ શું યોગનાં અંગો નથી ?

સમાધાનઃ- હા, એ પણ અંગો છે. પણ એ બધાનો આ આઠ અંગોમાં સમાવેશ કરી લેવો. દાખલા તરીકે:- અહિંસા આદિ યમોનું પાલન કર્યા વગર અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરી શકાય નહિ માટે એનો 'યમ'માં સમાવેશ કરવો. એ જ રીતે બીજાનો સમાવેશ કરી લેવો અને આઠ કરતાં વધારે અંગો નથી એમ સમજવું. આમ તો યોગને પ્રાપ્ત કરવા માટે જે જે સાધનો યોગ્ય લાગે તે યોગના અંગો જ છે. આ સૂત્ર અંગોનું નિર્ધારણ અથવા યોગના અંગોની સંખ્યાનો નિશ્ચય કરે છે. ॥ ૨૯ ॥

આઠ અંગોમાંનું પહેલું અંગ 'યમ' છે એનું સ્વરૂપ આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ ३० ॥

પદાર્થ:- (अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः) (૧) અહિંસા (૨) સત્ય (૩) અસ્તેય (૪) બ્રહ્મચર્ય અને (૫) અપરિગ્રહ આ પાંચ 'યમ' કહેવાય છે.

પદાર્થ:- મનને કાબુમાં રાખવું અથવા વિષયોમાંથી મનને ઉપરમ આપવો તેનું નામ યમ છે. यमु उपरमे એ ધાતુ ઉપરથી 'યમ' શબ્દ બને છે.

(૧) અહિંસાઃ– કોઇનો પણ મન, વાણી અને કર્મથી દ્રોહ ન કરવો તેનું નામ અહિંસા છે. આવી અહિંસા પામ્યા વગર યોગી થવાતું નથી. આગળ જે બીજા ચાર યમો કહેવામાં આવશે તેનું મૂળ અહિંસામાં જ રહેલું છે. બધા યમોમાં અહિંસા મુખ્ય અને મહત્ત્વનું અંગ છે. આ અહિંસાને વધારે દીપાવવા અથવા વધારે સુંદર બનાવવા માટે જ બીજા ચાર યમોનો ઉપયોગ છે.

જેમ જેમ યોગી વધારે ને વધારે વ્રતો આદરે છે તેમ તેમ તે ભૂલથી થતાં હિંસાના કારણોથી બચી જાય છે અને અહિંસાને વધારે ને વધારે ઉજ્જવલ બનાવે છે.

(૨) સત્યઃ– વાણી અને મનની યથાર્થતા. જે અર્થ જેવો અનુભવ્યો હોય અથવા જેવા અર્થનું અનુમાન કર્યું હોય તેવા જ અર્થથી વાણી અને મન યુક્ત હોય અને એ જ અર્થનો બીજાને ઉપદેશ આપવો. स्वबोध-संक्रातये वागुक्ता, પોતાનો વિચાર બીજામાં ઉતારવા માટે વાણીનું સર્જન થયેલું છે માટે તે પ્રમાણે બોલવું તે સત્ય કહેવાય છે. પોતાના મનમાં એક અર્થ હોય અને શ્રોતાના મનમાં બીજો અર્થ ઉતારવામાં વાણીનો ઉપયોગ થાય તો તે વાણી વંચિકા અર્થાત્ ઠગારી થાય છે. ઇશ્વરદત્ત વાણીને ઠગારી બનાવનાર માણસ પાપી કહેવાય છે.

વાણીમાં ખોટો અર્થ પણ ન હોવો જોઇએ. એવું પણ ન બોલવું કે જેથી સાંભળનાર કશું સમજી ન શકે. વાણી તો બધાના ઉપકાર માટે પરમેશ્વરે સર્જી છે ન કે

માણસોને દુઃખ આપવા માટે. યુધિષ્ઠિરે દ્રોણાચાર્યને કહ્યું કે 'અશ્વત્થામા' મરી ગયો છે, એમાં યુધિષ્ઠિરના મનમાં તો અશ્વત્થામા નામનો હાથી હતો અને દ્રોણાચાર્યના મનમાં પોતાના પુત્ર અશ્વત્થામાનું અવતરણ થયું. માટે યુધિષ્ઠિરની એ વાણી ખોટી ઠગારી હતી અને તેથી દ્રોણાચાર્યને આઘાત થયો હતો. આવી વાણી ન ઉચ્ચારવી જોઇએ. સર્વપ્રાણીઓનું જેનાથી હિત થાય એવું સત્ય જ બોલવું. આ 'સત્ય' એ બીજો યમ છે.

(૩) અસ્તેયઃ– ચોરી ન કરવી. બલાત્કારથી પારકાના ધનનું હરણ કરવું, છુપી રીતે બીજાના ધનને લઇ લેવું, જૂઠું બોલીને બીજાના ધનનું લેવું, આ બધી ચોરી કહેવાય છે. ચોરી ન કરવી તેનું નામ 'અસ્તેય' છે. વેદમાં પણ કહ્યું છે કે मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ? કોઈના પણ ધનને લઇ લેવાનો વિચાર ન કરવો, લોભ ન રાખવો એ શુભ મનોવૃત્તિનું નામ અસ્તેય છે. એનું નિરંતર પાલન કરવું.

(૪) બ્રહ્મચર્યઃ– ગુપ્ત ઇંદ્રિય ઉપર સંપૂર્ણ કાબુ રાખવો તેનું નામ બ્રહ્મચર્ય છે. મન, વચન અને શરીરથી પૂરેપૂરું બ્રહ્મચર્ય પાળવું, મનમાં ખોટા વિચારો ન આવે તેને માટે પ્રથમ તેના ઉપર સંયમ મેળવવો. વાણીમાં પણ સંયમ મેળવવો જેથી અયોગ્ય ઉચ્ચારણો ન થાય. યોગીએ સ્ત્રીઓના દર્શનની ઇચ્છા ન કરવી. આઠેય પ્રકારના બ્રહ્મચર્યના પાલનમાં ખૂબ પ્રયત્ન કરવો. સ્ત્રીઓનું અયોગ્ય ભાવથી સ્મરણ, કીર્તન, કેલિ, પ્રેક્ષણ, છાનું ભાષણ, સ્ત્રી

માટેનો સંકલ્પ, સ્ત્રી સાથે એકાંતમાં મળવાનો નિશ્ચય અને તેની સાથે કામ વગેરેની સફળતા કરવી, આ આઠેય મૈથુનના અંગો છે, તેનો ત્યાગ કરવો.

(૫) અપરિગ્રહઃ- શરીરનું પોષણ થાય એટલા જ સાધનનો સ્વીકાર કરવો. વધારે સાધનો રાખવાં નહિ. વિલાસનો સંપૂર્ણ રીતે ત્યાગ કરવો. વિષયોને મેળવવામાં, વિષયોનું રક્ષણ કરવામાં હિંસા આદિ દોષ રહ્યા છે, તેનું યોગી થનારે ચોક્કસ ભાન રાખવું અને તેથી વિષયોનો ત્યાગ કરવો. જેમ જેમ ભોગ ભોગવવામાં આવે છે તેમ તેમ રાગ અને આસક્તિ વધે છે. હિંસા કર્યા વગર ઉપભોગ ભોગવી પણ શકાતો નથી. नानुपहत्यभूतान्युपभोगः संभवति । આ કારણથી, યોગીઓએ પરિગ્રહ રાખવો નહિ. પરિગ્રહ એટલે વિષય ભોગવવાનાં સાધનોનો સંગ્રહ કરવો. આ સાધનોનો ત્યાગ કરવો તેનું નામ અપરિગ્રહ છે. આ પાંચ 'યમ' કહેવાય છે અને તે યોગનાં 'અંગ' કહેવાય છે. અંગ વગર અંગી ન મેળવી શકાય, માટે યમોનું પ્રમાદ કર્યા વગર પાલન કરવું જોઇએ. ॥ ૩૦ ॥

હવે પાંચેય યમોમાં જે વિશેષતા છે તેને બતાવે છે:

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥ ३१ ॥

પદાર્થઃ- (जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः) જાતિ, દેશ, કાળ અને સમય આ ચાર યમોના અવચ્છેદ હોય છે, તે અવચ્છેદોથી રહિત જે યમો હોય તે અને (सार्वभौमाः) ક્ષિપ્ત, મૂઢ, વિક્ષિપ્ત, એકાગ્ર અને નિરોધ આ પાંચ ચિત્તની

ભૂમિઓ કહેવાય છે, આ પાંચે ભૂમિઓમાં પાળવામાં આવતા યમો (महाव्रतम्) મહાવ્રત કહેવામાં આવે છે. (જુઓ, ભોજવૃત્તિઃ)

ભાવાર્થઃ– આ યમો જે સંસારી માણસો છે તેઓએ પણ પાળવા જરૂરી છે.

શંકાઃ– માછીમારનો ધંધો જ માછલાં મારવાનો છે, તે અહિંસાનું પાલન કેવી રીતે કરી શકે?

સમાધાનઃ– માછીમાર (જો તેને યોગી થવાની ઈચ્છા ન હોય તો)ને માછલાં માટે અપવાદ છે. આ અપવાદ અવચ્છેદ કહેવાય છે. એટલે કે માછીમારને માછલાં મારવાની છૂટ છે, છતાં હિંસા તો છે જ. પણ માછલાં સિવાય બીજાં પ્રાણીઓને મારવામાં તો તેને હિંસા દોષ વધારે લાગે છે. માછીમારને માછલાં મારવામાં જે અહિંસા છે એમ મનાય છે, તેમાં દેશ 'અવચ્છેદ' છે. જેમકે, 'તીર્થમાં માછલાં ન મારવાં'. કાળ પણ અવચ્છેદ છે. જેમકે, 'ચૌદશને દિવસે માછલાં ન મારવાં, તથા પવિત્ર દિવસે પણ માછલાં ન મારવાં. 'અમુક જાતની શરત' પણ અવચ્છેદ હોય છે, જેમકે દેવ અને બ્રાહ્મણના પ્રયોજન સિવાય ન મારવાં. આ અવચ્છેદોના પાલન સાથે માછીમાર વર્તન કરી શકે છે.

ક્ષત્રિયોએ પણ યુદ્ધમાં હિંસા કરવી, પણ યુદ્ધ સિવાય બીજે ઠેકાણે તો અહિંસાનું જ પાલન કરવું જોઈએ, પણ યોગીએ તો કોઈપણ અવચ્છેદ અર્થાત્ અપવાદ રાખ્યા સિવાય એકાંત અહિંસાનું પાલન કરવું જોઈએ. એવી અપવાદ વગરની અહિંસા મહાવ્રત કહેવાય છે.

સત્ય, અસ્તેય, બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહના આચરણમાં યોગીએ કોઈપણ અપવાદ રાખવો નહીં. તેમણે તો યમોને મહાવ્રત તરીકે જ પાળવા રહ્યા. સંસારી માંસાહારી માણસોને અપવાદ હોય તો ભલે, જેમકે અમુક દિવસે, અમુક જ પ્રયોજનને માટે અને અમુક ઠેકાણે હિંસા કરીશ; બીજા દેશ, કાળ અને પ્રયોજન માટે હિંસા નહીં કરું. ॥ ૩૧ ॥

હવે યોગના બીજા અંગ તરીકે ગણાતા નિયમોના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરે છે :

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ ३२ ॥

પદાર્થ:– (शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि) (૧) શૌચ = શુદ્ધિ (૨) સંતોષ = પ્રામાણિક ઉપાયથી જે મળે તેનો જ ઉપભોગ કરવો, અનીતિને માર્ગેથી લેવાની ઈચ્છા ન કરવી, (૩) તપ = ભૂખ-તરસ, સુખ-દુઃખ વગેરે દ્વંદ્વોનું સહન કરવું, (૪) સ્વાધ્યાય = મોક્ષશાસ્ત્રનું અધ્યયન કરવું અથવા પ્રણવનો જપ કરવો, (૫) ઈશ્વરપ્રણિધાન = સર્વ કર્મોના ફળ પરમાત્માને સમર્પિત કરવાં. (नियमाः) એ નિયમ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:– (૧) શૌચ એટલે શુદ્ધિ. શુદ્ધિ બે પ્રકારની છે : પવિત્ર માટીથી તથા પાણી આદિથી બહારની શુદ્ધિ થાય છે. પવિત્ર આહાર કરવો એ પણ બાહ્ય શુદ્ધિનું કારણ છે. બીજી અંદરની શુદ્ધિ. આ શુદ્ધિ એટલે મનના મેલને ધોઇ નાખવો. ગર્વ, માન, અદેખાઇ રાખવી વગેરે

મનના મેલ ગણાય છે, તેને દૂર કરવાથી આંતરશુદ્ધિ થાય છે. એટલે કે મનની શુદ્ધિ થાય છે.

(૨) સંતોષ = આજીવિકા પૂરતું જ દ્રવ્ય રાખવું, વધારે દ્રવ્યના સંગ્રહ કરવાની ઇચ્છા ન કરવી, પ્રામાણિક પ્રયત્નથી જ જોઇતું દ્રવ્ય મેળવવું અને એમાં જ સંતોષ માનવો.

(૩) તપ = આત્માની શુદ્ધિ માટે સુખ-દુઃખ આવે તેને સહન કરવાં. ભૂખ-તરસ, ટાઢ-તડકો, બેસવું-ઊઠવું, કાષ્ઠ-મૌન અને આકારમૌન. આ બધાં 'દ્વન્દ્વ' કહેવાય છે. તેને મનની શુદ્ધિ માટે સહન કરવાં. કાષ્ઠમૌન એટલે ચેષ્ટા કરીને પણ પોતાનો અભિપ્રાય ન જણાવવો. આકાર-મૌન = માત્ર બોલવું જ નહિ. જરૂર પડે તો લખીને અથવા બીજી ચેષ્ટાથી પોતાનો અભિપ્રાય જણાવવો. શુદ્ધ મનથી ઉપવાસ આદિ વ્રતો પણ કરવાં.

(૪) સ્વાધ્યાય એટલે મોક્ષ અથવા અધ્યાત્મ-શાસ્ત્રોનું અધ્યયન કરવું, તથા અમુક વખત સુધી પ્રણવનો જપ તથા તેના અર્થની ભાવના કર્યા કરવી.

(૫) ઇશ્વરપ્રણિધાન = પરમગુરુ પરમાત્માને બધાં કર્મોનું સમર્પણ કરવું, અને ઈશ્વરનું ચિન્તન કર્યા કરવું.

शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन् वा ।
स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः ॥
संसारबीजक्षयमीक्षमाणः ।
स्यान्नित्ययुक्तोऽमृतभोगभागी ॥

અર્થઃ—શય્યામાં કે આસન ઉપર હોય ત્યારે, માર્ગમાં ચાલ્યો જતો ત્યારે પણ ઈશ્વરધ્યાનપરાયણ

રહેનાર, તથા આત્માના વિચારમાં નિત્ય મગ્ન રહેનાર મોક્ષ મેળવવાને અધિકારી છે. હિંસા, અસત્ય, ચોરી કરવી, મન અને ઇંદ્રિયોને વિષય તરફ વહેતાં મૂકવાં, દ્રવ્ય ભેગું કરવાની ખૂબ ઈચ્છા રાખવી, આ બધા વિતર્કો કહેવાય છે. આ વિતર્કો જેના જડમૂળથી ઊખડી ગયા છે તે યોગી જરૂર મોક્ષ પામી શકે છે. આ નિયમોનું પાલન કરવાથી પોતાના આત્માનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન મેળવાય છે અને પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર પણ કરી શકાય છે. ॥ ૩૨ ॥

સારા કામમાં વિઘ્નો આવે જ છે. એ વિઘ્નો દૂર કરવાં. યોગ એ સારું કામ છે, તેમાં પણ ઘણા વિઘ્નો અણધાર્યાં આવે છે. આ વિઘ્નોને વિતર્ક કહેવામાં આવે છે. જ્યારે આ વિતર્કો મનમાં ઊઠ્યા કરે ત્યારે શું કરવું ? તે આગળના સૂત્રમાં સમજાવે છે.

યમ અને નિયમનું નિરન્તર પાલન કરનાર, યોગ સાધનાર યોગીના મનમાં ખોટા તર્કો ઉત્પન્ન થવાનો સંભવ છે, કારણ કે મન ચંચલ છે. સારા અને નરસા વિચારોની એ જન્મભૂમિ ‘ છે. આ જ કારણથી વેદમાં મન નિત્ય સારા સંકલ્પ કરતું રહે એવી પ્રાર્થના કરવામાં આવી છેઃ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु । (यजुः अ. ३४–१) જાગતા માણસનું મન ઘણું દૂર જાય છે, તે જ પ્રમાણે સૂતેલા માણસનું મન પણ દૂર દૂરના વિચારો કર્યા કરે છે અને તેનું પરિણામ સ્વપ્નોમાં આવે

છે, મનના સંબંધને લીધે બીજી ઇંદ્રિયોમાં પણ પ્રકાશ આવે છે. મન પોતે પણ જ્ઞાનરૂપ પ્રકાશનું સાધન હોવાથી એક પ્રકારનું જ્યોતિસ્વરૂપ છે. આવું મારું મન સારા સંકલ્પ કરનારું થાવ અથવા પરબ્રહ્મ પરમાત્માના વિચાર કરનારું બનો.

આ કારણથી શાસ્ત્રકાર મહર્ષિ પતંજલિ સાધકને ચેતવણી આપે છે કે :

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

પદાર્થઃ– (वितर्कबाधने) વિતર્કો જ્યારે યમ અને નિયમોના આચરણમાં વિચાર દ્વારા વિઘ્નો ઊભાં કરે ત્યારે (प्रतिपक्षभावनम्) વિતર્કોના જે વિરોધી વિચારો હોય તેની ભાવના કરવી. જેથી વિતર્કો ઊઠતા બંધ થશે.

ભાવાર્થઃ– પાંચ યમ અને પાંચ નિયમો ઉપર બતાવવામાં આવ્યા છે. આના વિતર્કો પણ પાંચ અને પાંચ મળી દસ પ્રકારના હોય છે.

(૧) અહિંસાનો વિતર્ક હિંસા, (૨) સત્યનો વિતર્ક અસત્ય, (૩) અસ્તેયનો વિતર્ક સ્તેય = ચોરી કરવી, (૪) બ્રહ્મચર્યનો વિતર્ક અબ્રહ્મચર્ય = વ્યભિચાર, (૫) અપરિગ્રહનો વિતર્ક પરિગ્રહ.

હવે નિયમોના વિતર્ક જુઓ—

(૧) શૌચનો વિતર્ક અશૌચ, (૨) સંતોષનો વિતર્ક અસંતોષ, (૩) 'તપઃ'નો વિતર્ક તપ ન કરવાના વિચારો, (૪) સ્વાધ્યાયનો વિતર્ક વેદનો અભ્યાસ ન કરવો, સંધ્યા

ન કરવી, (૫) ઇશ્વરપ્રણિધાનનો વિતર્ક નાસ્તિકતા—આ બધું ઇશ્વરનું જ છે એવી ભાવના ન કરવી તે. યોગ-ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિ જણાવે છે કે, અહિંસા આદિના વિતર્ક આ પ્રમાણે મનમાં ઊઠે છે:—

(૧) આ માણસે મારો અપકાર કર્યો છે માટે હું એનું હનન કરીશ. બદલો જ્યાં સુધી ન લઉં ત્યાં સુધી હું અમુક પ્રિય વસ્તુનું પણ ગ્રહણ નહિ કરું. સ્વર્ગ મળે તોપણ હું એને ઠોકરે મારીશ. બસ, મારે તો અપકારીની હિંસા કરવી જ છે. આ થયો 'અહિંસા'નો વિતર્ક. યોગીએ આ વિતર્ક તજવો જોઇએ.

(૨) મારા અપકારીનો નાશ કરવામાં ગમે તેટલું જૂઠું બોલીશ. આ થયો 'સત્ય'નો વિતર્ક. આ વિતર્ક પણ ત્યાજ્ય છે.

(૩) જો લાગ મળશે તો એનું ધન પણ લઈશ. એને છેતરી, ભય આપીને પણ એનું ધન લઇશ, એના ધનની ચોરી પણ કરીશ. યોગીને આ થયો 'અસ્તેય'નો વિતર્ક.

(૪) આની સ્ત્રીનું અપહરણ કરીશ અને એની સાથે વ્યભિચાર પણ કરીશ અને અપકારનો બદલો લઇશ. આ થયો 'બ્રહ્મચર્ય'નો વિતર્ક એ ત્યાજ્ય છે.

(૫) અપકારીના ઘરનો અને એની ખેતીવાડીનો પણ હું ધણી થઇ બેસીશ. અને મારા અપકારીને રખડતો

કરી મૂડીશ ત્યારે જ મને શાંતિ થશે. આ 'અપરિગ્રહ'નો વિતર્ક પણ ત્યાજ્ય છે.

–આ પ્રમાણે નિયમોના વિતર્કોને પણ સમજી લેવા. મન, વાણી, અને કર્મથી શુદ્ધિનું પાલન કરનાર સાધકને એનાથી વિરોધી વિચાર ઊઠવો એ શૌચનો વિતર્ક કહેવાય. આ પ્રમાણે સંતોષ, તપ, સ્વાધ્યાય અને ઇશ્વરપ્રણિધાનના વિતર્કો સંબંધે પણ સમજવું. આ બધા વિતર્કો યોગના વિરોધી હોવાથી ત્યાજ્ય છે.

જ્યારે આવા વિતર્કો મનમાં ઊઠવા લાગે અને વિતર્કોને લીધે ક્યાંય પણ શાંતિ ન મળે ત્યારે આ પ્રમાણે વિતર્કોના વિરોધી વિચારો કરવા :—

આ ભયંકર સંસારરૂપી અંગારામાં હું અનાદિકાળથી બળતો–જળતો રહ્યો છું અને એ બળતરામાંથી છૂટવા માટે હું સારા ભાગ્યે યોગને શરણે આવ્યો છું–આ યોગ સર્વ પ્રાણીઓને અભય આપનાર છે. રાત-દિવસ હું એ પવિત્ર યોગનું અનુષ્ઠાન કરી શાંતિ મેળવી રહ્યો છું. તો હવે ફરીથી મારે આવા વિતર્કોને વશ ન થવું જોઇએ. ઓકી કાઢેલા અન્નને કૂતરો ચાટ્યા કરે છે, જો હું દૂર કરેલા વિતર્કોને વશ થાઉં તો હું પણ 'કૂતરો' જ થયો ગણાઉં. પોતાના ઓકેલાનું ચાટણ કરનાર કૂતરા થવું અને ઉત્તમ માનવતા ગુમાવવી એ કોને ગમે ? વિતર્કોને ફરીથી વશ થનાર મારા જેવો અધમ કોણ હોઈ શકે? અર્થાત્ કોઇ નહિ. આમ વિચારી યમ અને નિયમોના પાલનમાં દૃઢ રહી યોગની સાધનામાં મંડ્યા રહેવું જોઇએ. ॥ ૩૩ ॥

હવે શાસ્ત્રકાર વિતર્કોનું સ્વરૂપ, તેના ભેદના પ્રકારો અને તેનું ફળ વગેરે કેવાં છે તે બતાવી તેઓના પ્રતિપક્ષની ભાવના કરવાનું જણાવે છે :

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका,
मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।।३४।।

પદાર્થ:– (हिंसादयः) હિંસા, અસત્ય, સ્તેય, બ્રહ્મચર્યનું પાલન ન કરવું અને પરિગ્રહ રાખવો તે. આ પ્રમાણે નિયમોથી ઊલટા જણાતા અશુદ્ધિ, અસંતોષ રાખવો, તપ ન કરવું, અધ્યાત્મશાસ્ત્રનો અભ્યાસ ન કરવો અને ઈશ્વર ઉપર ભક્તિ ન રાખવી. આ દસ યોગશાસ્ત્રની પરિભાષામાં 'વિતર્કો' કહેવાય છે. (कृतकारितानुमोदिताः) પોતે જાતે કરેલા, બીજાને હિંસા આદિ કરવાનું કહેવું અથવા કરવાની ફરજ પાડવી, તથા બીજાએ જે હિંસા આદિ કર્યા હોય તેનું અનુમોદન કરવું કે, તમે હિંસા કરી તે બહુ સારું કર્યું, આવી જાતના કથનને અનુમોદન કહેવામાં આવે છે. (लोभक्रोधमोहपूर्वकाः) હિંસા આદિ કરવામાં, લોભ, ક્રોધ અને મોહ કારણરૂપે હોય છે. (मृदुमध्याधिमात्राः) મૃદુ, મધ્ય અને અધિમાત્રા આ હિંસા આદિ વિતર્કોની અવસ્થાઓ છે. (दुःखज्ञानानन्तफलाः) આ વિતર્કોનું ફળ દુઃખ, અજ્ઞાન અને સીમા વગરનાં ફળવાળાં હોય છે. (इति) આ પ્રમાણે વિતર્કોને સ્વરૂપે, કારણવાળા તરીકે, અવસ્થાવાળા તરીકે અને પરિણામવાળા તરીકે સમજ્યા પછી (प्रतिपक्षभावनम्) તે વિતર્કોના જે જે વિરોધી વિચારો

હોય તેના તરફ યોગીએ ધ્યાન આપવું અને અહિંસા આદિની ભાવના કરવી.

ભાવાર્થઃ– આ સૂત્રમાં જે 'વિતર્ક' શબ્દ છે તે યોગશાસ્ત્રમાં પારિભાષિક શબ્દ-તરીકે વપરાયો છે એ ધ્યાનમાં રાખવું.

યમ અને નિયમથી જે ઊલટા હોય તે વિતર્કો કહેવાય છે. યમ પાંચ છે અને નિયમ પણ પાંચ છે, એટલે તેના વિરોધી વિતર્કો પણ પાંચ અને પાંચ મળી દસ થાય છે. આ દરેક વિતર્ક એકાશી પ્રકારનો છે.

દાખલા તરીકેઃ— પ્રથમ હિંસા લઇએ. હિંસા કૃત, કારિત અને અનુમોદિત હોય છે, એટલે પ્રથમ તેના ત્રણ ભેદો થયા. આ ત્રણમાંથી દરેક કારણની દૃષ્ટિએ ત્રણ ત્રણ પ્રકારની હોય છે, એટલે નવ પ્રકારની હિંસા થઇ; પછી અવસ્થાની દૃષ્ટિએ એ હિંસા મૃદુ, મધ્ય અને અધિમાત્રાના ભેદે દરેક ત્રણ પ્રકારની થઇ, એટલે સત્તાવીશ ભેદવાળી હિંસા થઈ. આ સત્તાવીશમાંની દરેક પાછી મૃદુ, મધ્ય અને અધિમાત્રાના ભેદે ત્રણ ત્રણ ભેદવાળી થાય છે એટલે ૨૭×૩=૮૧ એકાશી ભેદવાળી હિંસા થાય છે. આ જ રીતે 'અસત્ય બોલવું' એ પણ એકાશીભેદવાળું થાય છે. આમ બધા વિતર્કો એકાશી એકાશી પ્રકારનાં છે. વિતર્કો દસ છે; જેમાં પાંચ યમના અને પાંચ નિયમના ગણાય છે.

કોઇને હિંસા કરવાનું કહેવું એ 'કારિત હિંસા' કહેવાય છે.

'તેં હિંસા કરી એ સારું કર્યું,' એ 'અનુમોદિત હિંસા' કહેવાય છે.

માંસ અને ચામડા આદિના લોભે જે હિંસા થાય છે તે 'લોભમૂલક હિંસા' કહેવાય છે.

ક્રોધથી જે હિંસા થાય છે તે 'ક્રોધમૂલક' હિંસા કહેવાય છે. અને મોહથી અજ્ઞાનથી જે હિંસા થાય છે તે 'મોહમૂલક' હિંસા કહેવાય છે.

આ જ રીતે બીજા વિતર્કોમાં પણ સમજવું. 'આ વિતર્કોમાંથી સીમા વગરનાં દુઃખ અને અજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, એ બધાં કર્તાને ભોગવવાં પડે છે.' આવી રીતે વિતર્કોના પ્રતિપક્ષની ભાવના કરવી, જેથી યોગી વિતર્કોમાં ન પડી પોતાના યોગના પાલનમાં જ તન્મય રહે.

સૂત્રકારે 'लोभक्रोधमोहपूर्वकाः' આ પદમાં લોભને પ્રથમ સ્થાન આપી લોભ બધાનું કારણ છે એમ સૂચવ્યું છે, તોપણ આ ત્રણે કારણોમાં 'મોહ' જ સૌથી વધારે બલિષ્ઠ છે. બધા જ ક્લેશોનું મૂળ મોહ છે. મોહ એટલે અનાત્મામાં આત્માનો અભિમાન રાખવો તે, અજ્ઞાન અથવા અવિદ્યા. અજ્ઞાન હોય તો જ લોભ થાય છે અને ક્રોધ પણ અજ્ઞાનને લીધે જ થાય છે, માટે મોહ બધા વિતર્કોનું કારણ છે એમ સમજવું.

हिंसादयः = આ પદ વિતર્કોના સ્વરૂપને બતાવે છે.

कृतकारितानुमोदिताः = આ પદ વિતર્કોના પ્રકાર અથવા વિશેષણોને બતાવે છે.

मृदुमध्याधिमात्राः = આ પદ વિતર્કોની અવસ્થાને બતાવે છે.

दुःखाज्ञानानन्तफलाः = આ પદ વિતર્કોના ભાવિફળને સૂચવે છે. ફળની ભાવના કરવી એ જ વિપક્ષની ભાવના છે.

દુઃખ એ રજોગુણનું પરિણામ છે. 'ક્રોધ' કર્તવ્ય અને અકર્તવ્યને નહીં સમજવા દેનાર, શરીરમાં અને ઇંદ્રિયોમાં દાહ ઉત્પન્ન કરનાર એક પ્રકારની "ચિત્તની વૃત્તિ" છે. યોગીએ આ વિતર્કોથી દૂર રહેવા સાવધાન રહેવું જોઈએ. ॥ ૩૪ ॥

જેમ જેમ યમ અને નિયમોનું અનુષ્ઠાન આગળ ને આગળ વધતું જાય છે, તેમ તેમ તેની પાછળ તેમની સિદ્ધિઓ પણ થતી રહે છે. આ સિદ્ધિઓ શી છે? તે ક્રમથી હવે આવનારાં સૂત્રોમાં સમજાવે છે. પ્રથમ અહિંસા પૂર્ણ રીતે પાળવામાં આવી હોય અને તે અવિચલ દશાને પામી હોય, ત્યારે જે સિદ્ધિ યોગીને મળે છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥

પદાર્થ:– (अहिंसाप्रतिष्ठायाम्) અહિંસા સ્થિર થયા પછી (तत्संनिधौ) તે યોગીના સંનિધાનમાં (वैरत्यागः) વૈરનો ત્યાગ થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ:– યોગી જ્યારે અહિંસાના પાલનમાં પૂરેપૂરો સફળ થઈ જાય છે, રાત અને દિવસ મન, વચન અને

શરીરથી અહિંસાની જ યોગી ભાવના કર્યા કરે છે, તેને સ્વપ્નમાં પણ હિંસા કરવાની ઇચ્છા ન થાય, અપકારી ઉપર પણ હિંસા કરવાનું મન ન થાય, ત્યારે સમજવું કે યોગીની અહિંસા સ્થિર થઇ છે. અહિંસાની એની ભાવના ચરમ સીમાએ પહોંચી ગઇ છે. અહિંસામાં સિદ્ધ થયેલા આવા યોગીની સમીપમાં કોઇનામાં પણ વૈરની વૃત્તિ રહેતી નથી. આવા યોગીઓની આસપાસ એવું અહિંસાત્મક વાતાવરણ ઉત્પન્ન થાય છે કે એમાં જે કોઇ દાખલ થાય છે તેની વૈરવૃત્તિ નાશ પામે છે. સાપ અને નોળિયો પણ એકબીજા ઉપર વૈર વૃત્તિ છોડી દે છે. આ વાતાવરણમાં બિલાડીને પણ ઉંદરને મારવાનું મન થતું નથી. સિંહ કે વાઘને પણ હરણને મારવાની ઇચ્છા થતી નથી, બીજાં પ્રાણીઓમાં વૈરવૃત્તિ શમી જાય છે. તો પછી યોગીની પોતાની વૈરવૃત્તિ સદાને માટે શમી જાય એમાં તો કહેવાનું જ શું હોય ! આ છે અહિંસાની પ્રતિષ્ઠાનું અસાધારણ બળ. ॥ ૩૫ ॥

હવે સત્યરૂપ યમના પરિપૂર્ણ પાલનનું ફળ બતાવે છે:

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

પદાર્થ:– (सत्यप्रतिष्ठायाम्) સત્યની પ્રતિષ્ઠા થયા પછી (क्रियाफलाश्रयत्वम्) વેદમાં કર્તવ્ય અને અકર્તવ્ય સમજાવવામાં આવ્યાં છે અને કર્તવ્ય–કર્મની આજ્ઞા પણ આપી છે. આ કર્તવ્યરૂપ ક્રિયાનું ફળ સ્વર્ગ આદિ સુખ હોય છે. આવી વિહિત ક્રિયાના ફળનો આશ્રય ચિત્ત માત્ર યોગીના કહેવાથી બની જાય છે.

ભાવાર્થ:– જ્યારે યોગી સત્યની ચરમ સીમાએ પહોંચે છે ત્યારે, એને વચનની સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે. સુખ પામવું એ સારાં કર્મનું ફળ છે. યોગીની દયાના પાત્ર થયેલ માણસ સારી ક્રિયાના ફળરૂપ સુખ યોગીના કહેવાથી પામે છે. યજ્ઞ આદિ પવિત્ર કર્મ કરવાથી સ્વર્ગ (સુખવિશેષ) મળે છે, પણ યોગી જો કોઈ યોગ્ય માણસને કહે કે તને સ્વર્ગ (સુખવિશેષ) મળશે તો તે સુખરૂપ ફળ તેને જરૂર મળે છે, પછી તેણે સ્થૂલ યજ્ઞ કર્યો હોય કે ન કર્યો હોય.

જો કોઈ અધર્મના કારણથી પીડાતો હોય અને જો તે સિદ્ધિને પામેલા યોગી પાસે ગયો હોય અને તેની દયાને પાત્ર બન્યો હોય તો તે યોગીનો ઉપદેશ સાંભળી ધાર્મિક બની જાય છે, તેનો અધર્મ દૂર થઈ જાય છે. આ છે સત્યની પ્રતિષ્ઠાનું ફળ.

ઘણી વખત લોકો કહ્યા કરે છે કે અમુક મહાત્મા મુક્ત થયા હશે કે નહિ ? જો તે પૂર્ણ યોગી હતા, તો તે જરૂર મુક્તિ પામ્યા હોવા જોઈએ. આવી શંકાનું સમાધાન આ બે સૂત્રો ઉપર મનન કરવાથી મળી રહેશે.

આ છે સત્યરૂપ બીજા 'યમ' ની સિદ્ધિ. ॥ ૩૬ ॥

અસ્તેયના અભ્યાસથી યોગીને જે ફળ મળે છે તે આ સૂત્રમાં સમજાવે છે:

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

પદાર્થ:– (अस्तेयप्रतिष्ठायाम्) અસ્તેય (ચોરી ન કરવી તે) ની પ્રતિષ્ઠાને પામ્યા પછી યોગીને (सर्वरत्नोपस्थानम्) બધાં રત્નોની પ્રાપ્તિ થાય છે.

ભાવાર્થ:– યોગી જ્યારે અસ્તેયની એટલે કે બીજાના ધનનું અપહરણ ન કરવું એવી ભાવના કર્યા કરે છે અને જ્યારે તેમાં તે પૂરેપૂરો સફલ થાય છે ત્યારે તેને બધાં રત્નો મળી રહે છે. યોગી જ્યારે બીજાના ધનનું અપહરણ નથી કરતો અને તેને લગતી રાત-દિવસ ભાવના કર્યા જ કરે છે અને છેવટે તે સર્વકોઈ અભિલાષાથી રહિત થઈ જાય છે, કોઈ પણ વસ્તુને ભોગવવાની ઈચ્છાથી મુક્ત થઈ જાય છે. લોભ કે તૃષ્ણાનું મૂળ પણ એ યોગીમાં ન રહે ત્યારે તેની પાસે બધી દિશામાંથી બધી જ જાતનાં રત્નો તણાઈ આવે છે. છતાં યોગી તો અભિલાષાથી રહિત જ રહે છે. એ રત્નોનો ઉપભોગ કરવાનું મન થતું નથી. આ સંસારમાં મારું કશું જ નથી, શરીર પણ મારું નથી એને પણ છેવટે છોડી દેવું પડે છે, તો એ સિદ્ધ થયું કે બધું જ ધન પારકાનું છે, મારે પારકાના ધનનું અપહરણ નથી કરવું, આવી ભાવનાવાળા યોગીને સર્વ રત્નો મળે એમાં નવાઈ શી ?

આ છે અસ્તેય રૂપ ત્રીજા 'યમ' ની સિદ્ધિ. ॥ ૩૭ ॥

હવે 'બ્રહ્મચર્ય'ના અભ્યાસનું ફળ બતાવે છે :

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ ३८ ॥

પદાર્થ:– (ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायाम्) બ્રહ્મચર્યના પાલનની

જ્યારે પરાકાષ્ઠા થઈ જાય છે ત્યારે (वीर्यलाभः) શરીર, ઇંદ્રિય અને મનમાં સંપૂર્ણ બળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

ભાવાર્થઃ- આ સૂત્રમાં બ્રહ્મચર્યનો અર્થ વીર્યનું શરીરમાં રોકાવું એ થાય છે. બ્રહ્મચર્યના સંપૂર્ણ પાલનથી સાત્વિક ગુણોની ઉન્નતિ થાય છે. આ સાત્વિક ગુણોની ઉન્નતિને કોઈ પણ પ્રલોભનો રોકી શકતાં નથી. આ ગુણોની અસીમ ઉન્નતિથી યોગી સિદ્ધ થાય છે. પોતાના શિષ્યોમાં અને શ્રોતાઓમાં જ્ઞાન ઉત્પન્ન કરી શકે છે. શરીર, ઇંદ્રિય અને મનમાં નિરતિશય સામર્થ્યને ધારણ કરે છે. સંસારમાં એનો કોઇ પણ પરાભવ કરી શકતું નથી. એનો ઉપદેશ જનતામાં પુષ્કળ અસર કરે છે. કોઈ પણ પદાર્થ એનાથી અજ્ઞાત રહી શકતો નથી. વિવેકશક્તિ તો પરમ સીમાએ પહોંચે છે. મન, વચન અને શરીરમાં અપ્રતિમ બળ આવે છે. આ બળથી જ યોગી આત્મા અને પરમાત્માને જાણી શકે છે. ઉપનિષદમાં પણ કહ્યું છે કે- नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। (મુંડક-ઉપનિષદ, મુંડક ૩, મંત્ર ૪.) આ આત્માનું જ્ઞાન જે બલહીન છે તેને થતું નથી. નિરતિશય બ્રહ્મચર્યનું ફળ અમોઘ છે. આ પ્રમાણે બ્રહ્મચર્યરૂપ ચોથા યમની સિદ્ધિ બતાવવામાં આવી છે. ॥ ૩૮ ॥

હવે 'અપરિગ્રહ' રૂપ પાંચમા 'યમની' સિદ્ધિ બતાવે છે:

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासम्बोधः ॥ ३९ ॥

પદાર્થઃ- (अपरिग्रहस्थैर्ये) અપરિગ્રહની સ્થિરતા થવાથી (जन्मकथंतासंबोधः) ગયેલા જન્મમાં તથા બીજા વીતી

ગયેલા જન્મમાં હું કોણ હતો, કેવો હતો વગેરેનું જ્ઞાન થાય છે. ભવિષ્યમાં હું કોણ અને કેવો હોઇશ એનું પણ જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થ:– નવાં શરીર, ઇન્દ્રિયો અને મનનો સંબંધ થવો તેનું નામ જન્મ છે. ગત જન્મ તથા તેની પહેલાંના જન્મનો બોધ અપરિગ્રહનું પાલન કરવાથી થાય છે. ગયા જન્મમાં હું કોણ હતો ? મનુષ્ય હતો કે કોઇ બીજા પ્રાણી રૂપે હતો, તેનું સત્ય જ્ઞાન થાય છે અને તેથી તેની તે સંબંધી જિજ્ઞાસા શાંત થાય છે. આ જન્મમાં પણ હું કેવળ પૃથ્વી આદિ ભૂતોનો સમુદાય છું કે કોઈ બીજો છું ? તેનું પણ યથાર્થ જ્ઞાન થાય છે. મર્યા પછી હું ક્યાં જઇશ અને કેવા સ્વરૂપમાં હોઇશ, કેવા શરીરવાળો હોઈશ વગેરેનું સત્ય જ્ઞાન થાય છે. ભૂતકાળ એ પૂર્વ સીમા કહેવાય છે, ભવિષ્યકાળ પર (પછીની) સીમા કહેવાય છે અને ભૂત અને ભવિષ્યની વચ્ચે વર્તમાન સમય કહેવાય છે. આ ત્રણે માર્ગની જિજ્ઞાસા અપરિગ્રહના પૂરેપૂરા પાલનથી શાંત થાય છે.

कथम् इत्यस्य भावः = कथंता = કેવું હોવું તેનું નામ કથંતા છે. જન્મોની કથંતા એટલે જન્મો કેવા થઇ ગયા, કેવા થશે વગેરેનું જ્ઞાન.

કેવળ જીવનનાં સાધનોને ન વસાવવા આટલો જ અર્થ પરિગ્રહનો નથી. અરે આ શરીર પણ ‘પરિગ્રહ’ જ છે કારણ કે શરીર પણ સુખ-દુઃખરૂપ ભોગનું સાધન

છે. શરીર હોવાને કારણે જ બહિર્મુખ પ્રવૃત્તિ થાય છે અને તેથી આત્મા આદિનો તાત્ત્વિક બોધ થતો નથી. માટે શરીર ઉપર પણ આસક્તિ ન રાખવી, શરીર મારું નથી એમ માની તેનાથી યોગીએ મધ્યસ્થ બની જવું જોઇએ. આથી રાગદ્વેષ આદિ દોષો સંપૂર્ણપણે નાશ પામી જશે અને પછી આત્માનો અને પરમાત્માનો વિશુદ્ધ સાક્ષાત્કાર થઈ જશે. પ્રકૃતિના સ્વરૂપનું પણ જ્ઞાન થઈ જશે એટલે એમાં કશું પણ પોતાને જાણવા જેવું રહ્યું નથી એવું યોગીને યથાર્થજ્ઞાન થઇ જશે એટલે યોગી અશરીરી બની જઇ પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિર થઇ જશે. પછી શરીર મરણ આવે ત્યાંસુધી રહેશે તોપણ તે જીવનમુક્ત થઈ રહેશે. આવો યોગી જ સાચો ઉપદેશક છે, એનાથી કોઇને પણ ભય નથી, એ કોઇને પણ પોતે નહીં અનુભવેલા અર્થનો ઉપદેશ આપતો નથી. આ છે 'અપરિગ્રહ' નો ઉચ્ચતમ મહિમા. વેદ પણ એ જ બતાવે છે કે कस्य-स्विद् धनम् આ ધન કોનું છે ? શરીર આદિ સંપૂર્ણ જગત 'ત્યક્ત' છે, મારાથી તજાયેલું જ છે, પરમાત્માનું જ છે, –એમ સમજી તેનો ઉપભોગ પરમાત્માને સાક્ષી તરીકે રાખી કરો. મમતાનો ત્યાગ કરો.

આ પ્રમાણે અપરિગ્રહરૂપ પાંચમા યમની સિદ્ધિ શાસ્ત્રકારે બતાવી છે. ॥ ૩૯ ॥

હવે શૌચ, સંતોષ, તપઃ, સ્વાધ્યાય અને ઇશ્વરપ્રણિધાનરૂપ નિયમોની સિદ્ધિઓ બતાવે છે. તેમાંથી શૌચરૂપ પહેલા નિયમની સિદ્ધિ શી છે ? તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

પદાર્થ:–(शौचात्) શુદ્ધિના પાલનથી (स्वाङ्गजुगुप्सा) પોતાના શરીરના અંગો ઉપર ઘૃણા=સૂગ ઉત્પન્ન થાય છે (परैः) તેથી બીજાના શરીરના અંગોનો (असंसर्गः) સંબંધ થઈ શકતો નથી.

ભાવાર્થ:– પ્રથમ એ જાણવું જોઇએ કે શૌચ અર્થાત્ શુદ્ધિ બે પ્રકારની છે : (૧) બાહ્યશુદ્ધિ અને (૨) અંદરની શુદ્ધિ.

પ્રથમ બહારની શુદ્ધિની ભાવના યોગી કરે છે. શરીરનાં કારણ શું છે? એનું સ્વરૂપ શું છે? એ ક્યાંથી ઉત્પન્ન થાય છે? આના ઉત્તરરૂપે જાણવામાં આવે છે કે શરીરનું સ્થાન 'મા'ના ઉદરમાં મળમૂત્રવાળું છે. રજ અને વીર્ય-માંથી શરીરની ઉત્પત્તિ છે એટલે એ એનાં કારણ છે. ખાધેલા પદાર્થોના રસને લીધે એ પોષણ પામી વધે છે. સદૈવ તેમાંથી મળ, મૂત્ર અને પરસેવો વહ્યા કરે છે. એમાંથી જ્યારે ચેતન નીકળી જાય છે ત્યારે તે મડદું બની રહે છે અને તેના સ્પર્શથી બીજા પદાર્થો પણ અપવિત્ર બને છે. આવા શરીરની પાણી આદિથી કેટલી શુદ્ધિ થઇ શકશે? કૃત્રિમ શુદ્ધિ કેટલી વાર ટકે છે? વગેરે શરીર સંબંધી અંદર અને બહારની ભાવના કરવાથી યોગીને પોતાનાં શરીરનાં બધાં જ અંગો ઉપર સૂગ ઉત્પન્ન થાય છે. જ્યારે પોતાના જ શરીર તરફ સૂગ ઉત્પન્ન થાય તો પછી, બીજાના શરીરનાં અંગો ઉપર સૂગ ઉત્પન્ન થાય તેમાં તો

નવાઇ શી ? આથી યોગી જાણી શકે છે કે શરીર અશુચિ (અપવિત્ર) છે. બહારના સાધનોથી પવિત્ર કરવા માગે તોપણ છેવટે તો તે અપવિત્ર જ બની રહે છે. માટે શરીરમાં વધારે પડતો આગ્રહ રાખવો ન ઘટે. હું શરીર છું, ગૌર છું, સુંદર દેખાવવાળો છું, આવી ભાવનાથી દૂર રહેવું જોઈએ આવી યથાર્થ ભાવના કરવાથી યોગીને શરીરનું અભિમાન રહેતું નથી. જેને પોતાના શરીરનું આકર્ષણ ન રહે તેને બીજાના કૃત્રિમ દેખાવવાળા શરીર ઉપર આકર્ષણ ન જ રહે એ સ્વાભાવિક છે. આવી ભાવનાથી યોગી જિતેન્દ્રિય રહી શકે છે. અધ્યાત્મદર્શી વિદ્વાન લોકો શરીરના સંબંધમાં કહી ગયા છે કે:

नवच्छिद्रकृता देहा स्रवन्ति घटिका इव ।
बाह्यशौचैर्नशुध्यन्ति नान्तःशौचं तु विद्यते ॥

અર્થ:- શરીરોમાં નવ છિદ્રો છે અને તે કાણાંવાળી દોણીઓની માફક ઝર્યા કરે છે. બહારના ઉપાયથી એ શુદ્ધ થઇ શકતાં નથી અને અંદરથી પણ એ શુદ્ધ નથી.

स्वदेहाशुचिगन्धेन न विरज्येत यः पुमान् ॥
विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते ? ॥

અર્થ:- પોતાના શરીરના અપવિત્ર ગંધથી જે માણસને શરીર તરફ વૈરાગ્ય નથી આવતો તેને બીજું કયું વૈરાગ્યનું કારણ બતાવવું ? આ છે અંતર અને બાહ્ય શૌચની ભાવના અને એનું ફળ છે બીજાના શરીર તરફ આકર્ષણ ન પામવું. આને પરિણામે યોગી જિતેન્દ્રિય રહી શકે છે. ॥ ૪૦ ॥

શૌચ (શુદ્ધિ)ની ભાવનાનાં બીજાં ફળો પણ આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥

પદાર્થ:– (च) અને (सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि) સત્વની શુદ્ધિ, સૌમનસ્ય, એકાગ્રતા, ઇંદ્રિયજય અને આત્માના દર્શનની યોગ્યતા શુદ્ધિની ભાવનાથી ઉત્પન્ન થાય છે.

ભાવાર્થ:– સત્વશુદ્ધિ= ચિત્તમાં રજોગુણ અને તમોગુણનું ન હોવું તે. સૌમનસ્ય= મનમાં સદૈવ પ્રસન્નતા અને યોગસાધનામાં પ્રીતિ હોવી તે. ઐકાગ્ર્ય= ચિત્તની એકાગ્રતા સ્થિર રહેવી તે. ઈન્દ્રિયજય= વિષય તરફ સદૈવ દોડતી રહેતી ઇન્દ્રિયોનું આત્મામાં સ્થિર થઈને રહેવું તે. આત્મદર્શનયોગ્યત્વ=વિવેકખ્યાતિરૂપ આત્મદર્શનની ક્ષમતા હોવી તે.

આ બતાવવામાં આવેલાં પાંચેય ફળો શુદ્ધિની ભાવના કરવાથી ઉત્પન્ન થાય છે એટલે કે તે 'નિયમ'પાલનનાં ફળ છે. ॥ ૪૧ ॥

હવે સંતોષરૂપ બીજા નિયમનું ફળ બતાવે છે :

संतोषादनुत्तमः सुखलाभः ॥ ४२ ॥

પદાર્થ:– (संतोषात्) સંતોષના અભ્યાસથી (अनुत्तमः) સર્વોત્તમ (सुखलाभः) સુખનો લાભ થાય છે.

ભાવાર્થ:– યોગી જ્યારે સંતોષના પરમ પ્રકર્ષને પામે છે ત્યારે તેને સત્વગુણનો પરમ ઉત્કર્ષ થાય છે તેથી તેને

નિરતિશય સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે. શાસ્ત્રોમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે–

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत् सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशी कलाम् ॥

અર્થ:– વિષયજન્ય જે સાંસારિક સુખ છે અને જે દિવ્ય સુખ છે તે તૃષ્ણાના ક્ષયથી ઉત્પન્ન થતા સુખની સોળમી કળા બરાબર નથી. તૃષ્ણાક્ષય એટલે જ સંતોષ.

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यताम् ।
तां तृष्णां संत्यजन् प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्यते ॥

અર્થ:– દુર્બુદ્ધિ લોકો જેને છોડી શકતા નથી, માણસ ઘરડો થાય પણ જે ઘરડી થતી નથી, તે તૃષ્ણાને ત્યજનાર ડાહ્યો માણસ આધ્યાત્મિક સુખથી સંપૂર્ણ સુખી થાય છે. આ છે સંતોષરૂપ 'નિયમ'ની સિદ્ધિ. ॥ ૪૨ ॥

હવે 'તપ'ની સિદ્ધિ બતાવે છે. નિયમોના અનુક્રમમાં 'તપ'નું ત્રીજું સ્થાન આવે છે:

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः ॥ ४३ ॥

પદાર્થ:– (अशुद्धिक्षयात्) આવરણ દૂર થવાથી (कायेन्द्रियसिद्धिः) શરીર અને ઇન્દ્રિયમાં જે સિદ્ધિ થાય છે તે (तपसः) તપની સિદ્ધિ છે.

ભાવાર્થ:– તપનો અભ્યાસ કરવાથી તપ ઉત્તમ કોટિને પામે છે અને તેને લીધે ચિત્ત ઉપર જે તમોગુણ અને રજોગુણનું આવરણ પડ્યું હોય છે, તે દૂર થાય છે, ત્યારે આકાશગમનરૂપ શરીરની સિદ્ધિ તથા અણિમા, મહિમા

વગેરે સિદ્ધિઓ શરીરને પ્રાપ્ત થાય છે, ઇન્દ્રિયોને પણ સિદ્ધિઓ મળે છે. આવાં સિદ્ધિવાળાં શરીર અને ઇંદ્રિયોને પામી યોગી યથેષ્ટ વિહાર આદિ કરી શકે છે.

શરીરને હલકું અને ભારે બનાવવું એ શરીરસિદ્ધિ કહેવાય છે.

ગમે તેટલે દૂર શબ્દ થતો હોય તોપણ યોગી તે સાંભળી શકે છે. પૃથ્વીમાં ગમે ત્યાં પદાર્થ છુપાયો હોય તોપણ યોગી જોઈ શકે છે. આ યોગીની ઇંદ્રિય–સિદ્ધિ કહેવાય છે.

તપ એટલે ઇશ્વરનું પ્રણિધાન અથવા સંપ્રજ્ઞાત યોગ. તપથી અવિદ્યાદિ ક્લેશો પણ ક્ષીણ થાય છે. ॥ ૪૩ ॥

હવે ચોથો નિયમ જે 'સ્વાધ્યાય' બતાવવામાં આવ્યો છે તેની સિદ્ધિ આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ ४४ ॥

પદાર્થ:– (स्वाध्यायात) સ્વાધ્યાય = અભિપ્રેત મંત્રના જપની પરાકાષ્ઠાથી (इष्टदेवतासंप्रयोगः) ઈષ્ટ દેવતાનો સમાગમ થાય છે.

ભાવાર્થ:– જોકે, સ્વાધ્યાય શબ્દનો અર્થ જાતે ભણવું એવો થાય છે. શાસ્ત્રોનું અધ્યયન કરવું એ પણ 'સ્વાધ્યાય'નો અર્થ છે, કેવળ 'વેદ'ને પણ સ્વાધ્યાય તરીકે વિદ્વાનોએ સ્વીકાર્યો છે, આમ છતાં આ ઠેકાણે તો યોગી જે દેવતાનો અનુગ્રહ મેળવવા ઇચ્છે છે તે દેવતાનો મંત્ર જ સ્વધ્યાય તરીકે લેવો યોગ્ય છે. શાસ્ત્રાધ્યયન વગેરેમાં પ્રમાણવૃત્તિનો

નિરોધ સંભવી શકે નહિ, ઊલટું એ અભ્યાસમાં તો પ્રમાણવૃત્તિને ખૂબ વેગ આપવાની જરૂર હોય છે. યોગ તો પ્રમાણવૃત્તિના નિરોધ વગર શક્ય જ નથી. આ કારણથી મંત્રનો જપ જ 'સ્વાધ્યાય' પદથી લેવો. આ મંત્ર ગાયત્રી હોવો એ જ શક્ય છે અથવા કેવળ 'પ્રણવ' નો જપ કરવો એ શક્ય સમજો. જ્યારે મંત્રનો જપ અને તેના અર્થની ભાવના સાથે સ્થિર થાય છે ત્યારે યોગીને ઇષ્ટ દેવતાના દર્શન થાય છે. યોગીઓ યોગીઓને જ મળે છે. દેવતા એટલે માનવતાથી ઉચ્ચકોટિમાં પહોંચેલા આત્માઓ. આ પણ યોગીઓને મળે છે. કારણ કે યોગીનો પ્રયત્ન એને મેળવવા માટે હોય છે. દેવતા અને સિદ્ધ થયેલા યોગીઓની મદદથી યોગની સાધના કરનાર યુંજાન યોગી સમસ્ત ચિત્તવૃત્તિના 'નિરોધ'રૂપ યોગને મેળવી શકે છે, માટે યોગ ભાષ્યમાં શ્રી વ્યાસ દેવે લખ્યું છે કે,

देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्ये चास्य वर्तन्ते ।

દેવ, ઋષિ અને સિદ્ધ લોકો સ્વાધ્યાયશીલ યોગીને મળે છે અને આ યોગીના કાર્યમાં મદદ કરે છે. ભાવાર્થ એ છે કે દેવ, ઋષિ અને સિદ્ધ લોકોનો મેળાપ થવો એ મંત્રના જપની સિદ્ધિ છે.

દેવ, ઋષિ અને સિદ્ધ લોકો આ જ જગતમાં છે. માનવતાની ઉચ્ચ કોટિમાં તેઓ પહોંચેલા હોય છે; પણ જેઓ એના મેળાપને માટે પ્રયત્ન નથી કરતા, તેને તેઓ

મળતા નથી. જેમ આત્મા શરીરમાં જ છે પણ આત્માની શોધ નહીં કરનારને આત્મા મળી શકતો નથી તેમ. ॥૪૪॥

હવે પાંચમો 'નિયમ' જે ઇશ્વરપ્રણિધાન છે, તેની સિદ્ધિ બતાવે છે :

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

પદાર્થ:– (ईश्वरप्रणिधानात्) ઈશ્વર ઉપરની અવિચલ ભક્તિથી (समाधिसिद्धिः) સમાધિની સિદ્ધિ થાય છે.

ભાવાર્થ:– પ્રણિધાન એટલે ઇશ્વરભક્તિ. ઈશ્વર ઉપર અત્યંત શ્રદ્ધાપૂર્વક નિશ્ચલ ભક્તિ રાખવાથી સમાધિ જલદી પ્રાપ્ત થાય છે. સમાધિ મેળવવામાં કોઈ પણ જાતનું વિઘ્ન આવતું નથી. યમ અને નિયમો પાળવાથી ભક્તિને બળ મળે છે. યોગનાં આઠ અંગો છે તેમાં સમાધિ પણ એક અંગ છે અને તે અંતિમ અંગ છે; તેથી અસંપ્રજ્ઞાત યોગનું એ અંતરંગ સાધન ગણાય છે. ભક્તિ વગર યોગના બધાં જ અંગો નિર્બલ રહે છે માટે ભક્તિ તરફ ઉપેક્ષા કરવી નહિ. બધાં કર્મોનાં ફળ ઈશ્વરને સમર્પિત કરવાં અને પ્રેમથી પ્રભુનું સ્મરણ કર્યા કરવું એ ઇશ્વરભક્તિ છે. આ ભક્તિ જ્યારે ખૂબ વધે છે અને યમાદિના પાલન પુષ્ટ થાય છે ત્યારે યોગના છેલ્લા અંગરૂપ સમાધિ યોગીને પ્રાપ્ત થાય છે. આ સમાધિના પ્રભાવથી યોગી પોતાનું જે અભીષ્ટ હોય તે મેળવી શકે છે, જાણી શકે છે. દૂર દેશમાં, દૂરના કાળમાં અને વર્તમાન શરીર સિવાય બીજા શરીરમાં અભીષ્ટ હોય તોપણ યોગી તેને જાણી

શકે છે. સમાધિસંપન્ન થયેલા યોગીની પ્રજ્ઞામાં જરા પણ ભૂલ હોતી નથી, સાચો આપ્ત અને સાચો ઉપદેષ્ટા સમાધિવાળો યોગી જ હોઈ શકે છે. ॥ ૪૫ ॥

આ પ્રમાણે સિદ્ધિ સાથે યમ અને નિયમો બતાવ્યા છે. હવે યોગનું ત્રીજું અંગ જે 'આસન' છે તેને સમજાવવા નીચે પ્રમાણે સૂત્રનો ઉપન્યાસ કરે છે :

स्थिरसुखमासनम् ॥ ૪૬ ॥

પદાર્થઃ– (स्थिरसुखम्) જેનાથી લાંબા સમય સુધી સુખપૂર્વક બેસી શકાય (आसनम्) તે આસન યોગાભ્યાસ અથવા સમાધિ માટે પસંદ કરવું.

ભાવાર્થઃ– આસનો ઘણા પ્રકારના હોય છે. ભાષ્યકાર શ્રી વ્યાસદેવે તેમાંના થોડાંઘણાં નામો પોતાના ભાષ્યમાં આપ્યાં છે તે આ પ્રમાણે છેઃ પદ્માસન, ભદ્રાસન, સ્વસ્તિકાસન, દંડાસન, સોપાશ્રય-આસન, પર્યંકાસન, ક્રૌંચ-નિષદન–આસન, હસ્તિપદાસન, ઉષ્ટ્રનિષદન–આસન, સમ-સંસ્થાન–આસન, સ્થિરસુખ–આસન વગેરે.

આ બધાં આસનોમાંથી પોતાને જે ઠીક પડે તે આસન સ્વીકારવું, પણ એટલું ધ્યાનમાં રાખવું કે આસન સારી રીતે સુખ આપનાર હોવું જોઈએ. જો આસન લાંબા કાળ સુધી સુખદાયક હશે તો જ સમાધિ થઇ શકશે.

આ આસનોની વ્યાખ્યા કરવાથી બરાબર સમજ નહીં પડે, માટે આસનોનો જે ચિત્રપટ આવે છે તે જોવો, અથવા આસન કરી જાણનાર પાસેથી આસન શીખી લેવું. ॥૪૬॥

હવે આસનની સ્થિરતાનો ઉપાય બતાવે છે:

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

પદાર્થ:- (प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्) સ્વાભાવિક પ્રયત્નની શિથિલતા કરવાથી તથા અનન્તસ્વરૂપ પરમાત્મામાં ચિત્તને પરોવવાથી આસન સિદ્ધ થાય છે. આ સૂત્રમાં 'भवति' ક્રિયાપદ અધ્યાહાર્ય છે.

ભાવાર્થ:- શરીર જયારથી ઉત્પન્ન થયું છે ત્યારથી જીવનના કારણસ્વરૂપ પ્રયત્ન પણ ઉત્પન્ન થયો છે. આ પ્રયત્નથી શરીરની બધી જ ક્રિયાઓ સતત ઉત્પન્ન થાય છે. હાલવું, ચાલવું, બેસવું, શરીરમાં કંપ થવો, લોહીનું ફરવું, હૃદય અને ફેફસાંની ગતિ રહેવી, વગેરે ક્રિયાઓ સ્વાભાવિક પ્રયત્નથી થાય છે, પણ આસનની સ્થિરતા આ સ્વાભાવિક પ્રયત્નથી થતી નથી ઊલટું સ્વાભાવિક પ્રયત્ન તો આસનની સ્થિરતાનો વિરોધી છે. દાખલા તરીકે:-માણસ સંધ્યા કરવા બેઠો હોય તો તે સ્વાભાવિક પ્રયત્નથી આસ-પાસ જોયા કરે છે. આંખ મીંચી દીધી હોય તો સ્વાભાવિક પ્રયત્નથી આંખ ઊઘડી જાય છે, કંઈક બોલી પણ જવાય છે, વગેરે. આ કારણથી સ્વાભાવિક પ્રયત્નને શિથિલ કરવો જોઈએ. જો આ પ્રયત્ન મંદ પડી જાય તો શારીરિક ચેષ્ટાઓ પણ બંધ થઈ જાય અને આસનમાં સ્થિરતા આવે.

હવે આસનની સ્થિરતા થવાથી તેનું ફળ બતાવે છે:

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

પદાર્થ:- (ततः) આસન સ્થિર થવાથી (द्वन्द्वानभिघातः) ટાઢ-તડકો વગેરે દ્વંદ્વોથી યોગી હેરાન થતો નથી.

ભાવાર્થ:- આસન ઉપર પૂર્ણ કાબૂ આવી જવાથી યોગીને શરીરનું અભિમાન રહેતું નથી તેથી ટાઢ-તડકો, ભૂખ-તરસ, ભૌતિક સુખ અને દુઃખ વગેરેની અસર પણ શરીર અને મન ઉપર રહેતી નથી. આ અસર ન રહેવાથી યોગી શાંતિથી યોગનો અભ્યાસ કરી શકે છે. આ કારણથી યોગના અંગોમાં આસનનું મહત્વ છે. ॥ ૪૮ ॥

હવે યોગના ચોથા અંગરૂપ પ્રાણાયામનું લક્ષણ બાંધી સમજાવે છે :

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ ४९ ॥

પદાર્થ:- (तस्मिन् सति) આસન સ્થિર થયા પછી (श्वासप्रश्वासयोः) શ્વાસ અને પ્રશ્વાસ એટલે બહારના વાયુને નાકવાટે અંદર લેવો તે શ્વાસ અને કોઠાના વાયુને નાકવાટે બહાર કાઢવો તે પ્રશ્વાસ, આ બંને શ્વાસ અને પ્રશ્વાસની (गतिविच्छेदः) ગતિનો વિચ્છેદ એટલે અભાવ કરવો (प्राणायामः) એનું નામ પ્રાણાયામ છે.

ભાવાર્થ:- પ્રથમ એ ધ્યાનમાં રાખવું કે 'આસન' એ યોગના બીજા અંગોની માફક યોગનું અંગ નથી, પણ એ તો પ્રાણાયામને જ ઉપયોગી હોવાથી યોગનું અંગ ગૌણ દૃષ્ટિએ માનવામાં આવ્યું છે.

સામાન્ય રૂપે તો ગતિનો વિચ્છેદ કરવો (ગતિનો અભાવ કરવો) એ જ પ્રાણાયામનું સામાન્ય લક્ષણ બને છે. શંકા એ ઉત્પન્ન થાય છે કે, કોની ગતિનો અભાવ કરવો ? આનો ઉત્તર એ છે કે શ્વાસ અને પ્રશ્વાસની ગતિનો અભાવ કરવો.

શ્વાસઃ- બહારના વાયુને નાકવાટે શરીરની અંદર લેવો તેનું નામ શ્વાસ.

પ્રશ્વાસઃ- કોઠાના વાયુને નાકવાટે બહાર કાઢવો તેનું નામ પ્રશ્વાસ.

—આ બંનેની ગતિનો અભાવ કરવો તેનું નામ પ્રાણાયામ છે.

રેચક, પૂરક અને કુંભક આ ત્રણેમાં ગતિનો અભાવ છે જ. (જો શ્વાસ-પ્રશ્વાસ ચાલુ રહે તો તે પ્રાણાયામ ન કહેવાય.) બહારના વાયુને અંદર લઇ પછી ત્યાં જ તેનું ધારણ કરવું એનું નામ 'પૂરક' છે; એને ધારણ કરવામાં ગતિનો અભાવ છે જ.

કોઠાના વાયુને બહાર કાઢી બહાર જ તેને રોકી રાખવો તેમાં પણ વાયુની ગતિનો અભાવ છે જ. 'કુંભક'માં પણ વાયુની ગતિનો અભાવ છે જ.

આથી સ્પષ્ટ થાય છે કે શ્વાસ અને પ્રશ્વાસની ગતિનો અભાવ કરવો એ પ્રાણાયામનું લક્ષણ છે. ॥ ૪૯ ॥

શંકાઃ- પ્રાણ + આયામ = પ્રાણાયામ. આ રીતે જોતાં 'प्राणस्य आयामः' પ્રાણના આયામને પ્રાણાયામ કહેવાય છે. 'આયામ' શબ્દનો અર્થ લંબાણ થાય છે, અભાવ નહિ. વ્યુત્પત્તિની દૃષ્ટિએ પ્રાણના લંબાણને 'પ્રાણાયામ' કહી શકાય, તો પછી ભાષ્યકારોએ ગતિના અભાવને પ્રાણાયામ કહ્યો તેનું કારણ શું છે?

ઉત્તરઃ– શ્વાસ અને પ્રશ્વાસની ગતિને રોકવાથી પરિણામે પ્રાણનું લંબાણ થાય છે. દાખલા તરીકે : રેચક પ્રાણાયામમાં નાકથી બાર આંગળ સુધી પ્રાણનું લંબાણ હોય છે, પછી ધીરે ધીરે ચોવીસ આંગળ અને છેવટે છત્રીસ આંગળ સુધી લંબાણ થાય છે. આ લંબાણને માટે નિત્ય અભ્યાસ કરવો પડે છે અને તેની અંદર પ્રશ્વાસની ગતિને રોકવી પડે છે. આ દષ્ટિએ જોતાં પ્રાણાયામ અને શ્વાસ-પ્રશ્વાસની ગતિના વિચ્છેદનો કાર્યકારણભાવસંબંધ છે. તેથી ભાષ્યકારો સૂત્રકારથી વિરુદ્ધ જતા નથી. ॥ ૪૯ ॥

હવે પ્રાણાયામના ભેદો બતાવે છે :

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्ति र्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो
दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥

પદાર્થઃ– (बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिः) (૧) બાહ્યવૃત્તિ (૨) આભ્યન્તરવૃત્તિ (૩) સ્તમ્ભવૃત્તિ –આ નામવાળા ત્રણ પ્રાણાયામ છે. ભાષ્યકારો તેને રેચક, પૂરક અને કુંભક નામથી જણાવે છે. (देशकालसंख्याभिः) દેશ, કાળ અને સંખ્યાથી (परिदृष्टः) માપવામાં આવેલો (दीर्घसूक्ष्मः) લાંબો અને ખૂબ પાતળો પ્રાણાયામ થાય છે.

ભાવાર્થઃ– પ્રથમ પ્રાણાયામના ત્રણ ભાગ પડે છે.

બાહ્યવૃત્તિ = અંદરના વાયુને નાક વાટે બહાર કાઢી તેની ગતિનો અભાવ કરવો તે બાહ્યવૃત્તિ પ્રાણાયામ કહેવાય છે. અન્ય આચાર્યો તેને 'રેચક પ્રાણાયામ' કહે છે. વિધારક પ્રયત્નથી વાયુની ગતિનો અભાવ થાય છે.

આભ્યન્તરવૃત્તિ = નાક વાટે શ્વાસને અંદર લઇ જઇ તેની ગતિનો વિધારક પ્રયત્નથી અભાવ કરવો તેનું નામ આભ્યન્તરવૃત્તિ પ્રાણાયામ છે. અન્ય આચાર્યો એને 'પૂરક' પ્રાણાયામ કહે છે.

સ્તમ્ભવૃત્તિ = શ્વાસ અને પ્રશ્વાસની ગતિનો એક જ વખત વિધારક પ્રયત્નથી અભાવ કરવો તેનું નામ 'સ્તમ્ભવૃત્તિ' પ્રાણાયામ છે. અન્ય આચાર્યો આને 'કુંભક' પ્રાણાયામ કહે છે. આ પ્રમાણે 'રેચક' 'પૂરક' અને 'કુંભક' ત્રણ પ્રાણાયામો થાય છે. આ ત્રણેમાંનો દરેક પ્રાણાયામ બીજી રીતે ત્રણ ત્રણ પ્રકારનો બને છે તે આ પ્રમાણે :—

બાહ્યવૃત્તિ (રેચક) પ્રાણાયામ-(૧) દેશથી મપાયેલો હોવો જોઇએ. આ પ્રાણાયામનો નાસિકાથી કેટલો વિસ્તાર છે ? નાસિકાથી બાર આંગળ લાંબો હોવો એ સામાન્ય છે, ચોવીસ આંગળ મધ્યમ છે અને છત્રીસ આંગળ હોવો એ ઉત્તમ છે. નિત્ય અભ્યાસ કરવાથી પ્રાણનું લંબાણ ધીમે ધીમે વધતું જાય છે. નાકથી બાર આંગળ દૂર રૂનું પૂમડું મૂકવું, આ જગ્યા બહારના વાયુથી રહિત હોવી જોઇએ. જો પૂમડું હાલતું માલુમ પડે તો સમજવું કે 'રેચક' પ્રાણાયામ બાર આંગળ લંબાઇમાં છે અને તે પહોળાઇમાં પાતળો બનેલો છે. એટલે કે દીર્ઘસૂક્ષ્મ છે. આ જ પ્રમાણે ચોવીસ અને છત્રીસ આંગળનું માપ કાઢવું. આ પ્રમાણે દેશથી પ્રાણાયામનું માપ કાઢી શકાય છે.

પ્રશ્ન:– આભ્યન્તર (પૂરક) પ્રાણયામનું માપ કેવી રીતે કાઢવું ? કારણ કે એ પ્રાણ તો શરીરની અંદર હોય છે.

ઉત્તરઃ– શરીરમાં શ્વાસરૂપ પ્રાણ શરીરના પગથી માથા સુધીના બધા ભાગોમાં પથરાય છે. વાયુમાં સ્પર્શ નામનો ગુણ છે. શરીરની અંદર ફેલાયેલા વાયુનો સ્પર્શ પણ જાણી શકાય છે. જેમ શરીર ઉપર ફરતી કીડીનો સ્પર્શ જાણી શકાય છે તેમ. અંદર પણ વાયુના બારીક સ્પર્શથી જાણવું જોઇએ કે વાયુ પગ સુધી છે અને ઉપર પણ શરીરના અમુક ભાગ સુધી પહોંચ્યો છે કે નહિ? એકાગ્ર ચિત્તવાળો યોગી અંદરના સ્પર્શને પણ જાણી શકે છે. આ પ્રમાણે અંદર અને બહાર લાંબો થઇ પથરાયેલો પ્રાણવાયુ માપી શકાય છે. આ પ્રમાણે 'દેશપરિદૃષ્ટ' (દેશથી મપાયેલો) પ્રાણાયામ કહેવાય છે.

ક્ષણોથી પણ માપ કાઢી શકાય છે. ક્ષણ એટલે સૂક્ષ્મ કાળ. કેટલા ક્ષણો સુધી રેચક (વાયુ) બહાર રહી શકે છે તથા કેટલા ક્ષણો સુધી પૂરક (વાયુ) અંદર રહી શકે છે તેનું માપ કાઢવું આને કાલપરિદૃષ્ટ (કાળથી મપાયેલો પ્રાણાયામ) કહેવાય છે.

સંખ્યાથી = માત્રાઓથી પ્રાણની લંબાઇ માપી શકાય છે. માત્રા પણ અમુક ટૂંકા સમયનું નામ છે. આ પ્રમાણે રેચક અને પૂરક પ્રાણાયામ દેશથી, કાળથી અને સંખ્યાથી (માત્રાઓથી) માપી શકાય છે, માટે તેના માપ સાથે રેચક અને પૂરક પ્રાણાયામ કરવા.

ભાવાર્થ એ છે કે યોગી બનનારને દેશ, કાળ અને સંખ્યાથી મપાયેલા રેચક અને પૂરકરૂપ પ્રાણાયામનું જ્ઞાન

હોવું જોઇએ. કેટલા શ્વાસ લીધા કેટલા પ્રશ્વાસ કાઢ્યા વગેરે સંખ્યાથી પણ પ્રાણાયામને માપવો જોઇએ.

સ્તમ્ભવૃત્તિ = કુંભક પ્રાણાયામઃ- વિધારક પ્રયત્નથી શ્વાસ અને પ્રશ્વાસની ગતિનો એકદમ અભાવ કરી દેવો, તે કુંભક પ્રાણાયામ છે. જેમ ખૂબ લાલચોળ તપાવેલા લોઢા ઉપર પડેલું પાણીનું ટીપું ચારે તરફથી સંકોચ પામે છે, તેમ કુંભક પ્રાણાયામમાં શરીરની અંદર જ વાયુ સંકોચ પામે છે અને ખૂબ જ પાતળો બની જાય છે, અને લાંબો થાય છે. એટલે કે તે દીર્ઘસૂક્ષ્મ થાય છે. આ પ્રાણાયામનું પણ ઉપર બતાવેલી રીતોથી માપ કાઢવું જોઇએ.

યોગી નિરંતર અભ્યાસ કરી એક દિવસ સુધી પ્રાણને લંબાવી શકે છે, પખવાડિયા સુધી અને મહિના સુધી પણ લંબાવી શકે છે.

દરેક પ્રાણાયામમાં ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । આ પ્રમાણે ગાયત્રીનો જપ અને તેના અર્થની ભાવના ચાલુ રાખવાં જેથી મન નવરું ન પડે.

પ્રાણાયામ કરવાથી મન કાબુમાં આવી જાય છે, તેની ચંચલતા દૂર થઇ જાય છે. મન ઉપર કાબુ આવ્યા પછી ઇંદ્રિયો ઉપર પણ સહેલાઇથી કાબુ આવી જાય છે. આ પ્રાણાયામના દરરોજના અભ્યાસથી માણસ જિતેન્દ્રિય બને છે અને તમામ જાતનાં વ્યસનોથી મુક્ત રહે છે અને આરોગ્યવાન્ રહે છે. સાંસારિક માણસોએ પણ આ પ્રાણા-

યામ કરવા જ જોઇએ. આટલા માટે જ સંધ્યામાં પ્રાણાયામનું સ્થાન છે. યોગી બનવું કે ન બનવું એ જુદી વાત છે પણ સાત્વિક વૃત્તિવાળા બનવા માટે માણસને પ્રાણાયામની જરૂર છે. ઇંદ્રિયોના દોષો (મળો) પ્રાણાયામરૂપ અગ્નિથી બળી જાય છે. ॥ ૫૦ ॥

એકંદરે પ્રાણાયામ ચાર હોય છે. તેમાં ત્રણ પ્રાણાયામોને ઉપરનાં સૂત્રમાં સમજાવવામાં આવ્યા છે. હવે ચોથો પ્રાણાયામ સમજાવવામાં આવે છે. ચોથા પ્રાણાયામને 'તુરીય પ્રાણાયામ' પણ કહેવામાં આવે છે. ચોથા પ્રાણાયામનું લક્ષણ આ નીચેના સૂત્રમાં કરવામાં આવે છે:

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थ ॥ ५१ ॥

પદાર્થઃ- (बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी) બહારનો વિષય નાકથી બાર આંગળ સુધી અથવા તેનાથી વધારે પ્રાણનું લંબાઈમાં હોવું તે, અને શરીરની અંદર પ્રાણનું નાભિચક્ર આદિ સુધી લંબાઈમાં હોવું તે, આ બંને વિષયોને વિચારમાં લઈ પર્યાલોચન કરનાર યોગીએ પ્રાણની ગતિનો વિચ્છેદ કરી સ્તમ્ભરૂપમાં પ્રાણને રોકવો તે (चतुर्थः) ચોથો પ્રાણાયામ છે.

ભાવાર્થઃ- બહારનો વિષય, જેમકે પ્રાણ બહાર નાકથી કેટલે દૂર જઇ અટકી ગયો છે તથા શરીરની અંદર નાભિચક્ર આદિ સ્થાનોમાં કયા સ્થાન સુધી જઇ પ્રાણ અટકી ગયો છે આનો વિચાર કરી પ્રાણની ગતિને રોકી દેવી તે પ્રાણાયામ 'ચતુર્થ પ્રાણાયામ' અથવા 'તુરીય પ્રાણાયામ' કહેવાય છે.

આમ તો આ ચતુર્થ પ્રાણાયામ કુંભક 'પ્રાણાયામ' જ છે. પણ ત્રીજો જે કુંભક પ્રાણાયામ સૂત્ર પચાસમાં સમજાવવામાં આવ્યો છે તેમાં બાહ્ય અને આભ્યન્તર વિષયનું આલોચન હોતું નથી જ્યારે આ ચોથા પ્રાણાયામમાં બંને વિષયોનું આલોચન હોય છે. આટલો ફેરફાર ત્રીજા અને ચોથા પ્રાણાયામમાં હોય છે. આ આલોચન બહુ જ લાંબા અભ્યાસે કરી શકાય છે, માટે તે યોગી બનનાર વ્યક્તિએ કરવાનો રહે છે. પૂર્વસૂત્રમાં જે ત્રણ પ્રાણાયામો બતાવ્યા છે તે તો દરેક આધ્યાત્મિક પથમાં પ્રવૃત્ત રહનાર વ્યક્તિએ કરવાના હોય છે. પ્રાણાયામ સંસારનાં વૈદિક કામ કરવામાં બાધક નથી, પણ પોષક છે. સંધ્યા કરતી વખતે જ ત્રણે પ્રાણાયામો કરવા જોઇએ. દરેક પ્રાણાયમના દેશ, કાળ અને સંખ્યાનું પણ ધ્યાન રાખવું જોઇએ અને તેમાં દરરોજ અથવા પખવાડિયે કે મહિને કેટલું આગળ વધાય છે, તેનો પણ અભ્યાસ કરતા રહેવું જોઇએ.

આ ચોથો પ્રાણાયામ પણ 'દીર્ઘસૂક્ષ્મ' હોય છે. જેમ રૂના પૂમડાને તાણીએ તો તે લંબાઈમાં વધે છે અને પહોળાઈમાં ઘટે છે તેમ પ્રાણાયામ પણ લંબાઈમાં વધે છે અને પહોળાઈમાં=જાડાઈમાં ઘટે છે માટે જ 'પ્રાણાયામ' દીર્ઘસૂક્ષ્મ કહેવાય છે. પ્રાણાયામની દીર્ઘસૂક્ષ્મતા જેમ જેમ વધે તેમ તેમ યોગમાં આગળ વધાય છે. જેમ સૂતર લાંબુ અને પાતળું સારું ગણાય છે તેમ પ્રાણાયામ પણ 'દીર્ઘસૂક્ષ્મ' સારો ગણાય છે. ॥ ૫૧ ॥

ઉપરના સૂત્રોમાં બતાવેલા ચારેય પ્રકારના પ્રાણાયામો યોગના અંગ છે. હવે પ્રાણાયામોનું ફળ શું છે? તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

પદાર્થ:- (ततः) પ્રાણાયામોના અભ્યાસ કરવાથી (प्रकाशावरणम्) પ્રકાશ ઉપર પડેલ ક્લેશ રૂપ આવરણ (क्षीयते) ક્ષીણ થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ:-પ્રાણાયામોના અભ્યાસ કરનાર યોગીનું જ્ઞાનને ઢાંકનારું ક્લેશરૂપ આવરણીય કર્મ ક્ષીણ થાય છે, એટલે કે દુર્બળ બની જાય છે. મહામોહરૂપ રાગ નામનો ક્લેશ અથવા રજોગુણ અને તમોગુણ પ્રકાશાવરણીય કર્મ છે, એ સત્વગુણને ઢાંકી દે છે અને તે જ માણસને અકાર્ય અર્થાત્ નહીં કરવા જેવા કામમાં દોરી જાય છે. સિદ્ધ થયેલા પ્રાણાયામો પ્રકાશાવરણીય કર્મને દુર્બલ બનાવી દે છે. પ્રકાશાવરણીય કર્મ જ સંસારનું કારણ છે. માટે પ્રાણાયામો યોગનું અને ઉત્તમ ચારિત્ર્ય ઘડવાનું કારણ છે. અન્ય વિદ્વાનો પણ કહી ગયા છે કે: तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानाम् दीप्तिश्च ज्ञानस्य । પ્રાણાયામ કરતાં મોટું કોઈ તપ નથી, પ્રાણાયામો કરવાથી ઇંદ્રિયોના દોષોનો નાશ થાય છે અને જ્ઞાનનો પ્રકાશ ખૂબ વધે છે. મનુસ્મૃતિ આદિ સ્મૃતિઓમાં પણ પ્રાણાયામોને ખૂબ મહત્વ આપ્યું છે, માટે પ્રાણાયામોનો જરૂર અભ્યાસ કરવો જોઇએ. ॥ ૫૨ ॥

પ્રાણાયામોનું બીજું ફળ પણ આ સૂત્રમાં જણાવે છે:

धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥

પદાર્થ:– (च) અને (धारणासु) ધારણાઓમાં (मनसः) મનની (योग्यता) યોગ્યતા થાય છે.

ભાવાર્થ:– યોગશાસ્ત્રમાં શરીરની અંદર જુદા–જુદા ભાગોમાં મનને સ્થિર કરવું તેનું નામ ધારણા છે –એમ કહેવામાં આવ્યું છે. સાધારણ માણસનું મન ધારણાના સ્થાનને જાણી શકતું નથી એટલે એ મન ધારણાને માટે અયોગ્ય હોય છે, પણ પ્રાણાયામોના અભ્યાસ કરનાર સાત્વિક માણસનું મન ધારણા માટે યોગ્ય બને છે અને પછી યોગ સાધનાર માણસ ધારે તે પ્રદેશમાં મનને સ્થિર કરી શકે છે. પ્રાણાયામોના અભ્યાસનું આ બીજું ફળ છે. ॥ ૫૩ ॥

હવે યોગના અંગોમાં જે પાંચમું અંગ 'પ્રત્યાહાર' છે તેનું લક્ષણ બતાવે છે:

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

પદાર્થ:– (स्वविषयासंप्रयोगे) ઇંદ્રિયો પોતપોતાના વિષયો સાથે ન જોડાવાથી (इन्द्रियाणाम्) ઇંદ્રિયોનું (इव) જાણે કે (चित्तस्वरूपानुकारः) નિરુદ્ધ થયેલા ચિત્તના આકારમાં રહી જવું (प्रत्याहारः) એ પ્રત્યાહાર છે.

ભાવાર્થ:– ચિત્ત જયારે નિરુદ્ધ થઇ જાય એટલે કે મોહનીય = મોહજનક, રંજનીય = રાગજનક અને કોપનીય =

કોપજનક શબ્દ આદિ વિષયો સાથે ચિત્ત જોડાય નહિ ત્યારે ચક્ષુ આદિ બધી ઇંદ્રિયો પણ પોતપોતાના વિષયો સાથે જોડાતી નથી. એટલે ચિત્તનો નિરોધ કરવાથી ઇંદ્રિયોનો પણ નિરોધ થઈ જ જાય છે. ચિત્તનો નિરોધ કરવાના જે જે ઉપાયો બતાવ્યા છે તે જ ઉપાયો બાહ્ય ઇંદ્રિયોના નિરોધને માટે છે. આથી સમજવું જોઇએ કે ચિત્તના નિરોધના પ્રયત્ન કરતાં ઇંદ્રિયોના નિરોધનો પ્રયત્ન કોઈ જુદો નથી. નિરુદ્ધ ચિત્તના આકાર જેવો ઇંદ્રિયોએ પણ આકાર ધારણ કરવો તેનું નામ પ્રત્યાહાર છે.

इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतीपम् आह्रियन्ते अस्मिन्निति प्रत्याहारः વિષય તરફથી ઇંદ્રિયોને પાછી વાળી વિષયથી વિરુદ્ધ આત્મા તરફ વાળી રાખવી તેનું નામ પ્રત્યાહાર છે. અથવા એમ કહો કે, ઇંદ્રિયોનું વિષયાકારે નહીં પણ પોતાના જ આકારમાં સ્થિર થઇ જવું. જ્યારે ઇંદ્રિયોની સ્વરૂપાવસ્થિતિ થાય છે ત્યારે તે ચિત્તના આકારને અનુસરે છે. ઇંદ્રિયો સદૈવ ચિત્તને જ અનુસરે છે આનું દૃષ્ટાંત આ પ્રમાણે છે :

'यथा मधुकरराजं मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति निविशमानमनु निविशन्ते तथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानि इत्येष प्रत्याहारः' (વ્યાસભાષ્ય) મધપૂડા ઉપરથી જ્યારે મુખ્ય માંખ ઊડે છે ત્યારે તેની પાછળ બીજી માંખો ઊડે છે અને જ્યારે મુખ્ય માંખ બેસે છે ત્યારે બીજી બધી માંખો તેની પાછળ બેસી જાય છે, તે જ પ્રમાણે જ્યારે ચિત્તનો

નિરોધ થઈ જાય છે ત્યારે ઇંદ્રિયો પણ નિરુદ્ધ થઈ જાય છે. ચિત્ત અને ઇંદ્રિયોની આ સ્થિતિને 'પ્રત્યાહાર' કહે છે.

જે માણસ જિતેન્દ્રિય નથી હોતો તે માણસ જ્યારે ધ્યાન કરે છે ત્યારે તેનું ચિત્ત ઇંદ્રિયોને અનુસરે છે એટલે રૂપાદિ વિષયો તરફ ઇંદ્રિયોનું આકર્ષણ હોય છે તેથી ચિત્ત પણ એવી જ વૃત્તિઓને ધારણ કરે છે. યોગને જાણનાર વિદ્વાન માણસે પ્રત્યાહાર કરવામાં ખૂબ પ્રયત્ન કરવો જોઇએ.

शब्दादिष्वनुषक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित् ।
कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः ॥

(વિષ્ણુપુરાણ ૬–૭–૪૪)

યોગને જાણનાર અને પ્રત્યાહાર કરવાનો અભ્યાસ કરનાર માણસે શબ્દ આદિ વિષયોમાં આસક્ત થયેલી ઇન્દ્રિયોનો નિગ્રહ કરીને નિરુદ્ધ ચિત્તના આકારવાળી કરવી. આનું નામ જ 'પ્રત્યાહાર' છે. 'પ્રત્યાહાર' શબ્દ યોગ-શાસ્ત્રમાં વપરાતો પારિભાષિક શબ્દ છે.

પાણિનીય વ્યાકરણ શાસ્ત્રમાં પણ 'પ્રત્યાહાર' શબ્દ વપરાય છે, પણ ત્યાં તેનો જુદો અર્થ છે. પાણિનિએ પોતાના શાસ્ત્રમાં વાપરવા માટે 'પ્રત્યાહાર' નો જુદો જ પારિભાષિક અર્થ કરેલો છે. ॥ ૫૪ ॥

'પ્રત્યાહાર' કરવાનું શું પ્રયોજન છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

तत: परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

પદાર્થ:– (ततः) 'પ્રત્યાહાર' સંપૂર્ણપણે કાબુમાં આવવાથી (इन्द्रियाणाम्) ઇન્દ્રિયોની (परमा) સૌથી ઉત્તમ (वश्यता) વશ્યતા (કાબુમાં આવી જવું તે) થાય છે.

ભાવાર્થ:– પ્રત્યાહારને અભ્યાસ કરવાથી ઇંદ્રિયો યોગ સાધનારને આધીન થઈ જાય છે. ઇન્દ્રિયો યોગ સાધનારને એટલી બધી આધીન થઈ જાય છે કે ઇંદ્રિયોને વિષય તરફ ખેંચવામાં આવે તોપણુ તે વિષય તરફ વળતી નથી. વૈષયિક બધાં જ પ્રલોભને જ્યારે નકામાં થઈ જાય છે ત્યારે સમજવું કે હવે ઇન્દ્રિયો યોગ સાધનારના પૂરેપૂરા કાબુમાં આવી ગઈ છે. પરમ યોગી જૈગીષવ્ય કહે છે કે ચિત્તની એકાગ્રતા થયા પછી ઇન્દ્રિયો વિષય તરફ વળતી જ નથી. चित्तैकाग्र्याद्प्रतिपत्तिरेवेति जैगीषव्यः આ વાકયને અર્થ ઉપર સમજાવ્યો છે. ॥ ૫૫ ॥

इति गुर्जरभाषाग्रथिते पातंजले योगभाष्ये
द्वितीयः साधनपादः ।



अथ तृतीयः विभूतिपादः

આ ત્રીજા પાદમાં સંયમના અનુષ્ઠાનથી સિદ્ધ થતી યોગની વિભૂતિઓ બતાવવામાં આવી છે, તેથી આ ત્રીજા પાદને 'વિભૂતિ-પાદ' કહેવામાં આવે છે. પહેલા પાદમાં સમાધિ અને બીજા પાદમાં સાધનોનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, એટલે પહેલો પાદ 'સમાધિ-પાદ' અને બીજો પાદ 'સાધન-પાદ' કહેવાય છે. સાધન-પાદમાં યોગના આઠ અંગોનો નિર્દેશ કર્યો છે, પણ એ આઠેય અંગોનાં લક્ષણો તથા તેની સમજ આપી નથી પણ કેવળ પાંચ (યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ અને પ્રત્યાહાર) અંગોની સમજ આપી છે. બાકી રહેલા ત્રણ અંગોની સમજ આ વિભૂતિ-પાદમાં આપવામાં આવી છે. આનું કારણ એ છે કે આઠ અંગોમાં પહેલાં પાંચ અંગો પછીના ત્રણ અંગોના કારણરૂપે છે અને છેલ્લાં ત્રણ અંગો કાર્યરૂપે છે. અને એ કાર્યરૂપ અંગોથી વિભૂતિ પ્રાપ્ત કરી શકાય છે. આમ ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ –આ ત્રણ અંગો વિભૂતિનાં સમીપતમ કારણ હોવાથી તેને આ પાદમાં દાખલ કર્યાં છે. વિભૂતિઓ બતાવવાનું કારણ એ છે કે સંયમ દ્વારા વિભૂતિ મળવાથી યોગીને યોગ ઉપર શ્રદ્ધા બેસે છે અને યોગનું અનુષ્ઠાન કરવા વધારે પ્રયત્ન કરે છે. અસંપ્રજ્ઞાત

યોગથી આત્માના સ્વરૂપની પ્રાપ્ત કરી શકાય છે અને એ જ મોક્ષ છે.

હવે બાકી રહેલાં ત્રણ અંગોમાંનું પહેલું અંગ જે 'ધારણા' છે તેનું લક્ષણ આ સૂત્રમાં આપે છે :

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

પદાર્થઃ- (चित्तस्य) ચિત્તનો (देशबन्धः) દેશમાં-અમુક સ્થાનમાં બંધ થવો તે (धारणा) ધારણા કહેવાય છે.

ભાવાર્થઃ- ચિત્તનું અમુક સ્થાનમાં બંધાઇ જવું તેનું નામ ધારણા છે. આ સ્થાનો શરીરની અંદર છે અને બહાર પણ છે. શરીરની અંદરનાં સ્થાનો (૧) નાભિચક્ર, (૨) હૃદયકમળ, (૩) મૂર્ધા-જ્યોતિ, (૪) નાસિકાગ્ર, (૫) જિહ્વાગ્ર = જીભનો અગ્રભાગ વગેરે. બહારનાં સ્થાનો-સૂર્ય, ચંદ્ર આદિ. ઉપરનાં-શરીરની અંદરનાં સ્થાનો આધ્યાત્મિક સ્થાનો અથવા અધ્યાત્મિક દેશો કહેવાય છે. સૂર્ય, ચંદ્ર આદિ 'બાહ્યદેશ' કહેવાય છે. આધ્યાત્મિક દેશમાં ચિત્તનો સ્વરૂપથી બંધ થાય છે, અને સૂર્ય-ચંદ્ર આદિ બાહ્યદેશમાં વૃત્તિ દ્વારા ચિત્તનો બંધ થાય છે. જે દેશમાં ચિત્ત બંધાય અને ત્યાંથી જરા પણ વિચલિત ન થાય ત્યારે 'ધારણા' સિદ્ધ થઇ એમ સમજવું.

यमादिगुणयुक्तस्य मनसः स्थितिरात्मनि ।
धारणेत्युच्यते सद्भिर्योगशास्त्रविशारदैः ॥

અર્થઃ- યમ, નિયમ, આદિ જેણે મેળવી લીધા છે તથા મૈત્રી, કરુણા, મુદિતા અને ઉપેક્ષારૂપ પરિકર્મની

નિરંતર ભાવનાથી જેનું ચિત્ત ભાવિત થયેલું હોય છે, તેવા યોગસાધનારે ઉપદ્રવરહિત એકાંત દેશમાં જઇ બેસવું અને યોગના કોઇ પણ આસનમાં સ્થિર થવું. આસન કરવામાં થાક ન લાગે તેવો અભ્યાસ કરવો. આસન ઉપર શરીર સ્થિર, સીધું અને ટટ્ટાર રાખી બેસવું, ચિત્તને નાકના અગ્રભાગ ઉપર સ્થિર રાખવા પ્રયત્ન કરવો. આમ કરવાથી ધીમે ધીમે પ્રાણાયામ સાધી શકાશે અને પ્રત્યાહાર પણ સિદ્ધ કરી શકાશે. આ પછી ચિત્ત આત્મામાં = પરબ્રહ્મમાં સ્થિર થઇ જશે. એ જ ધારણા છે. એમ યોગશાસ્ત્રના નિષ્ણાત સંત મહાપુરુષો કહે છે. ॥ ૧ ॥

ધારણા સ્થિર થયા પછી ધ્યાન થઇ શકે છે, એટલે હવે ધ્યાનનું સ્વરૂપ બતાવે છે :

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

પદાર્થ:– (तत्र) ચિત્તનું જ્યાં બંધન થયું છે ત્યાં (प्रत्ययैकतानता) પ્રત્યયોની અર્થાત્ ચિત્તની વૃત્તિઓની (एकतानता) એક જ પ્રકારતા અથવા વૃત્તિઓનો એક જ વિષય હોવો (ध्यानम्) તેનું નામ ધ્યાન છે.

ભાવાર્થ:– જ્યાં ધારણા સ્થિર થઈ હોય ત્યાં જ ચિત્તની વૃત્તિઓનું એક જ આલંબન હોવું અર્થાત્ જુદા-જુદા વિષયોનો ત્યાગ કરી એક જ વિષયવાળી ચિત્તની વૃત્તિઓ થયા કરે તેનું નામ ધ્યાન છે. પ્રણવ ધ્યાનનો વિષય હોય તો પ્રણવાકાર જ ચિત્તની વૃત્તિઓ થયા કરે તેનું નામ ધ્યાન છે. એક કલાક સુધી ધ્યાન થયું હોય

તો તે સમય દરમ્યાન પ્રણવ સિવાય બીજો કોઈ પણ વિષય ચિત્તની વૃત્તિઓમાં ન આવવો જોઈએ. જ્યારે મનની આવી સ્થિતિ થાય ત્યારે ધ્યાન થયું કહેવાય. જો ચિત્તની વૃત્તિઓનો વિષય બદલાય તો ધ્યાનનો ભંગ થાય છે –એમ ધ્યાતાએ સમજવું જોઈએ, અને સમાન વિષયમાં જ ચિત્તને લાવવા પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. લાંબા અભ્યાસે ધ્યાનની સિદ્ધિ થઈ શકે છે માટે ધ્યાતાએ અશ્રદ્ધાળુ બનવું ન જોઈએ. ॥ ૨ ॥

હવે આઠ યોગનાં અંગોમાંનું છેલ્લું જે 'સમાધિ' નામનું અંગ છે તેનું લક્ષણ કરી સમજાવે છે :

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥

પદાર્થ:– (तत् एव) અહીં तत् સર્વનામ પૂર્વ સૂત્રમાં કહેલા ધ્યાનને બદલે વપરાયું છે. તે ધ્યાન જ (अर्थमात्र-निर्भासम्) ધ્યેયરૂપ કેવળ અર્થનો નિર્ભાસ જેમાં થતો હોય (स्वरूपशून्यम् इव) અને એ નિર્ભાસ વૃત્ત્યાત્મક રૂપથી જાણે કે શૂન્ય બની રહ્યો હોય તે (समाधिः) 'સમાધિ' છે અર્થાત્ ઉક્તસ્વરૂપ અર્થ સમાધિનું લક્ષણ છે.

ભાવાર્થ:– જ્યારે ધ્યાન અને ધારણા બહુ જ ગૌણ બની જાય છે અને કેવળ ધ્યેય અર્થનું સ્ફુરણ થયા કરે ત્યારે યોગીએ સમજવું જોઈએ કે હવે સમાધિ પરિપક્વ દશામાં આવી છે. ધ્યેયઅર્થ સિવાય સમાધિમાં કશું જ ભાસતું નથી. આનો અર્થ એ નથી કે તે વખતે ધારણા અને સમાનવિષયક માનસવૃત્તિઓની પરંપરાનો અભાવ

થઇ ગયો છે, પણ ધ્યેયની પ્રબળતામાં એ બંને ગૌણ બની જાય છે. બહુ જ અલ્પસ્વરૂપમાં આનું અસ્તિત્વ હોય છે. જેમકે સૂર્યના પ્રકાશમાં દીપકના પ્રકાશનો અભાવ થઇ જતો નથી, પણ સૂર્યના પ્રકાશમાં દીપકનો પ્રકાશ ઢંકાઇ જાય છે; તેમ સમાધિમાં ધારણા અને ધ્યાનનું પણ સમજવું. જો સમાધિમાં ધારણા અને ધ્યાનનો અભાવ જ થઈ જાય તો ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિનો કાર્ય-કારણભાવ જ ન બની શકે, અને યોગના આઠ અંગ છે એમ કહેવામાં પણ કશો જ અર્થ નથી. આ કારણથી સમાધિમાં ધારણા અને ધ્યાન બહુ જ સૂક્ષ્મ અવસ્થામાં હોય છે, જેથી ધ્યાતાને ધારણા અને ધ્યાનનો સમાધિમાં અભેદ જણાય છે. ॥ ૩ ॥

ધ્યાન અને સમાધિનો ભેદ આ પ્રમાણે છે:

कर्तृकरणानुसंधानपुरस्सरं जायमानः प्रत्ययो ध्यानम् ।

આ કર્તા છે અને આ કરણ છે –એવા અનુસંધાન સાથે જે પ્રત્યય અર્થાત્ વૃત્તિ થાય છે, તે ધ્યાન કહેવાય છે.

तदुत्कर्षात् कर्तृकरणानुसंधानमन्तरेणैव ध्येयमात्रगोचरतया निर्भासमानः समाधिः ।

ધ્યાન જ્યારે વધારે ઉચ્ચ સ્થિતિએ પહોંચે છે ત્યારે કર્તા અને કરણનું અનુસંધાન રહેતું નથી, કેવળ ધ્યેય-વિષય જ પ્રકાશિત રહે છે, એ સ્થિતિ તે 'સમાધિ' કહેવાય છે. એમ યોગસુધાકરમાં જણાવ્યું છે.

ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ –આ ત્રણને માટે એક

સામાન્ય નામ આપવા માટે સૂત્ર લખવામાં આવે છે. આ સૂત્રને પરિભાષા–સૂત્ર કહેવામાં આવે છે:

त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

પદાર્થ:– (एकत्र) એક જ વિષયવાળા (त्रयम्) ત્રણ ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ (संयमः) સંયમ નામથી યોગશાસ્ત્રમાં પ્રયુક્ત થયેલ છે.

ભાવાર્થ:– વારંવાર ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ આ ત્રણ બોલવા પડે તેના કરતાં એ ત્રણને એક જ નામ આપવું સારું છે. એમ કરવામાં લાઘવપણ છે, માટે એ ત્રણને 'સંયમ' એવું નામ આપવામાં આવ્યું છે. હવે જ્યાં જ્યાં આ શાસ્ત્રમાં સંયમ શબ્દનો પ્રયોગ થયો હોય ત્યાં ત્યાં ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ સમજવાં. 'સંયમ' શબ્દ તાંત્રિકી પરિભાષાનો છે. તંત્ર એટલે શાસ્ત્ર, અને શાસ્ત્રમાં ઉત્પન્ન થયેલી પરિભાષા તે તાંત્રિકી પરિભાષા કહેવાય છે.

આ 'સંયમ' પારિભાષિક સંજ્ઞાનો ઉપયોગ આ સૂત્રમાં કરવામાં આવ્યો છે. જુઓ– परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥ (યોગદર્શન) આ સૂત્રમાં સંયમ શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે. અહીં સંયમ એટલે ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ સમજવાં. એ જ પ્રમાણે આ શાસ્ત્રમાં જ્યાં જ્યાં 'સંયમ' શબ્દનો પ્રયોગ થયો હોય ત્યાં ત્યાં ઉપર કહેલાં ત્રણેની ઉપસ્થિતિ થાય છે એમ સમજવું. સામાન્ય વ્યવહારમાં તથા બીજાં શાસ્ત્રમાં સંયમ શબ્દ જુદા અર્થમાં

વપરાય છે, એ ધ્યાનમાં રાખવું. આ 'સંયમ' પણ યોગનું અંગ છે.

પાણિનીય વ્યાકરણમાં 'ગુણ' શબ્દથી જેમ अ, ए અને ओ સમજાય છે તેમ પાતંજલ યોગશાસ્ત્રમાં 'સંયમ' શબ્દથી ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ આ ત્રણ સમજવાં. પણ આટલું વધારામાં સમજવું કે ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ આ ત્રણેમાં એક જ વિષય હોય તો તેને માટે 'સંયમ' શબ્દ વપરાય છે, જો ત્રણેના જુદા જુદા વિષયો હોય તો તેને માટે સંયમ શબ્દ વપરાતો નથી. ॥ ૪ ॥

સંયમ ઉપર કાબુ આવ્યા પછી તેનો શો ઉપયોગ કરવો અને એનું ફળ શું છે? તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

तज्जयात् प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥

પદાર્થ:– (तज्जयात्) સંયમ ઉપર જય મેળવવાથી (प्रज्ञालोकः) સમાધિવિષયક પ્રજ્ઞાનો આલોક = પ્રકાશ થાય છે.

ભાવાર્થ:– સંયમ ઉપર કાબુ આવી જવાથી સમાધિમાં જે પ્રજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે તેમાં આલોક = સાત્વિક પ્રકાશ ઉત્પન્ન થાય છે. વિજાતીય સિવાય એક જ વિષયનો સાત્વિક નિર્મળ પ્રવાહ ચાલુ રહેવો તેનું નામ 'પ્રજ્ઞાલોક' કહેવાય છે. જેમ જેમ સંયમ સ્થિર થતો જાય છે તેમ તેમ 'પ્રજ્ઞાલોક' = પ્રજ્ઞાનો પ્રકાશ વધતો જાય છે. ॥ ૫ ॥

સંયમનું ફળ શું છે? અને તેનો વિનિયોગ ક્યાં કરવો? તે આ સૂત્રમાં સમજાવે છે:

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

પદાર્થઃ– (तस्य) તે સંયમનો (भूमिषु) સવિતર્ક આદિ સમાપત્તિરૂપ ભૂમિઓમાં (विनियोगः) વિનિયોગ કરવો.

ભાવાર્થઃ– ચિત્તવૃત્તિઓનાં આલંબનો સ્થૂલ, સૂક્ષ્મ અને સૂક્ષ્મતર આદિ હોય છે; જેમકેઃ– સાધનપાદમાં બતાવવામાં આવેલી સવિતર્કસમાપત્તિ એ ચિત્તવૃત્તિઓનું સ્થૂલ આલંબન છે એ યોગની પ્રાથમિક ભૂમિ છે. આ ભૂમિ ઉપર સંયમને લગાડવો એટલે સંયમનો વિનિયોગ કરવો.

જ્યારે આ ભૂમિ ઉપર સંયમ બરાબર સ્થિર થઇ જાય ત્યાર પછી તેનાથી ઉચ્ચ ભૂમિ જે નિર્વિતર્કસમાપત્તિ બતાવી છે તેના ઉપર સંયમ કરવો. આમ ક્રમથી નીચેની ભૂમિ ઉપર વિજય થતાં ક્રમથી ઉપરની ભૂમિકાઓમાં યોગીએ અથવા ધ્યાતાએ સંયમ કરતા જવું. માળા ઉપર ચઢવા માટે નિસરણી હોય છે અને તેનાં પગથિયાઓ દ્વારા ક્રમથી લોકો નીચેથી ઉપર જાય છે; નીચેના પગથિયા ઉપર પહેલો પગ મૂકે છે અને પછી ઉપરના બીજા પગથિયા ઉપર પગ મૂકે છે અને ઠેઠ ઉપર જાય છે, તેમ યોગની નીચેથી ઉપર જવા માટે ક્રમબદ્ધ ભૂમિકાઓ હોય છે. માટે પહેલી ભૂમિકા ઉપર વિજય મેળવ્યા પછી જ ઉચ્ચ ભૂમિકામાં સંયમ કરવો, પહેલા ધોરણમાં પાસ થઇને બીજા ધોરણમાં જવાય અને બીજા ધોરણમાં પાસ થઈ ત્રીજા ધોરણમાં જવાય, એ જ ક્રમ યોગની ભૂમિકાઓનો છે.

નીચેની ભૂમિકાઓ ઉપર વિજય મેળવ્યા સિવાય ઉચ્ચ ભૂમિકામાં સંયમ થઈ શકે નહિ, અને સંયમ કર્યા સિવાય પ્રજ્ઞાનો પ્રકાશ પણ થઈ શકે નહિ. જો પરમ દયાળુ પરમાત્માની કૃપાથી ધ્યાતાને ઉચ્ચ ભૂમિમાં પણ વિજય મળી જાય તો પછી નીચલી ભૂમિકાઓમાં સંયમ કરવાનો રહેતો નથી. ભૂમિકાઓનો ક્રમ પણ ધ્યાતાઓ–યોગીઓ જ જાણી શકે છે. યોગીઓનો ઉત્તમ શિક્ષક યોગ જ છે, બીજાઓ નહિ, માટે યોગથી થતા અનુભવ પ્રમાણે આગળ વધવું. શાસ્ત્રમાં પણ કહેવામાં આવ્યું છે કે :

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात् प्रवर्धते ।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगी रमते चिरात् ॥

યોગથી જ યોગને જાણવો જોઇએ, યોગની સાધના કરવાથી આગળનો યોગમાર્ગ પ્રકાશિત થાય છે. જે ધ્યાતા યોગ કરવામાં પ્રમાદ નથી કરતો તે લાંબા સમય સુધી યોગ સાધવામાં આનંદ મેળવે છે અને છેવટે મુક્ત થાય છે. યોગમાં અનુષ્ઠાનનું તત્ત્વ મુખ્ય છે, વધારે પડતાં વ્યાખ્યાનોનું ત્યાં સ્થાન નથી.

स्थूलसूक्ष्मादिपूक्ताः— सवितर्कनिर्वितर्क सविचारनिर्विचारा-ऽऽदयो भूमयः ॥ (મણિપ્રભા–ટીકા.)

અર્થ:– સવિતર્ક, નિર્વિતર્ક, સવિચાર અને નિર્વિચાર આદિ યોગની ભૂમિઓ છે. (જુઓ, યોગસૂત્ર, ૧–૪૨) ॥ ૬ ॥

યોગનાં અંગો તો આઠ છે, તેમાં છેલ્લા ત્રણને આટલી બધી મહત્તા શા માટે આપવામાં આવી છે? તેનું સમાધાન આ સૂત્રમાં છે :

त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

પદાર્થ:- (त्रयम्) ત્રણ (अन्तरङ्गम्) અંતરંગ છે. (पूर्वेभ्यः) આગળ આવેલાં પાંચ અંગો કરતાં.

ભાવાર્થ:- યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધારણા, ધ્યાન, અને સમાધિ આ આઠ યોગનાં અંગોમાં પહેલાં પાંચ અંગો સંપ્રજ્ઞાત યોગનાં બાહ્ય અંગો છે, અને પછીના ત્રણ ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ આ ત્રણ સંપ્રજ્ઞાત યોગનાં અંતરંગ છે. અંતરંગ એટલે બહુ નજીકના ઉપકારક અંગો. આ કારણથી એ ત્રણનું નામ સંયમ રાખવામાં આવ્યું છે. ॥ ૭ ॥

तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

પદાર્થ:- (तदपि) તે ત્રણ સાધનો પણ (निर्बीजस्य) નિર્બીજ-યોગ એટલે કે અસંપ્રજ્ઞાત યોગનાં (बहिरङ्गम्) બહિરંગ છે.

ભાવાર્થ:- ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ —આ ત્રણ અંગો અસંપ્રજ્ઞાત યોગનાં અત્યંત નજીકના અંગો નથી. પરંપરાસંબંધથી તે નિરાલંબ યોગનાં ઉપકારક છે. નિરાલંબ અથવા અસંપ્રજ્ઞાત યોગ એટલે જેમાં સૂક્ષ્મ પ્રાકૃતિક તત્વ પણ આલંબન તરીકે ન હોય તે. અસંપ્રજ્ઞાત યોગ એટલે માત્ર આત્માનો જ પ્રકાશ. આ અવસ્થા સંયમસાધ્ય નથી. આ સ્થિતિ લાવવામાં સંયમ ઉપયોગી તો છે પણ તે દૂર પડે છે. આ કારણથી ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિને અસંપ્રજ્ઞાત યોગનાં બહિરંગ ગણવામાં આવે છે. ॥ ૮ ॥

જ્યારે ચિત્ત નિરોધ અવસ્થામાં હોય છે ત્યારે ચિત્તનું કેવું પરિણામ હોય છે? જો કહો કે તે વખતે ચિત્તનું કશું જ પરિણામ નથી તો તે ખોટું છે, કારણ કે 'चलं च गुणवृत्तम्' જેટલું ત્રિગુણાત્મક વસ્તુ છે તે બધું સદા પરિણામવાળું છે, માટે ચિત્ત ત્રિગુણાત્મક હોવાથી તેનું પરિણામ નિરોધ અવસ્થામાં પણ થવું જ જોઈએ. આ શંકાનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં છે:

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥ ९ ॥

પદાર્થ:– (व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोः) વ્યુત્થાન અને નિરોધના સંસ્કારોનો (अभिभवप्रादुर्भावौ) અભિભવ અને પ્રાદુર્ભાવ થાય છે અને (निरोधक्षणचित्तान्वयः) નિરોધકાલિક ચિત્તનો નિરોધ સાથે સંબંધ હોય છે તેથી (निरोधपरिणामः) નિરોધરૂપ પરિણામ થયા કરે છે.

ભાવાર્થ:– પ્રથમ એ સમજી લેવું જોઇએ કે ચિત્તની વૃત્તિઓ અને તેનાં સંસ્કારો એક વસ્તુ નથી, પણ વૃત્તિઓ અને તેનાથી ઉત્પન્ન થતા સંસ્કારો જુદા છે. વૃત્તિઓ નિમિત્તકારણ છે અને સંસ્કારો તેનાં કાર્યો છે. નિમિત્તકારણની નિવૃત્તિથી કાર્યની નિવૃત્તિ થતી નથી, માટે વૃત્તિઓની નિવૃત્તિ થયા પછી પણ તેના સંસ્કારો રહે છે.

ચિત્તની પાંચ અવસ્થાઓ છે: ક્ષિપ્ત, મૂઢ, વિક્ષિપ્ત, એકાગ્રતા અને નિરોધ. આમાંથી પહેલી ત્રણ અવસ્થાને વ્યુત્થાન કહેવામાં આવે છે અને પછીની બે અવસ્થાઓ સંપ્રજ્ઞાત અને અસંપ્રજ્ઞાત યોગ કહેવાય છે.

જ્યારે ચિત્તની વૃત્તિઓનો નિરોધ થાય છે ત્યારે પણ સંસ્કારો તો રહે જ છે, એટલે નિરોધ અવસ્થામાં વ્યુત્થાનના સંસ્કારોનો અભિભવ અને નિરોધ સંસ્કારોનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે, અને નિરોધ અવસ્થા વખતનો ચિત્તનો બંને જાતના સંસ્કારો સાથે સંબંધ રહે છે, આ રીતે સંસ્કારોની સદૃશતા ચિત્તમાં ચાલુ રહે છે. આનું નામ જ નિરોધ-પરિણામ છે. ભાવાર્થ એ છે કે, જ્યારે ચિત્ત નિરુદ્ધ અવસ્થામાં હોય ત્યારે વ્યુત્થાનના સંસ્કારોનો અભિભવ હોય છે અને નિરોધના સંસ્કારોનો પ્રાદુર્ભાવ હોય છે. સંસ્કારોની અનાગત અવસ્થા એ જ સંસ્કારોનો અભિભવ અને સંસ્કારોનું વર્તમાન કાળમાં હોવું એ જ એનો પ્રાદુર્ભાવ છે. સાર એ નીકળે છે કે નિરોધ સમાધિમાં ચિત્ત સંસ્કારસહિત છે તેથી તે સમયમાં ચિત્તનું નિરોધ-પરિણામ થાય છે. ॥ ૯ ॥

જ્યારે વ્યુત્થાન-સંસ્કારનો અભાવ થાય એટલે કે વ્યુત્થાન-સંસ્કાર બહુ જ ધીમો પડી જાય, લગભગ પોતાનું કામ કરતો બંધ પડી જાય ત્યારે નિરોધ-સંસ્કાર ખૂબ બળવાન્ બને છે, આ બળવાન્ નિરોધસંસ્કારવાળા ચિત્તનું પરિણામ કેવું થયા કરે છે તેનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં આપે છે:

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

પદાર્થ:– (तस्य) ચિત્તનું (प्रशान्तवाहिता) પરિણામ પ્રશાંતિને વહન કરનાર હોય છે (संस्कारात्) નિરોધ-સંસ્કારની બલવત્તાને લીધે.

ભાવાર્થ:- વ્યુત્થાન સંસ્કારની અશુદ્ધિનો સંપર્ક નિરોધ-સંસ્કારમાં ન હોવાને લીધે ચિત્તનું પરિણામ શાંતિમય હોય છે, ધ્યાતાને તે વખતે જરા પણ અશાંતિ હોતી નથી. વિક્ષેપ જરા પણ ન હોવાથી અશાંતિ હોવાનું કોઇપણ કારણ નથી. ખૂબ શાંતિનો જ પ્રવાહ ચાલુ રહે છે. પણ જ્યારે નિરોધ સંસ્કાર મંદ પડી જાય અને વ્યુત્થાન સંસ્કારની જાગૃતિને લીધે ચિત્તમાં વિક્ષેપ આવવા લાગે ત્યારે ચિત્તનું પરિણામ અશાંતિના રૂપમાં થવા લાગે છે, માટે નિરોધ-સંસ્કારને પ્રબલ રાખવામાં યોગીએ સાવધાન રહેવું જોઇએ, જેથી સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ પરમ-આનંદજનક બની રહે. નિરોધ-અવસ્થામાં પ્રશાંતિની પરંપરા માનવાથી અર્થાત્ એક પછી એક શાંતિના જ મોજાં થતાં રહેવાથી, 'चलं च गुणवृत्तम्' ગુણવૃત્ત સદૈવ ચાલતું રહે છે એ સાંખ્યના સિદ્ધાંતનો બાધ આવતો નથી. કારણ કે ગુણવૃત્તનાં બે પરિણામો હોય છે. એક વિરૂપ અને બીજું સરૂપ પરિણામ. નિરોધ-અવસ્થામાં સરૂપ પરિણામ જ રહે છે અને તે પ્રશાંતિને વહન કરનાર હોય છે. ॥ ૧૦ ॥

હવે 'સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં' ચિત્તનું સમાધિરૂપ પરિણામ બતાવે છે:

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

પદાર્થ:- (चित्तस्य) ચિત્તની (सर्वार्थतैकाग्रतयोः) સર્વાર્થતા અને એકાગ્રતાના (क्षयोदयौ) ક્ષય અને ઉદય થાય ત્યારે (समाधिपरिणामः) ચિત્તનું સમાધિપરિણામ હોય છે.

ભાવાર્થઃ- સર્વાર્થતા (વિક્ષેપ) એ ચિત્તનો ધર્મ છે અને એકાગ્રતા એ પણ ચિત્તનો ધર્મ છે. જ્યારે સર્વાર્થતાનો (વિક્ષેપનો) ક્ષય અર્થાત્ નાશ થાય અને એકાગ્રતાનો ઉદય થાય અને એ બંને ધર્મોને ધારણ કરનારું ચિત્ત એકાગ્રતાના જ પરિણામોને ક્રમથી જન્માવ્યા કરે ત્યારે સમજવું કે હવે ચિત્તનું સમાધિપરિણામ થઈ રહ્યું છે. સર્વાર્થતાનો નાશ એટલે સર્વાર્થતાનું ભૂતકાળમાં ઊતરી જવું અને એકાગ્રતાનો ઉદય એટલે એકાગ્રતાનું અનાગત અવસ્થામાંથી વર્તમાનવસ્થામાં આવવું. સાંખ્યશાસ્ત્રના સિદ્ધાંતમાં કોઇનો અત્યંત નાશ થતો નથી. સાંખ્યનો સિદ્ધાંત તો સત્કાર્યવાદ છે. બધું સદાને માટે છે, કોઇનો અભાવ તો નથી. અસત્‌ની ઉત્પત્તિ થતી નથી અને સત્‌નો અભાવ થતો નથી; માત્ર કાર્યનો અથવા અવસ્થાઓના આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ થયા કરે છે. આ સૂત્રની પહેલાના સૂત્રમાં ચિત્તનું નિરોધ-પરિણામ બતાવ્યું છે. અને આ સૂત્રમાં ચિત્તનું સમાધિ-પરિણામ બતાવ્યું છે. આ બંને પરિણામોમાં ભેદ એટલો જ છે કે નિરોધ-પરિણામમાં વ્યુત્થાનસંસ્કારનો તિરોભાવ હોય છે અને નિરોધસંસ્કારનો આવિર્ભાવ હોય છે, જ્યારે સમાધિપરિ-ણામમાં સર્વાર્થતાનું ભૂતકાળમાં વિલીન થવું અને એકાગ્રતાનું ભવિષ્યકાળમાંથી વર્તમાનકાળમાં આવવાનું હોય છે. ॥૧૧॥

હવે જ્યારે ચિત્તની એકાગ્રતા સ્થિર થાય છે ત્યારે પણ ચિત્તમાં પરિણામો થવાં જોઇએ કારણ કે, 'ગુણવૃત્ત'

સ્થિર હોતાં નથી. 'ચિત્ત' પણ 'ગુણવૃત્ત' જ છે, મહત્-તત્ત્વથી માંડી બધાં જ કાર્યો 'ગુણવૃત્ત' કહેવાય છે, માટે એકાગ્રતા વખતે જે પરિણામો થાય છે તે બતાવે છે. સ્થિર એકાગ્રતા એટલે 'સંપ્રજ્ઞાત યોગ'.

शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता परिणामः ॥ १२ ॥

પદાર્થઃ- (शान्तोदितौ) શાન્ત = ભૂતકાળ થયેલો પ્રત્યય ઉદિત = વર્તમાનકાળમાં ચાલુ સ્થિતિવાળો પ્રત્યય (तुल्य-प्रत्ययौ) એક જ ધ્યેયનું આલંબન કરનારા પ્રત્યયો એટલે કે (चित्तस्य) ચિત્તની વૃત્તિઓ ચાલુ હોય છે તે (एकाग्रता-परिणामः) એકાગ્રતાનું પરિણામ છે.

ભાવાર્થઃ- એક જ વિષયને અવલંબન કરનાર એક વૃત્તિ શાંત થાય છે એટલે ભૂતકાળમાં જાય છે જ્યારે તે જ વિષયને અવલંબન કરનાર બીજી વૃત્તિ ઉદિત થાય છે અર્થાત્ જાગતી થાય છે. આ જાતના ચિત્તવૃત્તિના ફેરફારની પરંપરાને એકાગ્રતાનું 'પરિણામ' કહેવામાં આવે છે. એકાગ્રતારૂપ સમાધિમાં પણ ચિત્તનાં પરિણામો થાય છે. પણ એ પરિણામો એક જ ધ્યેયને અવલંબન કરનારા હોય છે. સાંખ્ય સિદ્ધાંત પ્રમાણે આત્મા સિવાય બીજો કોઇ પણ અર્થ પ્રતિક્ષણ ફેરફાર વગર રહી શકતો નથી. કોઇમાં વિરૂપ પરિણામ (ફેરફાર) હોય છે તો કોઇમાં સરૂપ પરિણામ (ફેરફાર) હોય છે. એકાગ્રતામાં સરૂપ પરિણામો થયા કરે છે.

ભાવ એ છે કે જે ધ્યાતાને સમાધિ થઈ હોય છે તેના

ચિત્તમાં એક પરિણામ આથમે છે જ્યારે બીજું ઊગતું હોય છે અને બંને પરિણામોને ચિત્ત અનુગત=લાગેલું જ હોય છે. ધ્યાતાની આ સ્થિતિ તેની સમાધિનો ભંગ થાય ત્યાં સુધી ચાલુ રહે છે. આનું નામ છે. ધર્મિ તરીકે ગણુતા ચિત્તનું એકાગ્રતા-પરિણામ.

સમાધિ-પારણામ અને એકાગ્રતા-પરિણામમાં ખાસ ફેર શો છે ?

ઉત્તરઃ– (૧) સમાધિ-પરિણામમાં ચિત્તની સર્વાર્થતા ભૂતકાળમાં ઊતરેલી હોય છે અને એકાગ્રતા વર્તમાન કાળમાં હોય છે. અને કોઇ પણ વૃત્તિ હોતી નથી.

(૨) એકાગ્રતા–પરિણામમાં વૃત્તિ હોય છે અને એ વૃત્તિ એક જ અર્થને વિષય કરનારી હોય છે. ચિત્તમાં એક પછી એક સમાનવૃત્તિ થયા કરવી એનું નામ એકાગ્રતા-પરિણામ. આમ વૃત્તિ હોવા ન હોવાને લીધે બંને પરિણામોમાં ભેદ જણાય છે.

મહર્ષિ પતંજલિ સાંખ્યશાસ્ત્રને જ અનુસરે છે પણ અહીં આટલું ધ્યાનમાં રાખવું કે સાંખ્યશાસ્ત્રમાં આવી જાતના ત્રણ પરિણામોનો ઉલ્લેખ નથી. અહીં ચિત્તનાં ત્રણ પરિણામો બતાવ્યાં છે. (૧) ચિત્તમાં વ્યુત્થાનનું આથમવું અને નિરોધનો ઉદય થવો એ ચિત્તનું ધર્મ-પરિણામ છે, કારણ કે વ્યુત્થાન અને નિરોધ એ ચિત્તના જ ધર્મો છે. (૨) સર્વાર્થતાનો ક્ષય થવો એ નિરોધ અને

એકાગ્રતાનો ઉદય થવો એ વ્યુત્થાનરૂપ ધર્મનાં લક્ષણ-પરિણામો છે.

(૩) એકાગ્રતા ઉપર થતાં તુલ્ય પરિણામો એ એકાગ્રતાનાં 'અવસ્થા'પરિણામો છે.

આમ ચિત્તના, (૧) ધર્મ-પરિણામ, ધર્મ ઉપર (૨) લક્ષણ-પરિણામ, અને લક્ષિત થયેલા ધર્મ ઉપર (૩) અવસ્થા-પરિણામ હોય છે. ધર્મ, લક્ષણ અને અવસ્થા આ ત્રણ પરિણામો ચિત્ત ઉપર હોય છે. તે સૂત્ર ૯ થી ૧૨ સુધીમાં સમજાવ્યું છે એ ધ્યાનમાં રાખવું. ॥ ૧૨ ॥

હવે આ ત્રણ પરિણામોનો અતિદેશ ભૂત (પૃથ્વી, પાણી, તેજ, વાયુ અને આકાશ) અને ઇંદ્રિયો ઉપર પણ બતાવે છે:

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥

પદાર્થ:- (एतेन) આ ચિત્તનાં ધર્મ, લક્ષણ અને અવસ્થારૂપ પરિણામોથી (भूतेन्द्रियेषु) પાંચ સૂક્ષ્મભૂત અને પાંચ મહાભૂત તથા ઇંદ્રિયોનાં (धर्मलक्षणावस्थापरिणामाः) ધર્મ; લક્ષણ અને અવસ્થારૂપ પરિણામો (व्याख्याताः) કહેવાઇ ગયાં છે.

ભાવાર્થ:- ધર્મપરિણામ, લક્ષણપરિણામ અને અવસ્થાપરિણામ જેમ ચિત્તનાં છે તેમ પાંચ મહાભૂત અને ઇન્દ્રિયોનાં છે એમ સમજી લેવું જોઇએ. વ્યુત્થાનનો અભિભવ અર્થાત દબાઇ જવું અને નિરોધનો પ્રાદુર્ભાવ થવો એ ચિત્તરૂપ ધર્મીનું ધર્મપરિણામ છે.

(૨) લક્ષણુપરિણામ = ભવિષ્યકાળ, વર્તમાનકાળ અને ભૂતકાળ અવસ્થામાં 'લક્ષણુ' શબ્દ વપરાય છે તે યોગશાસ્ત્રની 'તાંત્રિકી સંજ્ઞા' છે એમ સમજવું. નિરોધ ત્રણુ લક્ષણુવાળો છે એટલે કે ત્રણુ અધ્વથી જોડાયેલો છે. 'અધ્વ' શબ્દ પણુ કાળને માટે યોગશાસ્ત્રમાં વપરાય છે. નિરોધ ત્રણુ અધ્વથી જોડાયો છે એટલે ત્રણુ કાળથી જોડાયેલો છે. અનાગત અધ્વ (માર્ગ)ને છોડી દઇ ધર્મરૂપે જ રહી વર્તમાન લક્ષણુને પ્રાપ્ત થવું, કે જ્યાં નિરોધના સ્વરૂપની અભિવ્યકિત થાય છે. એ નિરોધરૂપ ધર્મનો બીજો અધ્વ (બીજો કાળ, વર્તમાન કાળ.) જ્યારે ધર્મ વર્તમાનમાં હોય છે ત્યારે પણુ અનાગત અને અતીત અધ્વ સાથે પણુ સૂક્ષ્મરૂપે છે એમ સમજવું.

વ્યુત્થાન ધર્મ પણુ ત્રણુ અધ્વથી જોડાયેલો છે. અનાગત અધ્વમાં હોવું એ પ્રથમ અધ્વ અને વર્તમાનકાળમાં આવવું એ એનો બીજો અધ્વ કહેવાય છે. વર્તમાનકાળમાં ધર્મ સ્પષ્ટરૂપે જણાય છે. આ પ્રમાણે નિરોધ પછી વ્યુત્થાન અને વ્યુત્થાન પછી નિરોધનું ચિત્તમાં ચાલતું રહેવાનું હોય છે. નિરોધ અથવા વ્યુત્થાન જ્યારે ભૂતકાળમાં જાય છે ત્યારે એ એનો ત્રીજો અધ્વ કહેવાય છે.

ચિત્તનું નિરોધરૂપમાં પરિણમવું એ ધર્મપરિણામ અને ધર્મનું ભવિષ્યકાળમાંથી વર્તમાનકાળમાં આવવું એ ધર્મનું લક્ષણુપરિણામ. ધર્મના લક્ષણુ ઉપર એટલે કે વર્તમાનકાળમાં રહેલા ધર્મ ઉપર જે પરિણામો થાય છે તે ધર્મનાં અવસ્થાપરિણામો છે.

ગુણવૃત્ત ધર્મ, લક્ષણ અને અવસ્થારૂપ પરિણામોથી કદી પણ અલગ હોતું નથી. ગુણોનો એ સ્વભાવ છે કે સદૈવ પ્રવૃત્તિવાળા રહેવું.

ભૂત અને ઇંદ્રિયોમાં પણ આવાં ત્રણ પરિણામો ચાલુ જ હોય છે.

માટીનું ઘડારૂપે બનવું એ (૧) ધર્મપરિણામ, ઘડાનું ભવિષ્યકાળમાંથી વર્તમાનકાળમાં આવવું એ (૨) લક્ષણ-પરિણામ, અને વર્તમાન દશામાં આવેલા ઘડા ઉપર થતા ફેરફારો એ (૩) અવસ્થાપરિણામ કહેવાય છે.

ઇંદ્રિયો ઉપર ત્રણ પરિણામ આ પ્રમાણે છે. દાખલા તરીકે :– ચક્ષુ ઇંદ્રિયની ઘટાકાર વૃત્તિ થવી એટલે કે ઘટનું આલોચન થવું એ ચક્ષુ ઇંદ્રિયનો (૧) ધર્મપરિણામ. ચક્ષુ ધર્મી છે અને આલોચન એ ધર્મ છે. આલોચનરૂપ ધર્મનું ભવિષ્યકાળમાંથી વર્તમાનકાળમાં ઉતરવું એ (૨) લક્ષણપરિ-ણામ કહેવાય છે અને વર્તમાન દશામાં આવેલા આલો-ચન ઉપર જે ફેરફાર થાય છે તે આલોચનરૂપ ધર્મનાં (૩) અવસ્થાપરિણામો છે. આ પ્રમાણે બીજી ઇંદ્રિયોના સંબંધમાં જાણી લેવું.

પરિણામ એટલે શું ?

अवस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरोत्पत्तिः परिणामः

વિદ્યમાન દ્રવ્યની પૂર્વધર્મરૂપે નિવૃત્તિ થવી અને બીજા ધર્મરૂપે ઉત્પત્તિ થવી તે પરિણામ. નિવૃત્તિ એટલે તિરોભાવ. ઉત્પત્તિ એટલે આવિર્ભાવ.

પ્રશ્નઃ- ધર્મ અને ધર્મી બંને જુદા જુદા છે કે એક જ છે ?

કથંચિત્ (અમુક રીતે) જુદાપણું છે અને કથંચિત્ (અમુક રીતે) જુદાપણું નથી. માટી એ ધર્મી છે અને ઘડો એ ધર્મ છે, કારણ કે, માટીમાંથી ઘડો બને છે. અહીં વિચારીએ કે ઘડાના સ્વરૂપમાં માટી સિવાય બીજું કશું જ નથી માટે ઘટરૂપ ધર્મ અને માટીરૂપ ધર્મી એક છે, જુદાપણું નથી. માટી અને ઘડાનો અભેદ છે.

બીજી રીતે જોઇએ તો ઘડામાં પાણી ભરી લાવવાની શકયતા છે, ઘડો પાણી લાવી શકે છે પણ માટી પાણી લાવી શકતી નથી, ઘડાના જેવો માટીનો આકાર પણ નથી દેખાતો, આ કારણથી ઘડો માટીથી જુદો છે એમ કહેવાય. આમ કથંચિત્ (અમુક રીતે) માટી અને ઘડામાં ભેદ રહ્યો છે. એટલે સાર એ નીકળે છે કે ધર્મ અને ધર્મી એકાંતભિન્ન નથી, એટલે બધી રીતે જુદા નથી. દ્રવ્યે અર્થાત્ ધર્મીએ બીજા સ્વરૂપમાં આવવું એ જ પરિણામ છે. ગુજરાતી ભાષામાં કહીએ તો આમ કહેવાય–દ્રવ્યમાં જે ફેરફાર થાય તે જ પરિણામ.

ખરી રીતે જોતાં ‘પરિણામ’ એક જ છે ત્રણ નથી, પણ વધારે સમજ પડે તેને ખાતર શાસ્ત્રકારે સૂક્ષ્મતાથી ત્રણ પરિણામો બતાવ્યાં છે. બધા જ ધર્મો પ્રકૃતિમાં વિદ્યમાન છે પણ તેઓના આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ થયા કરે છે. રાગ, દ્વેષ, ક્રોધ, લોભ અને મોહ

વગેરે ચિત્તનાં પરિણામો છે અને તે ચિત્તમાં સદૈવ રહે છે પણ જ્યારે ક્રોધનો આવિર્ભાવ થયો હોય ત્યારે બીજા રાગ વગેરેનો તિરોભાવ થયેલો હોય છે. એક લડવૈયો શત્રુ સાથે લડતો હોય છે ત્યારે તેનામાં ગુસ્સો જ ઊભરાતો હોય છે, પણ તેથી એમ ન સમજવું કે એનામાં એ જ વખતે પ્રેમ નથી. પ્રેમ છે પણ તિરોહિત છે, સૂક્ષ્મરૂપે છે. જ્યારે તે ઘેર પોતાનાં બાળબચ્ચાંને રમાડે છે ત્યારે તેનામાં પ્રેમ જ ઊભરાય છે. આમ ચિત્તમાં બધા જ આધ્યાત્મિક ધર્મો વિદ્યમાન છે તેમ જ પંચમહાભૂતોમાં પણ બધા જ ધર્મો વિદ્યમાન છે. જેનો આવિર્ભાવ હોય તે અનુભવાય છે અને જેનો તિરોભાવ હોય તે નથી અનુભવાતો, આ છે સાંખ્યશાસ્ત્રનું મન્તવ્ય. ॥ ૧૩ ॥

હવે આ ચોથા સૂત્રમાં ધર્મી કોને કહેવો તેનું લક્ષણ બાંધીને સમજાવે છે :

शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥

પદાર્થ:– (शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती) પોતાનું કાર્ય કરી, તથા વર્તમાન માર્ગનો ત્યાગ કરી જે ભૂતકાળમાં ચાલ્યો જાય છે તે 'શાન્ત' ધર્મ કહેવાય છે. જે પોતાનું કામ ચાલુ રાખે છે તે 'ઉદિતધર્મ' કહેવાય છે અને જે શક્તિરૂપે ઉપાદાનકારણમાં લીન છે, દૃષ્ટિગોચર કે અનુભવ-ગોચર જે નથી તે 'અવ્યપદેશ્ય' ધર્મ છે. અવ્યપદેશ્ય એટલે જેને માટે વાણીનો ઉપયોગ ન થઇ શકે. અનુપાતી =

આવા ત્રણેય ધર્મ સાથે ઉપાદાનકારણતારૂપે સંયુક્ત રહેલો જે અર્થ હોય છે તે (ધર્મી) ધર્મી કહેવાય છે.

ભાવાર્થઃ- જેમ ધનને જાણ્યા સિવાય 'ધની'ને ન ઓળખી શકાય તેમ, ધર્મને જાણ્યા સિવાય ધર્મીને ન ઓળખી શકાય. ગુજરાતી અને સંસ્કૃત ભાષાના એક શબ્દના ઘણા અર્થ થાય છે, પણ અહીં યોગદર્શનના પ્રકરણમાં ધર્મ જે ખાસ અર્થમાં વપરાયો છે તે ધ્યાનમાં લેવો, જેથી કરી સમજવામાં મુશ્કેલી ન નડે. સામાન્ય રીતે ધર્મ ત્રણ પ્રકારના હોય છે: (૧) ભૂતકાળમાં ગયેલો ધર્મ, વર્તમાનકાળમાં કામ કરતો ધર્મ અને ભવિષ્યકાળમાં રહેલો ધર્મ. આ ત્રણે ધર્મોનું અસ્તિત્વ સદાને માટે ધર્મીમાં છે જ, કારણ કે કોઇ વસ્તુનો અભાવ તો સાંખ્યશાસ્ત્રના સિદ્ધાંતમાં છે જ 'નહીં'. દાખલા તરીકેઃ- માટીમાંથી ઘડો બન્યો, એટલે ઘડો એ માટીનો ધર્મ થયો. આ ઘડો જ્યારે ફૂટી જાય છે ત્યારે તે ભૂતકાળમાં ગયો અને માટીમાં જ એ છે એમ કહેવાય. વર્તમાન કાળમાં ઘડો જ્યારે પાણી ભરવા આદિ કાર્યો કરે છે ત્યારે પણ તે માટીમાં જ છે અને જ્યારે ઘડો જણાતો નથી, ફૂટી ગયો એમ પણ જણાતું નથી ત્યારે તે ભવિષ્યકાળમાં છે અને માટીમાં જ છે એમ સમજવું.

ભૂતકાળમાં ગયેલો અને પોતાના ઉપાદાનકારણ માટીમાં વસેલો ઘડો, શાંત ઘડો કહેવાય છે, અથવા 'શાંતધર્મ' કહેવાય છે.

વર્તમાન ઘડો, ઉદિત ઘટ કહેવાય છે અને તે ઉદિત ધર્મ કહેવાય છે.

ઘડાની અનાગત અવસ્થા અથવા ઘડાનું ભવિષ્યકાળમાં ઉપાદાનકારણમાં હોવું, એ અવ્યપદેશ્ય ઘડો કહેવાય છે અથવા અવ્યપદેશ્ય ધર્મ કહેવાય છે.

આમ શાંત, ઉદિત અને અવ્યપદેશ્ય ઘડારૂપ ધર્મ સાથે સામાન્યરૂપે માટી જોડાયેલી જ હોય છે, માટે 'માટી' સર્વમાં અનુગત દ્રવ્યરૂપ 'ધર્મી' કહેવાય છે.

'અમુક કારણમાંથી જ અમુક કાર્ય ઉત્પન્ન થાય છે એવી જે ચોકસાઈ છે, તે જ યોગ્યતાવાળી શક્તિ, અને એ જ ધર્મ.' આમ સામાન્યરૂપે ધર્મનું લક્ષણ બાંધી શકાય છે. અને આવી રીતે ત્રિવિધ ધર્મની સાથે સદૈવ જે જોડાયેલ હોય છે તે જ 'ધર્મી' કહેવાય છે. માટીમાંથી આવિર્ભૂત થયેલો ઘડો એ ધર્મ છે અને માટીથી એક રીતે જુદો કહેવાય છે, કારણ કે, ઘડો પાણી લાવી શકે છે, માટી લાવી શકતી નથી. આ ઘડો વિશેષરૂપે માટી કહેવાય છે.

સામાન્ય માટી તો ઘડામાં છે જ કારણ કે માટી જો ઘડામાંથી અલગ થઈ જાય તો ઘડો જ ન રહે. આ કારણથી માટી એ સામાન્યરૂપે છે અને ઘડો એ વિશેષ-રૂપે છે.

સોનામાંથી બનતા બધા જ અલંકારો ધર્મો કહેવાય છે અને તે ત્રણે કાળમાં સોનામાં જ રહે છે. અલંકારોમાં

સોનું અનુગત હોવાથી તે ધર્મી છે અને બધા જ અલંકારો ધર્મો કહેવાય છે. આ પ્રમાણે એક જ દ્રવ્યનું સામાન્ય અને વિશેષરૂપે થઇને રહેવું એ જ ધર્મી-અને ધર્મ શબ્દના વ્યવહારનો આધાર છે. આ જ નિયમ પ્રકૃતિ અથવા પ્રધાનરૂપ દ્રવ્યને લાગુ પડે છે. પ્રકૃતિ એ સામાન્ય હોવાથી ધર્મી કહેવાય અને તેમાંથી બનતાં બધાં જ કાર્યો તેના ધર્મો કહેવાય છે.

આટલું ખાસ ધ્યાનમાં રાખવું જોઇએ કે જ્યારે એક ધર્મમાંથી કોઇ બીજો ધર્મ બને ત્યારે તે પૂર્વધર્મ પણ પછીના ધર્મનો ધર્મી કહેવાય છે. મૂળ ધર્મી તો પ્રકૃતિ જ છે.

ધર્મીમાં ભૂતકાળના અને ભવિષ્યકાળના ધર્મોનું અસ્તિત્વ અનુમાન-પ્રમાણથી સિદ્ધ થઇ શકે છે. મૂળ દ્રવ્યમાં એક પછી એક પરિણામો થયા કરે છે તેથી ધર્મોની પણ પરંપરા ચાલુ રહે છે, કારણ કે, જે પરિણામ થાય છે તે જ ધર્મ કહેવાય છે. પરિણામો અનેક છે એટલે ધર્મ પણ અનેક છે. ચિત્ત એક ધર્મી છે અને તેનાં પરિણામ, વ્યુત્થાન, નિરોધ વગેરે કહેવાય છે.

ધર્મીમાં એક જ સમયમાં બધા ધર્મો દૃષ્ટિગોચર થતા નથી, કારણ કે સૌ-સૌના દેશ, કાળ, આકાર અને નિમિત્તો જુદાં જુદાં હોય છે. આ જ કારણને લીધે શેરડીમાંથી ગોળ થાય છે પણ જુવાર, બાજરી, ઘઉં વગેરે થતાં નથી. શેરડી પણ સામાન્યરૂપે તો પૃથ્વી જ છે અને

વિશેષરૂપે શેરડી છે વગેરે સાંખ્યશાસ્ત્રના અભ્યાસથી સમજી શકાય છે. ॥ ૧૪ ॥

શું એક ધર્મીનું ધર્મ, લક્ષણ અને અવસ્થારૂપ એક જ પરિણામ છે કે એક ધર્મીનાં ધર્મ, લક્ષણ અને અવસ્થારૂપ અનેક પરિણામો છે? આ શંકાના સમાધાનને માટે આ નીચેના સૂત્રની રચના શાસ્ત્રકારે કરી છે:

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

પદાર્થઃ– (क्रमान्यत्वम्) ક્રમોની ભિન્નતા (परिणामान्यत्वे) પરિણામોના ભેદો હોવામાં (हेतु) કારણ છે.

ભાવાર્થઃ– ધર્મીનું પરિણામ એક જ છે એમ નહિ, પણ ધર્મીનાં પરિણામો અનેક છે એટલે કે ધર્મીમાંથી ધર્મરૂપ પરિણામોની પરંપરા સર્જાય છે. આ સૂત્રમાં આ વાત સિદ્ધાંતપક્ષે છે એમ સમજવું.

ધર્મીનાં પરિણામો અનેક છે. તેમાં દાખલો આ પ્રમાણે છેઃ– માટીમાંથી પિંડ પરિણમે છે આ પહેલું પરિણામ; પિંડમાંથી ઘડો પરિણમે છે આ બીજું પરિણામ; ઘડામાંથી તેના બે ભાગ (કપાલ) પરિણમે છે આ ત્રીજું પરિણામ. બે ભાગમાંથી ઠીકરાં પરિણમે છે આ ચોથું પરિણામ અને ઠીકરાંમાંથી ભૂકો પરિણમે છે આ પાંચમું પરિણામ. આમ આગળ અને આગળ પરિણામો થયાં જ કરે છે એટલે કે ધર્મીમાંથી ધર્મોની પરંપરા સર્જાય છે.

માટી એ ધર્મી છે અને તેમાંથી પરિણમેલો પિંડ એ ધર્મ છે. માટીમાંથી પિંડ બનતાં જે સમય લાગ્યો

તે માટી અને પિંડનો ક્રમ છે. પિંડમાંથી ઘડો પરિણમ્યો તેમાં પણ ઘડાનું પરિણામ થતાં જે વખતનું અંતર લાગ્યું એ વખતના અંતરને જ ક્રમ કહે છે. માટીરૂપ ધર્મીમાંથી ઘડારૂપ પરિણામ થયું અહીં પણ માટી અને પિંડના સમયનું જ અંતર છે, તે જ ક્રમ છે. માટી અને પિંડનું જે સમયરૂપ અંતર છે તે જ અંતર પિંડ અને ઘડાનું નથી, એ તો સ્પષ્ટ જ છે. આથી સમજાશે કે પહેલો ક્રમ અને પછી પરિણામ. માટે પરિણામનું નિમિત્તકારણ ક્રમ છે અને ક્રમો જુદા-જુદા હોય છે તેથી પરિણામો પણ જુદાં-જુદાં છે. આથી સમજવું જોઇએ કે ધર્મીનાં પરિણામો ઘણાં છે. સજીવ અને નિર્જીવ, સ્થાવર અને જંગમમાં આ પ્રમાણે ક્રમો અને પરિણામો થયાં જ કરે છે. ગુજરાતી સાદી ભાષામાં કહીએ તો આમ કહેવાય કે વસ્તુમાં ફેર-ફાર થયા જ કરે છે.

એક ધર્મમાંથી જ્યારે બીજો ધર્મ પરિણમે છે ત્યારે પછીના ધર્મની અપેક્ષાએ પૂર્વ ધર્મ ધર્મી કહેવાય છે. ધર્મી પણ જેમાંથી પ્રાદુર્ભૂત થયો હોય તેની અપેક્ષાએ 'ધર્મ'' કહેવાય છે. આમ સાંખ્યશાસ્ત્રની દૃષ્ટિએ ધર્મ અને ધર્મી અપેક્ષાકૃત હોવાથી અનેકાંત છે.

ધર્મ દૃશ્ય થતાં પહેલાં ધર્મીમાં અનાગત અવસ્થામાં વિદ્યમાન હોય છે અને અનાગત ધર્મ ભવિષ્ય અધ્વમાંથી અર્થાત્ ભવિષ્ય માર્ગમાંથી વર્તમાન અધ્વમાં આવી દૃશ્ય થાય છે અથવા લક્ષિત થાય છે. આમ ભવિષ્યમાંથી

ધર્મનું વર્તમાન કાળમાં ઊતરવું એ ધર્મનું **લક્ષણ-પરિણામ** કહેવાય છે. ધર્મપરિણામ સાથે લક્ષણ-પરિણામ હોય જ છે. ધર્મપરિણામોની પરંપરા પેઠે લક્ષણ-પરિણામોની પણ પરંપરા હોય છે.

વર્તમાન અધ્વ (માર્ગ)માં આવેલા ઘડા-આદિ ઉપર ક્રમ અને પરિણામ ચાલુ જ હોય છે. આ ક્રમ અને પરિણામને 'અવસ્થાપરિણામ' કહે છે. હરેક સજીવ અને નિર્જીવ પદાર્થ ઉપર અવસ્થાપરિણામ હોય છે. આથી સ્પષ્ટ સમજાશે કે, ધર્મ, લક્ષણ અને અવસ્થા પરિણામો સતત ચાલુ જ હોય છે.

ભૂતકાળમાં ગયેલા ધર્મમાં ક્રમ હોતો નથી, કારણ કે, ક્રમને એક પૂર્વ અને એક પર આમ બે અવધિઓ હોય છે. ભૂતકાળમાં ગયેલા ધર્મમાંથી કોઇ બીજું પરિણામ થતું નથી એટલે એને બે અવધિઓ નથી પણ એક જ અવધિ હોય છે તેથી ભૂતકાળના ધર્મને ક્રમ નથી અને ક્રમ ન હોવાથી તેનું પરિણામ પણ હોતું નથી, આથી ધર્મ, લક્ષણ અને અવસ્થા ત્રણ જ પરિણામો પ્રત્યેક ધર્મ-દીઠ હોય છે અને આવી ધર્મ, લક્ષણ અને અવસ્થાઓની પરંપરા સદૈવ ચાલુ જ હોય છે.

આ પરિણામોનું બહુત્વ વ્યાવહારિક દષ્ટિએ સમજવું. પારમાર્થિક દષ્ટિએ તો ધર્મ અને ધર્મીનો અભેદ હોવાથી ધર્મીનો ધર્મરૂપ એક જ પરિણામ છે. પિંડ અને ઘડો પારમાર્થિક દષ્ટિએ એક જ છે. પાણી ભરવા આદિ ક્રિયાઓ

ઘડામાં થાય છે, માટીના પિંડમાં થતી નથી, આ કારણે જ પિંડમાં અને ઘડામાં વ્યાવહારિક ભેદ છે.

પિંડરૂપ ધર્મી જે માટીરૂપ દ્રવ્યને આધારે વિદ્યમાન હોય છે તે જ માટીરૂપ સામાન્ય દ્રવ્ય ઘટમાં પણ અનુગત હોય છે. સામાન્ય દ્રવ્ય ધર્મી અને ધર્મ સાથે અનુગત ન રહે તો કોઈ પણ પરિણામ જ થઈ શકે નહિ.

ક્ષણિકત્વવાદી બૌદ્ધ લોકોની 'એક ધર્મમાંથી બીજો ધર્મ જન્મે છે, પૂર્વ ધર્મ નાશ પામે છે અને ઉત્તર ધર્મ જન્મે છે; બે ધર્મને જોડનાર કોઇ સામાન્ય દ્રવ્ય નથી.' આવી જે માન્યતા છે તે ઠીક નથી એમ આ સૂત્રમાં સૂત્રકારે ધ્વનિત કર્યું છે.

ચિત્તના ધર્મો બે પ્રકારના છે : (૧) પ્રત્યક્ષ અને (૨) અપ્રત્યક્ષ.

પ્રત્યક્ષ = પ્રત્યયાત્મક અથવા વૃત્યાત્મક. પ્રમાણુ આદિ તથા રાગ, દ્વેષ, સુખ, દુઃખ વગેરે ધર્મો મનથી અનુભવાય છે માટે તે પ્રત્યક્ષ ધર્મો કહેવાય છે.

અપ્રત્યક્ષ = કેવળ જે વસ્તુમાત્ર ધર્મો છે અને જેનો અનુભવ થઈ શકતો નથી, તે ધર્મો 'અપ્રત્યક્ષ' કહેવાય છે. ધર્મોનું અસ્તિત્વ આગમ અને અનુમાનથી જાણી શકાય છે.

ચિત્તગત અપ્રત્યક્ષ ધર્મો સાત છે તે નીચે આપેલા શ્લોકથી સમજી શકાય છે :

निरोधधर्मसंस्काराः परिणामोऽथ जीवनम् ॥
चेष्टा शक्तिश्च चित्तस्य धर्मा दर्शनवर्जिताः ॥

(૧) અર્થ: નિરોધ=ચિત્તની વૃત્તિઓની અસંપ્રજ્ઞાત-અવસ્થાને 'નિરોધ' કહેવામાં આવે છે. આ નિરોધરૂપ ધર્મ ચિત્તમાં હોય છે, તેનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન થતું નથી, પણ તે આગમ દ્વારા જાણી શકાય છે, તેમ તેનું અનુમાન પણ કરી શકાય છે.

(૨) ધર્મ=પાપ અને પુણ્ય. આ પણ આગમ=વેદ શાસ્ત્રથી જાણી શકાય છે. તથા સુખ અને દુઃખના ઉપ-ભોગથી અનુમાન પણ કરી શકાય છે. સુખના ઉપભોગથી પુણ્યનું અને દુઃખના ઉપભોગથી પાપનું અનુમાન થાય છે. પુણ્યનું ફળ સુખ હોય છે અને પાપનું ફળ દુઃખ હોય છે.

(૩) સંસ્કાર:– આ ધર્મ પણ ચિત્તમાં હોય છે અને તેનું સ્મૃતિથી અનુમાન થાય છે. સંસ્કાર હોય તો જ સ્મૃતિ થાય છે.

(૪) ચિત્તનું પણ પરિણામ થાય છે. આ પરિણામરૂપ ધર્મ ચિત્તમાં છે અને એનું અનુમાન ચિત્ત ત્રિગુણાત્મક છે તેથી થાય છે. જે ત્રિગુણાત્મક તેનું જરૂર પરિણામ થાય છે એટલે કે ચિત્ત પરિણામી છે.

(૫) જીવન:– જીવવું એટલે પ્રાણનું ધારણ. આ પ્રાણ-ધારણરૂપધર્મ ચિત્તમાં વિદ્યમાન છે અને એનું અનુમાન શ્વાસ અને પ્રશ્વાસને લીધે થાય છે. પ્રાણધારણ એક જાતનો પ્રયત્ન છે.

(૬) ચેષ્ટાઃ– આ ધર્મ પણ ચિત્તમાં છે અને તેનું ઇંદ્રિયો શરીરના જુદા જુદા ભાગોમાં રહી વિષયો સાથે જોડાય છે, આ જોડાણથી ચિત્તમાં ચેષ્ટા છે એવું અનુમાન થાય છે.

(૭) શક્તિઃ– પ્રત્યક્ષ કાર્યોની જે સૂક્ષ્મ અવસ્થા છે તે શક્તિ કહેવાય છે. સ્થૂલ અવસ્થાથી સૂક્ષ્મ અવસ્થાનું અનુમાન થાય છે. આથી ચિત્તમાં રહેલી શક્તિનું અનુમાન થાય છે.

આ પ્રમાણે ચિત્તમાં રહેલા અપ્રત્યક્ષ નિરોધ-આદિ ધર્મો આગમ અને અનુમાનપ્રમાણથી જાણી શકાય છે ॥ ૧૫ ॥

હવે જેણે યોગનાં બધાં સાધનો મેળવી લીધાં છે એવા યોગીએ જે જે વિષયો ઉપર સંયમ કરવાનો હોય છે તે વિષયોને બતાવે છે અને તેમાં સંપૂર્ણ વશીકાર થયા પછી જે જે સિદ્ધિઓ મળે છે તેને ક્રમથી બતાવે છે. અહીંથી આ પાદ પૂરો થાય ત્યાંસુધી ક્રમથી સિદ્ધિઓ બતાવવામાં આવશે.

સિદ્ધિઓ યોગીનું અંતિમ લક્ષ્ય નથી, છતાં એને બતાવવાનું કારણ એ છે કે યોગીને વિશ્વાસ બેસે કે યોગીની સાધના ખોટી નથી. જેમ સિદ્ધિઓ મળે છે તેમ અસંપ્રજ્ઞાત યોગ પણ મળે છે અને આત્માનો અને પ્રકૃતિનો વિવેક પણ જરૂર પ્રાપ્ત થાય છે અને એના પરિણામે સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠારૂપ મોક્ષ પણ મળે જ છે.

હવે ઉપર બતાવેલા ત્રણ પ્રકારના પરિણામ ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ છે તે બતાવે છે:

परिणामत्रयसंयमा दतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥

પદાર્થ:- (परिणामत्रयसंयमात्) ત્રણ પ્રકારના પરિણામો ઉપર સંયમ કરવાથી (अतीतानागतज्ञानम्) યોગીને તે તે વિષયના ભૂતકાળ અને ભવિષ્યકાળનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થ:- ધર્મ-પરિણામ, લક્ષણ-પરિણામ અને અવસ્થા-પરિણામ આવા ત્રણ પરિણામો આગળ સમજાવવામાં આવ્યા છે, તેના ઉપર સંયમ કરવાથી યોગીને તે તે વિષયના ભૂતકાળ અને ભવિષ્યકાળનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન થાય છે. ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ –આ ત્રણનું એક નામ 'સંયમ' છે અને એ 'પાતંજલ યોગશાસ્ત્ર'માં વપરાતો પારિભાષિક શબ્દ છે.

ચિત્ત ત્રિગુણાત્મક છે, સત્વ, રજસ્ અને તમસ્-આ ત્રણ છે. આમ સત્વગુણ પ્રકાશાત્મક છે અને તેનામાં સર્વજ્ઞાન હોવાની શક્યતા છે, પણ રજોગુણ અને તમોગુણથી તે સત્વ દબાયેલું રહે છે માટે હરેક માણસનું ચિત્ત સર્વજ્ઞ હોતું નથી. યોગ દ્વારા જ્યારે રજોગુણ અને તમોગુણ તેના ઉપરથી દૂર કરવામાં આવે છે ત્યારે તે ચિત્ત સર્વજ્ઞ બની શકે છે.

જોકે અયોગી વિદ્વાન્ તે તે વિષયમાં નિષ્ણાત હોય તો તે વિષયયોનું ત્રણે કાળનું સામાન્ય જ્ઞાન પ્રમાણોદ્વારા મેળવી શકે છે, પણ યોગી તો પ્રમાણોની સહાયતા વગર સંયમ અને સમાધિના બળથી ત્રણે કાળનું યથાર્થ જ્ઞાન મેળવી શકે છે.

પ્રશ્ન માત્ર એટલો જ છે કે, આવા યોગીઓનું હાલમાં અસ્તિત્વ જણાતું નથી અને આ યોગની દિશામાં કોઇ પદ્ધતિસરનું શિક્ષણ પણ જણાતું નથી. આપણે આશા રાંખીએ કે યોગનું લોકગમ્ય સફળ શિક્ષણ ચાલુ થાય. ॥ ૧૬ ॥

હવે એક બીજો સંયમનો વિષય સમજાવવામાં આવે છેઃ

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभाग
संयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

પદાર્થઃ– (शब्दार्थप्रत्ययानाम्) શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાનનો (इतरेतराध्यासात्) એકબીજા ઉપર અધ્યાસ અર્થાત્ અભેદનું આરોપણ કરવાને લીધે (संकरः) શબ્દ અર્થ અને જ્ઞાનની એકરૂપતા જણાય છે પણ વિવેક દ્વારા (तत्प्रविभागसंयमात्) તેઓના જુદા જુદા પ્રવિભાગ ઉપર સંયમ કરવાથી (सर्वभूतरुतज्ञानम्) સર્વ પ્રાણીઓના રુત એટલે શબ્દનું સંયમી યોગીને જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થઃ– શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાન આ ત્રણે જુદાં-જુદાં છે, છતાં માણસો તેઓને એક સમજી અથવા એ ત્રણે ઉપર એકતાનું આરોપણ કરી વ્યવહાર કરે છેઃ જેમકે, શિક્ષક શિષ્યને કહે છે કે 'ગાય' લખ, તો તે 'ગાય' શબ્દ લખી જણાવે છે, આપણે શબ્દને કાનથી ગ્રહણ કરીએ છીએ.

ગાય શબ્દનો અર્થ એક પશુ છે, જે આપણને દૂધ વગેરે આપે છે.

શબ્દ અને અર્થના જ્ઞાનને માટે પણ એ જ 'ગાય' શબ્દ વાપરીએ છીએ. એટલે 'ગાય' એ શબ્દ છે. 'ગાય' એ અર્થ છે અને 'ગાય' એ જ્ઞાન છે –આમ ત્રણને માટે એક ગાય શબ્દ જ વાપરીએ છીએ. તેવી જ રીતે બીજા શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાનમાં પણ વ્યવહાર કરીએ છીએ. જ્યારે વસ્તુસ્થિતિ જુદી છે. શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાન ત્રણે જુદા જુદા છે. ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે ત્રણે ઉપર અભેદનું આરોપણ કરવાથી તેઓની એકરૂપતા સમજાય છે. પણ સંયમ કરનાર યોગી આ ત્રણેના વિભાગ ઉપર એટલે કે ત્રણેના સ્વરૂપ ઉપર સંયમ કરે છે ત્યારે બધાં પ્રાણીઓ કયા અર્થને ઉદ્દેશીને બોલે છે તે સમજાય છે. એટલે કે સંયમદ્વારા યોગીને સર્વપ્રાણીઓના શબ્દોના અર્થોનું જ્ઞાન થાય છે.

સૂત્રકાર મહર્ષિ અને ભાષ્યકાર વ્યાસ આદિ ઋષિઓ અને આચાર્યો, આપણે જેને શબ્દ સમજીએ છીએ તેને કોઇ જુદા સ્વરૂપમાં સમજાવે છે તે જરા આપણે અહીં સમજી લઇએ.

મહર્ષિ પતંજલિ શબ્દને 'સ્ફોટ' કહે છે કારણ કે તેનાથી અર્થ સ્ફુટ થાય છે.

આ શબ્દ ક ખ ગ વગેરે વ્યંજનો અને સ્વરો નથી. તેમ તેઓ અનુક્રમમાં ગોઠવાયેલા હોય તે પણ શબ્દ નથી. અકાર આદિ વર્ણો તો કાનથી સંભળાય છે અને તે ખરા સ્ફોટરૂપ શબ્દ ઉપરથી આવરણ દૂર કરે છે.

આવરણ દૂર થતાં જ સ્ફોટ શબ્દ બુદ્ધિથી પકડાય છે અને તેનાથી શબ્દનો અર્થ આપણે સમજી લઇએ છીએ.

આમ માનવાનું કારણ એ છે કે, 'ગાય' એક શબ્દ છે અથવા એક પદ છે; પણ જો વર્ણોને કે જે અમુક ક્રમમાં ગોઠવાય છે તેને શબ્દ માનવામાં આવે તો 'ગાય' શબ્દ 'એક' છે એમ ન કહી શકાય, કારણ કે 'ગાય' શબ્દમાં ગ્, આ, ય્ અને અ. એમ ચાર વર્ણો છે. ચારને એક શી રીતે કહેવાય ? જો ચારના સમૂહને એક માનીએ તો તે પણ શક્ય નથી કારણ કે વર્ણ તો ઉત્પન્ન થઇ તરત નાશ પામે છે. જેમકે જ્યારે ગ્ બોલીએ છીએ ત્યારે 'આ' નથી હોતો અને જ્યારે 'આ' બોલીએ છીએ ત્યારે 'ગ્' નાશ પામેલો હોય છે. તેમ 'આ' ઉચ્ચારણ સાથે સાથે 'ય્' પણ નથી, 'ય્' જ્યારે બોલીએ છીએ ત્યારે 'આ' નાશ પામેલો હોય છે તે જ પ્રમાણે 'અ' બોલીએ છીએ ત્યારે 'ય્' નાશ પામેલો હોય છે. નાશ પામવું એટલે તિરોહિત થઇ જવું. આમ ક્રમથી ઉત્પન્ન થઇ અદૃશ્ય બની જતા વર્ણોનો સમૂહ કેવી રીતે થઇ શકે ? અર્થાત્ ન જ થઇ શકે અને તેથી વર્ણોના સમૂહને 'એક શબ્દ' કહી શકાય નહિ. એટલે વર્ણોથી જુદો સ્ફોટ શબ્દ માનવો પડે છે. આ સ્ફોટ શબ્દ કાનથી સંભળાતો નથી પણ તે તો બુદ્ધિથી ગ્રહણ કરી શકાય છે. ભાષ્યકાર વ્યાસ મુનિ સમજાવે છે કે 'पदं पुनर्नादानुसंहारबुद्धिनिर्ग्राह्यम्' શ્રોત્રદ્વારા દરેક વર્ણને સાંભળ્યા પછી જેમાં એકત્વ સમજાય છે તે 'પદ' કહેવાય છે. આ એકત્વ સમજનાર બુદ્ધિ છે

માટે 'સ્ફોટ' શબ્દ બુદ્ધિથી જ સમજાય છે. સ્ફોટ શબ્દ એક જ છે, એ સર્વ અર્થોને સમજાવવાની શક્તિ ધરાવે છે તેમાં ક્રમ નથી–જેમ ગાય વર્ણાત્મક શબ્દમાં ક્રમ છે તેમ. તે સ્ફોટ વર્ણરૂપ પણ નથી. તેના (સ્ફોટના) ભાગ થઈ શકતા નથી. અને અકાર આદિ વર્ણો સાંભળ્યા પછી તે આવિર્ભૂત થાય છે અને જલદી અર્થને સ્ફુટ કરી આપે છે. 'અમુક પદથી અમુક અર્થ સમજવો' આવો સંકેત પણ સ્ફોટ શબ્દમાં જ થાય છે, પણ અનાદિકાળથી વર્ણો કે જે માત્ર પદ ઉપરના આવરણને હટાવનાર છે તેઓનો અને ખરા સ્ફોટ શબ્દનો ભેદ=વિભાગ સમજાતો નથી તેથી લોકો અમુક ક્રમમાં ગોઠવાયેલા વર્ણોને સાચા શબ્દ તરીકે સમજે છે પણ આ ભૂલ છે. યોગી જે સંયમ કરે છે તે આ સ્ફોટરૂપ શબ્દ ઉપર, અર્થ ઉપર અને એ બંનેના જ્ઞાન ઉપર કરે છે.

શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાન આ ત્રણને સમજાવવા માટે ત્રણ શબ્દો ભાષામાં નથી માત્ર એક જ શબ્દ હોય છે. 'ગાય' એ શબ્દ છે, પેલો અર્થ 'ગાય' છે, આ બંને શબ્દ અને અર્થનું મને 'ગાયરૂપ' જ્ઞાન છે. આમ ત્રણને માટે 'ગાય' શબ્દ વપરાય છે. આવી જ રીતે તમામ શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાનને માટે એક જ શબ્દ પ્રયુક્ત થતો જણાય છે. એક પદ, એક શબ્દ આવો વ્યવહાર થતો હોવાથી અને આ વ્યવહાર ખોટો નથી માટે વર્ણોથી જુદો 'સ્ફોટ' રૂપ શબ્દ છે અને તેનું ગ્રહણ બુદ્ધિથી થાય છે. જેમ સમસ્ત કાર્યાત્મક જગત પ્રકૃતિનું જ પરિણામ છે, તેમ સ્ફોટ શબ્દ પણ પ્રકૃતિનું જ પરિણામ છે.

પ્રશ્નઃ– જો અકાર આદિ વર્ણો સાંભળવાથી સ્ફોટ શબ્દ ઉપરનું આવરણ હટી જતું હોય અને સ્ફોટથી અર્થ સમજાઇ જતો હોય તો 'જેણે ગાય શબ્દ પહેલી જ વખત સાંભળ્યો છે અને તેના અર્થની જરા પણ જાણ નથી તે માણસને ગાય શબ્દ સાંભળવાથી અર્થ કેમ સમજાતો નથી? પારકી ભાષાના વર્ણો સાંભળવામાં આવે છે છતાં તે ભાષાના શબ્દોના અર્થો કેમ સમજાતા નથી?'

ઉત્તરઃ– 'આ શબ્દથી આ અર્થ સમજવો'–આવો સંકેત અર્થ સમજવામાં સહકારી કારણ છે, તેથી જેને સ્ફોટના સંકેતનું જ્ઞાન નથી હોતું તેને વર્ણાત્મક શબ્દો સાંભળવા છતાં શબ્દોનો અર્થ સમજાતો નથી.

વર્ણ, પદ અને વાકય ત્રણ વાણીના વિભાગ છે એમ આપણે સમજીએ છીએ, પણ ખરી રીતે વાકયનિષ્ઠ જ અર્થ સમજાવવાની શક્તિ છે. એટલે વાકયથી જ સ્ફોટ શબ્દની અભિવ્યક્તિ થાય છે, માટે વાકયસ્ફોટ એ જ અર્થને સમજાવે છે. અર્થને સ્ફુટ કરી આપે છે.

જ્યારે આપણે એકલું પદ જ બોલીએ છીએ ત્યારે તે વાકયનો જ એક ભાગ હોય છે; જેમકે, 'ઘડો'–આ એક પદ આપણે બોલ્યા ત્યારે 'ઘડો' પદ એકલું પ્રયોજાયેલું નથી, પણ ઘડા સાથે 'છે' ક્રિયાપદનો અધ્યાહાર હોય છે. વાકયથી જ પૂરો અભિપ્રાય સમજાવી શકાય છે. આ કારણથી ખરી રીતે વાકયમાં જ અર્થબોધક શક્તિ માનવામાં આવે છે. વાકય જ ખરી રીતે સ્ફોટ શબ્દનું

અભિવ્યંજક છે અને 'સ્ફોટ શબ્દ' અભિવ્યંગ્ય છે. પદ અને વર્ણ તો વાકયના ભાગ હોવાથી 'પદસ્ફોટ' અને 'વર્ણસ્ફોટ' ગૌણ માનવામાં આવે છે. આવું શબ્દસ્ફોટવાદીઓનું માનવું છે. ॥ ૧૭ ॥

હવે જેનાથી પૂર્વજન્મોનું જ્ઞાન થાય છે એ સિદ્ધિને બતાવે છે:

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

પદાર્થ:– (संस्कारसाक्षात्करणात्) સંસ્કારો ઉપર સંયમ કરવાથી સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર થાય છે અને તેનાથી (पूर्वजातिज्ञानम्) પૂર્વજન્મોનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થ:– ચિત્તરૂપ ભૂમિમાં બે જાતના સંસ્કારો હોય છે: (૧) સ્મરણને ઉત્પન્ન કરનારા સંસ્કારો, (૨) જાતિ, આયુષ અને ભોગના કારણસ્વરૂપ સંસ્કારો (ધર્મ અને અધર્મ). જ્ઞાનથી જે સંસ્કારો પડે છે તે સ્મરણને ઉત્પન્ન કરે છે. અવિદ્યા-આદિ કલેશોથી જે સંસ્કારો પડે છે તે જન્મ, આયુષ અને ભોગનાં કારણ હોય છે. તેનું બીજું નામ ધર્મ અને અધર્મ છે. આમ સ્મૃતિજનક સંસ્કાર અને સુખ-દુઃખજનક સંસ્કાર, આ બંને સંસ્કારો ઉપર જ્યારે યોગી સંયમ કરે છે ત્યારે તેને સંસ્કારોના સાક્ષાત્કાર થાય છે અને પછી સંસ્કારસંયમી યોગીને પૂર્વ-જન્મોનું (પોતાના વીતી ગયેલા જન્મોનું) પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન થાય છે. દેશ, કાળ અને નિમિત્તના અનુભવ વગર સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર થઇ શકે નહિ, માટે તેના નિમિત્ત તરીકે

પૂર્વજન્મોનું જ્ઞાન થવું જ જોઇએ. કેવળ પોતાના જ ગત-જન્મોનું જ્ઞાન થાય છે એમ નહિ પણ, બીજાના જન્મોનું જ્ઞાન પણ સાક્ષાત્કાર-સંયમી યોગીને થઇ શકે છે. પોતાના સંસ્કારો ઉપર સંયમ કરે ત્યારે યોગીને પોતાના પૂર્વ-જન્મોનું જ્ઞાન થાય છે અને બીજાના સંસ્કારો ઉપર યોગી સંયમ કરે તો બીજાના પૂર્વજન્મોનું જ્ઞાન થાય છે અને હું અથવા તે ગયે જન્મે કોણ હતા તે યોગી કહી શકે છે.

આ ઠેકાણે ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિએ બે યોગીઓનો સંવાદ લખ્યો છે. એક યોગીનું નામ 'આવટ્ય' હતું અને બીજા યોગીનું નામ 'જૈગીષવ્ય' હતું. આવટ્ય યોગી નવું શરીર ધારણ કરી સ્વર્ગસુખ માણતા હતા. જ્યારે 'જૈગીષવ્ય' સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર કરી પૂર્વજન્મોને જાણતા હતા. આવટ્ય યોગી નવા શરીરે સુખ ભોગવતા હતા તેથી તે 'તનુધર' કહેવાતા હતા. એક દિવસ તેઓ બંને ભેગા થયા ત્યારે તનુધર આવટ્ય યોગીએ જૈગીષવ્ય યોગીને પ્રશ્ન પૂછ્યો કે, હે ભગવન્ યોગિવર જૈગીષવ્ય, આપને વીતેલી દસ મહા સૃષ્ટિઓનું જ્ઞાન છે અને હવે તો તમને પ્રકૃતિ અને પુરુષના વિવેકનું પણ જ્ઞાન થયું છે. ગયેલી મહાસૃષ્ટિઓમાં આપે ઘણા વિવિધ શરીરોમાં જન્મ લીધો હશે અને સુખ-દુઃખ અનુભવ્યાં હશે, તો તમે કઈ યોનિમાં અર્થાત્ કયા શરીરમાં વધારે સુખ મેળવ્યું ? કૃપા કરી આનો ઉત્તર આપો. જૈગીષવ્ય યોગીએ તનુધર આવટ્ય યોગીને આ પ્રમાણે ઉત્તર આપ્યોઃ

યોગિરાજ, તનુધર આવટ્ય મહારાજ, સાંભળો, મારી બુદ્ધિ કેવળ સત્વગુણી હોવાને લીધે હું જાણી શકું છું કે મેં ગયેલી દસ મહાસૃષ્ટિઓમાં શરીર ધારણ કર્યાં છે અને સુખ-દુઃખો અનુભવ્યાં છે. પણ મેં મનુષ્ય યોનિમાં તથા બીજા એના કરતાં ય ઉચ્ચ કોટિના શરીરમાં જે સુખો ભોગવ્યાં તે બધાંને હું તો દુઃખકોટિમાં નાંખું છું.

તનુધર ભગવન્, આવટ્ય યોગીએ ફરીથી પૂછ્યું કે, આપને તો અત્યારે વિવેકજ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયેલું છે અને પ્રકૃતિ અર્થાત્ જગતના મૂળ ઉપાદાનકારણ ઉપર પણ આપનું પ્રભુત્વ છે અને અનુત્તમ સંતોષ અનુભવો છો; તો શું આ અનુત્તમ સંતોષથી થતું સુખ પણ આપને દુઃખ લાગે છે ?

ભગવન્ જૈગીષવ્યે ઉત્તર આપ્યો કે 'ભાઈ, આવટ્ય, જરા ધ્યાન દઈને સાંભળો. તમે પણ યોગી છો અને આ દિવ્ય શરીરને ધારણ કરી સુખ માણો છો, પણ હું તો અનુત્તમ સંતોષથી જે સુખ અનુભવું છો તેને પણ દુઃખ પક્ષમાં નાખું છું. કારણ કે વિવેકથી ઉત્પન્ન થતું સુખ એ મોક્ષસુખ નથી. એમાં પણ પ્રકૃતિનો સંબંધ તો છે જ; કેવળ મોક્ષસુખ એ જ ઉત્તમમાં ઉત્તમ સુખ છે. ત્યાં પ્રકૃતિનો રજોગુણ કે તમોગુણ ડોકિયું કરી શકતો નથી. એ તો ત્રિગુણાતીત સુખ છે, આત્મસ્વરૂપ કૈવલ્ય છે, વિવેક-જન્ય સુખમાં તૃષ્ણાનો ક્ષય હોય છે તેથી જ તે અનુત્તમ

સુખ કહેવાય છે, છતાં તે આત્મસાક્ષાત્કારરૂપ મોક્ષને તુલ્ય તો ન જ થઈ શકે. ॥ ૧૮ ॥

હવે બીજા માણસના ચિત્ત ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ મળે છે તે બતાવે છે :

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

પદાર્થ:- (प्रत्ययस्य) બીજા માણસની રાગદ્વેષ-આદિવાળી ચિત્તવૃત્તિ ઉપર સંયમ કરવાથી (परचित्तज्ञानम्) બીજા માણસના ચિત્તનું જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થ:- પ્રત્યક્ષ શબ્દનો અર્થ યોગશાસ્ત્રમાં ચિત્તના પરિણામરૂપ વૃત્તિ થાય છે. યોગીની પાસે કોઇ માણસ આવી ઊભો રહે એટલે તેના મુખ આદિના વિકારથી સામાન્ય રીતે યોગી તેનું ચિત્ત જાણી લે છે, પછી એના ચિત્ત ઉપર યોગી સંયમ કરે છે, એટલે યોગીને જ્ઞાન થાય છે કે આ માણસનું ચિત્ત રાગવાળું અથવા દ્વેષવાળું છે કે સાત્વિક ગુણવાળું છે. યોગીને યથાર્થ જ્ઞાન હોય છે, તેમાં ભૂલ કે સંદેહ હોતાં નથી. ॥ ૧૯ ॥

પારકાના ચિત્તને જાણવામાં જે વિશેષતા રહી જાય છે તે આ સૂત્રમાં સમજાવે છે :

न तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥ २० ॥

પદાર્થ:- (तत्) તે પારકા માણસનું ચિત્ત (सालम्बनम्) જે આલંબનવાળું હોય છે (न) તે આલંબન યોગીને જ્ઞાત થતું નથી. (तस्य) તે આલંબન (अविषयीभूतत्वात्) યોગના સંયમનો વિષય ન બન્યું હોવાથી.

ભાવાર્થઃ- યોગી પારકાની ચિત્તવૃત્તિને રાગ આદિ ધર્મવાળી તરીકે સંયમ દ્વારા જાણી શકે છે, કારણ કે રાગ આદિ ધર્મો ચિત્તમાં એકતા પામીને રહેલા હોય છે, પણ પારકાના ચિત્તે કોની ઉપર પ્રેમ કે દ્વેષ કર્યો છે તે યોગી જાણી શકતો નથી. કારણ કે તે વિષય ચિત્તથી ભિન્ન હોય છે. માટે સામાન્ય રીતે અનુમાન આદિ પ્રમાણો દ્વારા એ વિષયને જાણ્યા પછી તેના ઉપર યોગી સંયમ કરે તો તે પારકાના ચિત્તના વિષયને પણ જાણી શકે છે અને કહી શકે છે કે 'તને અમુક વિષય ઉપર પ્રેમ છે અથવા દ્વેષ છે' વગેરે. કોઇ પણ વિષયને સામાન્ય રીતે જાણ્યા પછી જ તેના ઉપર યોગી સંયમ કરી શકે છે અને તેનું યથાર્થ જ્ઞાન યોગી મેળવી શકે છે. ॥ ૨૦ ॥

હવે યોગીએ પોતાનું અંતર્ધાન કેમ કરવું ? તે સિદ્ધિને સમજાવવામાં આવે છે :

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे
चक्षुष्प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ २१ ॥

પદાર્થઃ- (कायरूपसंयमात्) શરીરના રૂપ ઉપર સંયમ કરવાથી (तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे) રૂપની અંદર ગ્રાહ્યશક્તિ છે તે રોકાઇ જતી હોવાથી (चक्षुष्प्रकाशासम्प्रयोगे) આંખના પ્રકાશનો સંબંધરૂપ સાથ ન થવાથી (अन्तर्धानम्) અંતર્ધાન થાય છે.

ભાવાર્થઃ- શરીર પાંચ મહાભૂતોમાંથી બન્યું છે, તેથી તેમાં રૂપ, રસ, ગંધ, સ્પર્શ અને શબ્દ આ પાંચ ગુણો

છે. યોગી જ્યારે રૂપ ઉપર સંયમ કરે ત્યારે રૂપમાં જે ગ્રાહ્યશક્તિ છે તે પ્રતિબદ્ધ થઈ જાય છે જેથી કરી આંખનાં પ્રકાશ-કિરણોનો સંબંધ રૂપ સાથે થઇ શકતો નથી. આ એક પ્રબળભાવનાનું સામર્થ્ય છે. આંખના પ્રકાશનો સંબંધ રૂપ સાથે ન થવાથી શરીર અદૃશ્ય બની જાય છે એટલે લોકો તેને જોઇ શકતા નથી. આથી યોગી અન્તર્હિત થઈ જાય છે. આ સિદ્ધિ યોગીને જ્યારે જરૂર પડે ત્યારે કરી શકે છે. આ જ પ્રમાણે રસ, ગંધ, સ્પર્શ, અને શબ્દ ઉપર પણ સંયમ યોગી કરી શકે છે અને એ ગુણોની શક્તિનો પ્રતિબંધ થવાથી યોગીના શરીરના રસ, ગંધ, સ્પર્શ અને શબ્દ પણ કોઈ પણ પ્રાણીથી ગૃહીત થઇ શકતા નથી. આ શક્તિ મેળવી યોગી પ્રાણીઓના ઉપદ્રવથી સદા દૂર રહી નિર્ભય બની રહે છે. ॥ ૨૧ ॥

હવે યોગી પોતાના મૃત્યુનો સમય જેથી જાણી શકે છે એ સિદ્ધિ બતાવે છે :

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञान-मरिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥

પદાર્થ:– (सोपक्रमं) ફળ આપવા માટે જે કર્મમાં શીઘ્રતા હોય તે (च) અને (निरुपक्रमम्) જે કર્મમાં મંદતા હોય તે, આ કર્મ (तत्संयमात्) ઉપર સંયમ કરવાથી (अपरान्तज्ञानम्) અપરાન્ત એટલે મરણ, તેનું જ્ઞાન થાય છે. (वा) અથવા (अरिष्टेभ्यः) અરિષ્ટોથી પણ મરણનું જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થઃ- બહુ વેગવાળું કર્મ હોય છે તેમ અલ્પ વેગવાળું કર્મ પણ હોય છે. જે સોપક્રમ કર્મ અર્થાત્ અતિવેગવાળું કર્મ હોય છે તે ઝડપથી ફળનો=સુખ-દુઃખોનો ઉપભોગ કરાવે છે અને જે નિરુપક્રમ કર્મ હોય છે તે ધીમે ધીમે ફળનો ઉપભોગ કરાવે છે. ઉદાહરણ તરીકે, ભીનું કપડું એકવડું કરી તડકે સૂકવવાથી તે જલદી સૂકાઇ જાય છે અને એ ભીનું કપડું ચારવડું કરી જ્યાં તડકો કે પવન ન હોય તેવી જગ્યા ઉપર રાખવાથી ધીમે ધીમે સૂકાય છે. આ પ્રમાણે સોપક્રમ કર્મ ઉપર સંયમ કરવાથી મૃત્યુ જલદી થશે, અમુક વરસે અમુક માસે અમુક દિવસે અને અમુક વખતે થશે, એવું યોગીને સ્પષ્ટ જ્ઞાન થાય છે. નિરુપક્રમ કર્મ ઉપર સંયમ કરવાથી મૃત્યુ લાંબે ગાળે થશે અને તેનાં તિથિ, વાર પણ જાણી શકે છે.

અરિષ્ટોથી પણ યોગીને મરણનું જ્ઞાન થાય છે. અરિષ્ટ એટલે જે અરિવત્ (શત્રુની માફક) ત્રાસ આપે એવા બનાવો. સંયમ ન કરે તોપણ અરિષ્ટોથી યોગીને મરણની ખબર પડી જાય છે. આધ્યાત્મિક, આધિભૌતિક અને આધિદૈવિક અરિષ્ટો હોય છે, શાસ્ત્રોમાં આ અરિષ્ટો બતાવ્યાં છે તે જાણી લેવાં. યોગી અરિષ્ટોથી ચોક્કસ મરણનો સમય જાણે છે. જ્યારે સામાન્ય માણસો અરિષ્ટોને સમજી અસ્પષ્ટ રીતે મરણનો સમય જાણી શકે છે. બીજાના મરણનો સમય પણ યોગી કહી શકે છે. કર્મનું ફળ આયુષ હોય છે. માટે કર્મ ઉપર સંયમ કરવાથી આયુષની સમાપ્તિનું જ્ઞાન થવું

એ સ્વાભાવિક છે. જેમ ગાડીનો વેગ જાણી ગાડી અમુક ઠેકાણે અમુક વખતે ચોક્કસ પહોંચી જશે. તેમ શીઘ્ર અથવા મંદ કર્મ અમુક વખતે મરણ સુધી પહોંચી જશે. ॥ ૨૨ ॥

હવે મૈત્રી આદિ જે પરિકર્મ તરીકે કહેવામાં આવ્યાં છે તેના ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ મળે છે તે બતાવે છે:

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

પદાર્થઃ– (मैत्र्यादिषु) મૈત્રી, કરુણા અને મુદિતા ઉપર સંયમ કરવાથી (बलानि) મૈત્રી વગેરેમાં પુષ્કળ બળ મેળવે છે.

ભાવાર્થઃ– મૈત્રી, કરુણા અને મુદિતા ઉપર ખૂબ ભાવના કરી સંયમ કરવાથી યોગીનું મૈત્રીબળ વધી જાય છે તેથી તે લોકોને સુખી કરી શકે છે, લોકોમાં દ્વેષભાવ ખૂબ ઓછો કરાવી શકે છે, કરુણાની ભાવનાથી ગરીબ લોકોનાં દુઃખ ટાળી શકે છે. મુદિતા ઉપર સંયમ કરવાથી યોગી સદૈવ નિર્લોભ રહી સંતોષી થઇ સદૈવ સુખી રહે છે. ઉપેક્ષા ઉપર ભાવના હોતી નથી તેથી તેમાં સમાધિ પણ હોતી નથી, માટે ઉપેક્ષામાં બળ હોતું નથી. ઉપેક્ષા એટલે ઉદાસીનતા. આમાં ભાવના કે સંયમ હોતો નથી એટલે એનાથી કોઈ પણ જાતની સિદ્ધિ થતી નથી. ॥૨૩॥

બીજી સિદ્ધિઓ બતાવે છે:

बलेषु हस्तिबलानि ॥ २४ ॥

પદાર્થઃ– (बलेषु) હાથી વગેરેના બળ ઉપર સંયમ કરવાથી (हस्तिबलानि) હાથીના જેટલું બળ મેળવે છે.

ભાવાર્થઃ- યોગી હાથીના બળ ઉપર ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ કરી હાથીના જેટલું બળ મેળવે છે. ગરુડના બળ ઉપર સંયમ કરી તેના જેટલી ઝડપ પોતામાં મેળવી શકે છે. વાયુ ઉપર સંયમ કરવાથી વાયુ જેટલો વેગ પોતામાં ઉત્પન્ન કરી શકે છે વગેરે. ॥ ૨૪ ॥

સૂક્ષ્મ, વ્યવહિત અને દૂર અર્થોનું જ્ઞાન યોગીને કેવી રીતે થાય છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २५ ॥

પદાર્થઃ- (प्रवृत्त्यालोकन्यासात्) વિષયવતી અને જ્યોતિષ્મતી પ્રવૃત્તિનો જે સાત્વિક પ્રકાશ છે તેના વિષય ઉપર ન્યાસ કરવાથી (सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम्) ખૂબ સૂક્ષ્મ, વ્યવહિત પૃથ્વી આદિના ઊંડાણમાં રહેલા અને ખૂબ જ દૂર રહેલા વિષયોનું જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થઃ- સમાધિ-પાદમાં બે પ્રવૃત્તિઓ કહેવામાં આવી છે. જેમકેઃ-विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धनी ॥ ३५ ॥ (યોગ. પા. ૧, સૂત્ર ૩૫.) विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६. (યોગ. પા. ૧ સૂત્ર ૩૬.) બે પ્રવૃત્તિઓનો જે આલોક એટલે સાત્વિક પ્રકાશનો ફેલાવ છે, એ સાત્વિક પ્રકાશના ફેલાવને વિષયો ઉપર નાખવાથી અંતઃકરણ સહિત બાહ્ય બધી ઇંદ્રિયોમાં ખૂબ શક્તિઓ વધી જાય છે. અને તેથી વિષય ગમે તેટલો સૂક્ષ્મ હોય અથવા ભૂમિના દૂર સુદૂર ઊંડાણમાં દટાયેલો હોય તથા પૃથ્વી ઉપર ગમે ત્યાં દૂર અર્થ પડ્યો હોય તો તે તે વિષયોનું

યોગીને જ્ઞાન થાય છે. આ ઠેકાણે ત્રિગુણાત્મક ચિત્તના સાત્વિક પ્રકાશની વ્યાપકતા બતાવવામાં આવી છે. જો વિષયવ્યાપી સાત્વિક પ્રકાશ ન હોય તો વિષયોનું જ્ઞાન થઈ શકે નહિ. વિષય અને સાત્વિક પ્રકાશના સંબંધથી જ જ્ઞાન થાય છે. યોગી પ્રણિધાન દ્વારા ચિત્તના સાત્વિક પ્રકાશને સૂક્ષ્મ, વ્યવહિત અને દૂરસ્થ અર્થ ઉપર ફેંકી શકે છે. જેમ સાધારણ માણસ આંખના પ્રકાશને નજીકના વિષય ઉપર નાખે છે તેમ. ॥ ૨૫ ॥

હવે સૂર્ય ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ મળે છે તે સમજાવે છે :

भुवनज्ञानं सूर्यसंयमात् ॥ २६ ॥

પદાર્થઃ- (सूर्यसंयमात्) સૂર્ય કે જે ભૌતિક પ્રકાશમય છે તેના ઉપર સંયમ કરવાથી (भुवनज्ञानम्) આકાશમાં જે લોક–લોકાન્તર છે તેનું જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થઃ- સૂર્ય ભૌતિક પ્રકાશમય છે, તેના ઉપર સંયમ કરવાથી જેટલા પૃથ્વી આદિ ભુવનોના ગોળા આકાશમાં ઘૂમી રહ્યા છે તેનું જ્ઞાન યોગીને થાય છે. આગળના સૂત્રમાં આધ્યાત્મિક સત્વગુણના પ્રકાશની સિદ્ધિઓ બતાવી છે ત્યારે આ સિદ્ધિ ભૌતિક પ્રકાશના જ્ઞાનને લીધે છે. ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિએ આના ઉપર વિસ્તારપૂર્વક ભાષ્ય કર્યું છે અને ભુવનો કેટલાં છે તે બતાવ્યું છે પણ તે આધુનિક સમયમાં તેમનાં કંઇક નામાન્તર હોવાથી તથા સમયની દીર્ઘતામાં ભૂગોળ આદિના ફેર-

ફારોને લીધે સમજવાની પૂરેપૂરી શક્યતા જણાતી ન હોવાથી અમે એ ભાષ્યનું અનુસરણ કર્યું નથી. આ સકલભુવનનો સાક્ષાત્કાર આ યોગશાસ્ત્રમાં 'મધુમતી' સિદ્ધિ નામે ઓળખાય છે એમ યોગસુધાકરનામક ભાષ્યમાં લખ્યું છે. ॥ ૨૬ ॥

હવે ચંદ્ર ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ મળે છે તેને સમજાવે છે :

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

પદાર્થઃ- (चन्द्रे) ચંદ્ર ઉપર સંયમ કરવાથી (ताराव्यूहज्ञानम्) તારાઓની તથા નક્ષત્રોની રચના અને તેની ગતિનું જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થઃ- ચંદ્ર ઉપર સંયમ કરવાથી યોગીને તારાઓની રચના કેવી છે, તે શામાંથી બન્યા છે, વગેરેનું જ્ઞાન થાય છે. સૂર્ય ઉપર સંયમ કરવાથી તારાના વ્યૂહનું (રચનાનું) જ્ઞાન થતું નથી, કારણ કે સૂર્યના પ્રકાશથી તારાઓના પ્રકાશનો અભિભવ થઈ જાય છે તેથી તે દેખાઈ શકતા નથી. માટે ચંદ્રના ઉપર સંયમની સિદ્ધિ અપેક્ષિત છે. ॥ ૨૭ ॥

ધ્રુવ ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ મળે છે તે બતાવે છે :

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥

પદાર્થઃ- (ध्रुवे) જ્યોતિષમાં મુખ્ય ગણાતા પ્રકાશમય ધ્રુવ તારા ઉપર સંયમ કરવાથી (तद्गतिज्ञानम्) તારાઓની ગતિનું જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થ:- ધ્રુવ તારા ઉપર સંયમ કરવાથી એ તારાની તથા બીજા તારાઓની ગતિનું જ્ઞાન થાય છે. કયા તારામાં કેટલી ગતિ છે અર્થાત્ અમુક સમયમાં તે કેટલો ચાલે છે વગેરેનું જ્ઞાન થાય છે, જોકે ગણિત અને અનુમાન-પ્રમાણોથી વિદ્વાનોએ તારાઓની ગતિનું માપ કાઢયું છે પણ યોગીને પ્રમાણ નિરપેક્ષ સંયમથી જ પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન થાય છે. યોગીની આ વિશેષતા છે. ॥ ૨૮ ॥

હવે 'નાભિચક્ર' ઉપર સંયમ કરવાથી મળતી સિદ્ધિને બતાવે છે :

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥

પદાર્થ:- (नाभिचक्रे) શરીરના મધ્ય ભાગમાં નાભિ= ડૂંટી છે તેને નાભિચક્ર કહે છે; તેના ઉપર સંયમ કરવાથી (कायव्यूहज्ञानम्) શરીરની રચનાનું જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થ:- યોગીએ નાભિચક્ર ઉપર સંયમ કરી શરીરની રચના, નાડી વગેરેની જે સ્થિતિ છે તેનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન મેળવવું જોઇએ. નાભિમાંથી ચારે તરફ નાડીઓ ફેલાઇ છે. વાત, પિત્ત અને કફ આ ત્રણ દોષો છે: वातपित्त-श्लेष्माणस्त्रयो दोषाः' ઈત્યાદિ આ સૂત્ર ઉપરનું ભાષ્ય જિજ્ઞાસુ-ઓએ જોવું અને ત્વચા, લોહી, માંસ, સ્નાયુ, અસ્થિ, મજ્જા અને શુક્ર અર્થાત્ વીર્ય-આ સાત ધાતુઓનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવું જોઇએ. ॥ ૨૯ ॥

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥

પદાર્થ:- (कण्ठकूपे) ગળાના કૂપમાં સંયમ કરવાથી (क्षुत्पिपासानिवृत्ति) ભૂખ અને તરસની નિવૃત્તિ થાય છે.

ભાવાર્થ:- જીભના મૂળમાં એક તંતુ છે, એ તંતુની નીચે કંઠ છે અને તેની નીચે કૂવાના આકારનો ખાડો છે, ત્યાં પ્રાણવાયુનો સ્પર્શ થવાથી ભૂખ અને તરશ લાગે છે માટે તેના ઉપર સંયમ કરવાથી યોગીને ભૂખ અને તરસ લાગતાં નથી. આ ખાડાનો આકાર ઠેઠ હૃદય સુધી લંબાયેલો હોય છે. કંઠકૂપ ઉપર ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિદ્વારા ચિત્તને સ્થિર કરવાથી આ સિદ્ધિ મળે છે. આ બધું વ્યાસભાષ્યનું ભાષાન્તર છે. ॥ ૩૦ ॥

કૂર્મ નાડી ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ મળે છે તે બતાવે છે :

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३१ ॥

પદાર્થ:- (कूर्मनाड्याम्) કૂર્મ નાડી ઉપર ચિત્તનો સંયમ કરવાથી (स्थैर्यम्) ચિત્તમાં સ્થિરતા આવે છે.

ભાવાર્થ:- કંઠ = ગળાના ખાડાની નીચે કાચબાના આકારની નાડી છે, તેના ઉપર સંયમ કરવાથી ચિત્તમાં સ્થિરતા આવે છે. શરીરમાં પણ સ્થિરતા આવે છે. આ ઠેકાણે સંયમ સ્થિર થયા પછી યોગીનું શરીર ચંચળતાથી શૂન્ય બની જાય છે, કાષ્ઠ અને પાષાણ જેટલી નિઃસ્પંદતા આવે છે અને સંયમ ન છૂટે ત્યાં સુધી એવી ને એવી સ્થિતિમાં યોગી દિવસો અને મહિનાઓ સુધી રહી શકે છે. (જુઓ વ્યાસભાષ્ય.) ॥ ૩૧ ॥

હવે બ્રહ્મરંધ્ર ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે તેને બતાવે છે:

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥

પદાર્થ:- (मूर्धज्योतिषि) મસ્તક અને કપાળની વચ્ચે એક છિદ્ર છે તેને બ્રહ્મરંધ્ર કહે છે, ત્યાં સાત્વિક પ્રકાશ ભરાયલો હોય છે, એ પ્રકાશ ઉપર સંયમ કરવાથી (सिद्ध-दर्शनम्) સિદ્ધ-પુરુષોનું દર્શન થાય છે.

ભાવાર્થ:- શરીરની અંદર સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ ત્રણે ગુણો છે. બ્રહ્મરંધ્રમાં આ પ્રકાશ વિશેષ પ્રમાણમાં હોય છે. ત્યાં સુષુમ્ણા નાડી પણ છે. તેના ઉપર સંયમ કરવાથી સંયમી યોગીને સિદ્ધિ પામેલા યોગીઓનું દર્શન થાય છે. આ યોગીઓ બીજા લોકોને અદૃશ્ય હોય છે. અદૃશ્ય થવાની સિદ્ધિ પણ આગળ બતાવવામાં આવી છે. યોગીઓ સિદ્ધિના બળે જેમ પૃથ્વી ઉપર અદૃશ્ય રહી ફરે છે તેમ આકાશમાં પણ અદૃશ્ય રહી ફરતા હોય છે. બ્રહ્મરંધ્રના પ્રકાશ ઉપર સંયમ સાધનાર યોગી તેમને જોઇ શકે છે અને તેમની સાથે વાર્તાલાપ પણ કરી શકે છે. આ બધું અયોગીને અગમ્ય હોય છે, માટે તેના ઉપર તર્ક-વિતર્ક કરવા મિથ્યા છે. જાણવા ઇચ્છનારે યોગી થઈ સંયમ સિદ્ધિ મેળવવી રહી. ॥ ૩૨ ॥

યોગી સર્વજ્ઞ ક્યારે થાય છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥

પદાર્થ:- (प्रातिभाद्) પ્રાતિભ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તેનાથી (सर्वम्) સર્વ જાણે છે. (वा) અથવા.

ભાવાર્થઃ- અથવા જ્યારે પ્રાતિભજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તેનાથી યોગી સર્વ વિષયોને જાણી શકે છે. જે સર્વ વિષયોને યથાર્થ જાણે તે સર્વજ્ઞ કહેવાય છે. એટલે કે જ્યારે યોગીને પ્રાતિભજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તે 'સર્વજ્ઞ' કહેવાય છે. 'અથવા' કહેવાનું કારણ એ છે કે જો પ્રાતિભજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય તો આગળ જે જે સિદ્ધિઓ બતાવવામાં આવી છે તેની જરૂર રહેતી નથી.

'પ્રતિભા' એટલે કોઈ પણ નિમિત્તની અપેક્ષા રાખ્યા વગર કેવળ મનમાંથી યથાર્થ ઓચિંતું જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય તે. પ્રતિભામાં સંયમ કરવાથી પ્રાતિભજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. જેમ સૂર્ય ઊગ્યા પહેલાં અરુણનો ઉદય થાય છે તેમ વિવેકજ જ્ઞાન થયા પહેલાં પ્રાતિભજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. પ્રાતિભજ્ઞાનને 'તારક' જ્ઞાન કહેવામાં આવે છે, કારણ કે તે સંસારમાંથી યોગીને તારે છે અર્થાત્ સંસારમાંથી પાર ઉતારી મોક્ષ અપાવે છે. આ પ્રાતિભ=તારક જ્ઞાનના બધા જ અર્થો વિષય તરીકે હોય છે. પ્રાતિભ જ્ઞાનવાળો યોગી સર્વજ્ઞ કહેવાય છે અને પ્રાતિભજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયા પછી યોગીને કોઈ પણ સંયમ કરવાનો રહેતો નથી. વિશેષ જાણવા માટે આ જ પાદનું ૫૪ મું સૂત્ર અને તેનું ભાષ્ય જુઓ. ॥ ૩૩ ॥

હવે હૃદય ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે તે બતાવે છેઃ

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥

પદાર્થ:- (हृदये) હૃદય ઉપર સંયમ કરવાથી (चित्त-संवित्) પોતાના અને પારકાના ચિત્તનું જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થ:- પોતાના ચિત્તમાં જે જે વાસનાઓ હોય તેનું તથા બીજાના ચિત્તમાં જે કોઈ રાગ આદિ દોષો હોય તેનું જ્ઞાન યોગીને હૃદય ઉપર સંયમ કરવાથી થાય છે. હૃદય એ શરીરના અવયવોમાંનો એક અવયવ છે. યોગીઓ કહે છે કે હૃદયમાં નીચે મુખવાળું કમળના આકારનું માંસપિંડ છે, તેમાં અંતઃકરણનું સત્વ પ્રકાશે છે, તેમાં સંયમ કરવાથી યોગીને પોતાના અને બીજાના ચિત્તનું જ્ઞાન થાય છે. છાંદોગ્ય ઉપનિષદમાં હૃદય અને તેમાં કમળાકારે રહેલા માંસપિંડ સંબંધે આ પ્રમાણે કહ્યું છે : अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन् अन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम्, तद्वाव विजिज्ञासितव्यम् ॥ (છાં. ૮-૧) હૃદયાકાશરૂપ બ્રહ્મપુરમાં અલ્પ કમળાકારનો માંસપિંડ છે, તે આત્માનું અને ચિત્તનું વેશ્મ અર્થાત્ ઘર કહેવાય છે, તેમાંથી બ્રહ્મજ્ઞાનનો પ્રકાશ થાય છે, માટે એ આકાશસ્થ સત્વ અને બ્રહ્મને જાણવાની ઈચ્છા કરવી જોઈએ. ॥ ૩૪ ॥

હવે પુરુષનું જ્ઞાન જેનાથી ઉત્પન્ન થાય છે તે બાબત સમજાવે છે:

सत्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थात्
स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥

પદાર્થ:- (सत्वपुरुषयोः) સત્વગુણ અને પુરુષ, (અહીં રજોગુણ અને તમોગુણ પણ સમજવા) (अत्यन्तासंकीर्णयोः)

સદાને માટે તદ્દન જુદા જુદા જ છે. (प्रत्ययाविशेषः) છતાં સત્વાદિ ગુણોમાંથી જે પરિણામરૂપ પ્રત્યય થાય છે તે શાંત, ઘોર અને મૂઢ રૂપે હોય છે. અને એ પ્રત્યયથી પુરુષ પણ પોતાને શાંત, ઘોર = દુઃખી અને મૂઢ રૂપે સમજે છે, માટે એ પ્રત્યય સત્વાદિગુણોનો અને પુરુષનો એકરૂપ જણાય છે, અભિન્ન છે તે જ (भोगः) ભોગ કહેવાય છે. આ ભોગ (परार्थत्वात्) ત્રિગુણ-જન્ય હોવાથી પરાર્થ જ છે. આ પરાર્થ પ્રત્યયથી વિશિષ્ટ = ભિન્ન કેવળ ચૈતન્યરૂપ પૌરુષેય સ્વાર્થપ્રત્યય છે તે (स्वार्थसंयमात्) સ્વાર્થપ્રત્યય ઉપર સંયમ કરવાથી (पुरुषज्ञानम्) પુરુષનું જ્ઞાન થાય છે.

ભાવાર્થઃ–પ્રકૃતિ અને પુરુષ અનાદિકાળથી જુદાં જુદાં જ છે. સત્વગુણ, રજોગુણ અને તમોગુણ આ ત્રણના સમુદાયને જ પ્રકૃતિ કહેવામાં આવે છે. જ્યારે ત્રણ ગુણો સામ્ય અવસ્થામાં હોય ત્યારે 'પ્રકૃતિ' કહેવાય છે, અને જ્યારે તેમાં વિષમતા આવે છે ત્યારે તો 'વિકૃતિ' કહેવાય છે. આ ત્રણે ય ગુણોના સમુદાયને 'પ્રધાન' કહેવામાં આવે છે, કારણ કે સમસ્ત કાર્યજગતનું આધાન તેમાં જ થાય છે. ત્રણગુણોમાં પણ સત્વ ગુણ ઉત્તમ છે, કારણ કે તે પ્રખ્યાશીલ છે. તેનું પરિણામ જ્ઞાન, સુખ વગેરે હોય છે. રજોગુણનું પરિણામ દુઃખ છે અને તમોગુણનું પરિણામ મોહ છે.

પુરુષ આ ગુણોથી જુદો છે, પુરુષનું કદીપણ કોઇપણ રૂપમાં કે આકારમાં પરિણામ થતું નથી. માટે પુરુષ

અપરિણામી છે, અને ગુણો પરિણામી છે. સૂત્રકાર મહર્ષિ પતંજલિ સર્વગુણોમાં ઉત્તમ ગુણ સત્વ ગુણને લઇ ગુણોથી ભિન્ન પુરુષ છે એમ જણાવે છે. તો પછી રજોગુણ અને તમોગુણથી પુરુષ જુદો હોય એમાં તો કહેવાનું શું હોઈ શકે? ભાવ એ થયો કે સત્વગુણથી પુરુષ જુદો છે, તેનાં પરિણામોથી પણ જુદો છે. રજોગુણ અને તમોગુણને દાબી દઇ સત્વગુણ પોતામાંથી પ્રકૃતિ અને પુરુષના ભેદનું જ્ઞાન જન્માવે છે. આ જ્ઞાનથી પણ પુરુષ ભિન્ન છે; કારણ કે પુરુષ અપરિણામી છે અને અને પ્રકૃતિપુરુષભેદજ્ઞાન પરિણામી છે. પુરુષ તો વિશુદ્ધ અને ચિતિમાત્ર-સ્વરૂપ છે.

આમ સત્વ અને પુરુષ અત્યંત વૈધર્મ્યને લીધે જુદા હોવા છતાં તે સત્વગુણમાંથી પરિણમતો પ્રત્યય પુરુષ સાથે અભિન્ન હોય એમ જણાય છે. જેમકે હું જ્ઞાની, હું સુખી, હું દુઃખી વગેરે પ્રત્યયો. આ પ્રત્યયો કેવળ ગુણોના જ છે છતાં પુરુષની તેની સાથે અભિન્નતા જણાય છે. 'હું સુખી, હું જ્ઞાની.' આ વાક્યાર્થ સીધાં પુરુષને જણાવતાં હોય એમ લાગે છે. અને તેથી સુખનું જ્ઞાન, દુઃખનું જ્ઞાન અને મોહનું જ્ઞાન એ ભોગ કહેવાય છે. આ 'ભોગ' 'પરાર્થ' છે. જેમ શય્યા, પ્રાસાદ, ભોજન વગેરે પ્રકૃતિનાં પરિણામ પરાર્થ છે તેમ.

આ 'પરાર્થ' ભોગથી વિશિષ્ટ અર્થાત્ ભિન્ન પ્રત્યય પણ છે તે પૌરુષેય ભોગ કહેવાય છે. નિર્મલ બુદ્ધિરૂપ સત્વના પરિણામમાં ચેતન = આત્માનું જે પ્રતિબિંબ છે

તે 'સ્વાર્થ' પ્રત્યય કહેવાય છે. તેના ઉપર સંયમ કરવાથી પુરુષનું જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે.

આથી એમ ન સમજવું કે બુદ્ધિસત્વ પૌરુષેય પ્રત્યયથી આત્માને જાણે છે. બુદ્ધિસત્વ ગમે તેટલું ઉત્તમ હોય તોપણ જડ જ છે. જડ ચેતનને ન જાણી શકે, ચેતન જડને જાણે છે. એ જ સાચું છે. જાણવાનો વિષય તો પ્રકૃતિ અને તેનાં પરિણામો જ હોય છે, પુરુષ જ્ઞાનનો વિષય કદી પણ બનતો જ નથી આથી પુરુષ જ્ઞેય નથી, દશ્ય પણ નથી. પ્રકૃતિ જ જ્ઞેય અને દશ્ય છે. સત્વરૂપ બુદ્ધિ જ જ્ઞેય અને દશ્ય છે. પુરુષ જ્ઞેય નથી, દશ્ય નથી, એ તો સદૈવ દ્રષ્ટા જ છે. દશ્યત્વ અને દ્રષ્ટૃત્વ પરસ્પર વિરુદ્ધ ધર્મો છે, માટે એક ઠેકાણે બંને ન રહી શકે, એટલે કે પુરુષમાં દ્રષ્ટૃત્વ અને દશ્યત્વ બંને ધર્મો નથી તેમ જ સત્વમાં પણ દ્રષ્ટૃત્વ અને દશ્યત્વ બંને ધર્મ નથી. પુરુષમાં દ્રષ્ટૃત્વ જ છે અને સત્વમાં (પ્રકૃતિમાં) દશ્યત્વ જ છે.

ઉપનિષદમાં પણ જણાવવામાં આવ્યું છે કે विज्ञातारमरे केन विजानीयात् (बृ.उप २–४–१४) જે વિજ્ઞાતા આત્મા છે તેને કયા સાધનોથી જાણવો? મન, વાણી અને ઇંદ્રિયો પુરુષને જાણી શકતાં નથી, જો આ સાધનોથી પુરુષ ન જણાય તો બીજાં કયાં સાધનો છે કે જેનાથી પુરુષ જણાય અને તે જ્ઞેય બને. અર્થાત્ કોઇ પણ સાધનથી પુરુષ જણાતો નથી. માટે એ જ્ઞેય નથી. આમ હોવા છતાં જે 'પૌરુષેય' પ્રત્યય માનવામાં આવે છે તેનો

અર્થ એટલે જ કે 'બુદ્ધિમાં પડેલા પુરુષના પ્રતિબિંબને આલંબન કરનાર પ્રત્યય.' बुद्धिसत्वमेव तु तेन प्रत्ययेन संक्रान्तपुरुषप्रतिब्रिम्बं पुरुषच्छायापन्नं चैतन्यमालम्बते इति पुरुपार्था इति भाष्योपरि वाचस्पतिः આ સ્વાર્થ પ્રત્યય છે એના ઉપર સંયમ કરવાથી પુરુષનું જ્ઞાન થાય છે અર્થાત્ પુરુષ જેનો સ્વામી છે એવું જ્ઞાન તે પુરુષજ્ઞાન. ॥ ૩૫ ॥

હવે સ્વાર્થસંયમથી પુરુષજ્ઞાન થયા પહેલાં જે જે સિદ્ધિઓ યોગીને મળે છે તે બતાવે છેઃ

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥

પદાર્થઃ- (ततः) સ્વાર્થસંયમથી (प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ताः) પ્રાતિભ, શ્રાવણ, વેદના, આદર્શ, આસ્વાદ અને વાર્તા નામવાળાં જ્ઞાનો (जायन्ते) ઉત્પન્ન થાય છે.

ભાવાર્થઃ- સ્વાર્થ ઉપર સંયમ કરવાથી પુરુષનું જ્ઞાન થયાં પહેલાં પ્રાતિભ આદિ દિવ્યજ્ઞાનો ઉત્પન્ન થાય છે. 'સ્વાર્થ' એટલે બુદ્ધિમાં પડેલું ચેતનનું પ્રતિબિંબ, એ પુરુષ પ્રતિબિંબને આલંબન કરનાર સાત્વિક પરિણામ.

સ્વાર્થ ઉપર સંયમ કરવાથી (૧) પ્રાતિભ, શ્રાવણ, વેદના, આદર્શ, આસ્વાદ અને વાર્તા નામક દિવ્યજ્ઞાનો ઉત્પન્ન થાય છે. યોગી જ્યારે વ્યુત્થિત (સમાધિ ન કરતા હોય તે વખતે) હોય છે ત્યારે પણ આ જ્ઞાનો થાય છે.

(૧) પ્રાતિભ = કોઈ પણ દૃષ્ટ કારણ વગર વ્યવહિત, વિપ્રકૃષ્ટ (દૂરસ્થ) અતીત, અનાગત અને સૂક્ષ્મ અર્થોમાં યથાર્થ જ્ઞાનનું જે બળ છે તે

'પ્રતિભા' કહેવાય છે, તેનાથી ઉત્પન્ન થતું જ્ઞાન પ્રાતિભ કહેવાય છે. આ જ્ઞાન ઇંદ્રિયથી ઉત્પન્ન થતું નથી, પણ અકસ્માત્ યોગના બળથી ઉત્પન્ન થાય છે.

(૨) શ્રાવણ = શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયથી થતું જ્ઞાન. તે શ્રોત્ર એટલું બધું પ્રકર્ષ પામે છે કે તેનાથી દિવ્ય શબ્દ પણ સાંભળી શકાય છે, પછી તે ગમે તેટલે દૂર ઉત્પન્ન થયો હોય.

(૩) વેદના = સ્પર્શ-ઈદ્રિયથી ઉત્પન્ન થતું જ્ઞાન. वेद्यते अनया सा वेदना त्वक् इन्द्रियम् ત્વક ઇન્દ્રિયને 'વેદના' કહેવામાં આવી છે. તે યોગ શાસ્ત્રનું તાન્ત્રિક પારિભાષિક શબ્દ છે. આનાથી પણ દિવ્ય સ્પર્શનું જ્ઞાન થાય છે.

(૪) આદર્શ = ચક્ષુ ઇન્દ્રિય. आ समन्ताद् दृश्यते अनुभूयते रूपम् अनेन इति आदर्शः चक्षुरिन्द्रियम्" ચક્ષુ ઇન્દ્રિય પણ ખૂબ પ્રકર્ષ પામે છે અને તેનાથી દિવ્ય રૂપ જોઈ શકાય છે.

(૫) આસ્વાદ = રસના ઇંદ્રિયથી ઉત્પન્ન થતું જ્ઞાન. आस्वाद्यते रस्यते अनेन इति आस्वादः रसनेन्द्रियम्। આસ્વાદ ઇંદ્રિય અને ઇંદ્રિયજન્ય જ્ઞાન માટે વપરાય છે તે પણ યોગશાસ્ત્રમાં વપરાતો પારિભાષિક શબ્દ છે.

(૬) વાર્તા=ગંધજ્ઞાન વૃત્તિ ઉપરથી 'વાર્તા' શબ્દ બન્યો છે. 'વૃત્તિ' એટલે ઘ્રાણઇંદ્રિય, આ વૃત્તિ શબ્દ પણ પારિભાષિક જ છે. वर्तते गन्धविषयो यया सा वृत्तिः, घ्राणेन्द्रियम् આ પ્રમાણે એની વ્યુત્પત્તિ થઇ શકે છે. ઘ્રાણઇંદ્રિય પણ ખૂબ પ્રકર્ષ પામીને દિવ્ય ગંધનું જ્ઞાન કરાવી શકે છે.

આ છ યે 'સ્વાર્થસંયમની' સિદ્ધિઓ માનવામાં આવે છે. આને (૧) પ્રાતિભસંવિત્ (૨) દિવ્ય શબ્દસંવિત (૩) દિવ્ય-સ્પર્શસંવિત્ (૪) દિવ્ય રૂપસંવિત્ (૫) દિવ્ય રસસંવિત્ (૬) દિવ્ય ગંધસંવિત્–આમ છ પ્રકારની સંવિદો પણ કહેવામાં આવે છે. ॥ ૩૬ ॥

ઉપર બતાવવામાં આવેલી સિદ્ધિઓ મેળવીને યોગી પોતાને કૃતકૃત્ય રખે માની લે, તેને માટે આ નીચેનું સૂત્ર સમજણ આપવા માટે છે:

ते सामाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥

પદાર્થ:– (ते) પ્રાતિભ આદિ તથા આગળ બતાવવામાં આવેલી સઘળી સિદ્ધિઓ (समाधौ) અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિના (उपसर्गा) ઉપસર્ગો=વિઘ્નો છે, ઉપદ્રવો છે; (व्युत्थाने) સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં એટલે કે–વ્યુત્થાન દશામાં (सिद्धयः) સિદ્ધિઓ માની શકાય. અસંપ્રજ્ઞાત યોગની અપેક્ષાએ સંપ્રજ્ઞાતયોગ વ્યુત્થાન ગણાય છે.

ભાવાર્થ:– યોગી મોક્ષ મેળવવા માટે, પોતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત થવા માટે સમાધિ અર્થાત્ યોગસાધના કરે છે. જ્યાં સુધી સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠારૂપ મોક્ષ ન મળે ત્યાં સુધી ગમે

તેટલી સિદ્ધિઓ મળે તે બધી મુમુક્ષુ યોગીને માટે નકામી છે. એવા યોગીને તો ઉપર જણાવેલી બધી સિદ્ધિઓ મોક્ષ મેળવવામાં વિઘ્નરૂપ છે, ઉપદ્રવો જ છે. હા, યોગી જ્યારે વ્યુત્થાન દશામાં હોય અને એને મોક્ષનો વિચાર ન હોય તો તે ખરેખર સંપ્રજ્ઞાતયોગવાળાને માટે સિદ્ધિઓ છે. મુમુક્ષા ન રાખનાર યોગી સિદ્ધિઓ મેળવી સંસારમાં ભૌતિક સુખો મેળવી શકે છે અને તે દ્વારા સારો પરોપકારી યોગી જનતામાં સુખ પણ ફેલાવી શકે છે અને સામાજિક દુઃખો દૂર પણ કરી શકે છે. આપણે ઇચ્છીએ કે આવા પરમ સાધુ પવિત્ર યોગીઓ આપણા સમાજમાં હો. ॥ ૩૭ ॥

આત્માનું દર્શન થાય ત્યાં સુધીમાં જ્ઞાનનું જેટલું જ્ઞાનરૂપ ઐશ્વર્ય છે, અર્થાત્ સિદ્ધિઓ છે તે સઘળું બતાવ્યું. અત્યાર સુધીમાં જ્ઞાનરૂપ સિદ્ધિઓ જ બતાવી છે. હવે ક્રિયારૂપ સિદ્ધિઓ બતાવે છે. જવું, આવવું, પ્રવેશવું, નીકળવું વગેરે ક્રિયાઓ છે. આ ક્રિયાસિદ્ધિઓ કેવી છે અને તે શાથી—કયા ઉપાયથી મળે છે તે બતાવે છેઃ

बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥३८।

પદાર્થઃ- (चित्तस्य) ચિત્તને (बन्धकारणशैथिल्यात्) બંધનું કારણ કર્મ છે. આ કર્મ શિથિલ થાય એટલે બંધ પણ નરમ થાય છે, તેથી (च) અને (प्रचारसंवेदनात्) પ્રચાર એટલે નાડીઓનો સમુદાય-તેનું જ્ઞાન થવાથી અર્થાત્ તેના શો ઉપયોગ છે તેનું જ્ઞાન થવાથી (पर-शरीरावेशः) ચિત્ત બીજાના શરીરમાં આવેશ કરે છે, પ્રવેશ કરે છે.

ભાવાર્થ:- व्यापकत्वात् आत्मचित्तयो र्नियतकर्मवशादेव शरीरान्तर्गतयोरेव भोग्यभोक्तृभावेन यत्संवेदनम् उपजायते स एव शरीरबन्ध इत्युच्यते। (શ્રી મહારાજ ભોજદેવ.) શ્રી મહારાજ ભોજદેવે આ યોગદર્શન ઉપર વૃત્તિ સંસ્કૃતભાષામાં લખી છે; ઉપરનું સંસ્કૃત અવતરણ તેમાંથી લીધું છે. તેમાં શ્રી ભોજદેવ મહારાજ જણાવે છે કે, આત્મા અને ચિત્ત બંને વ્યાપનશીલ છે છતાં ચિત્ત ખાસ અમુક જ શરીરમાં રહી ભોગ કરે છે એનું કારણ શું ? -એનું કારણ એ છે કે ચિત્ત બંધાયું છે, ચંચલ હોવા છતાં બંધાયું છે અને એને બાંધનાર ધર્મ અને અધર્મરૂપ કર્મ છે. આ બંધને લીધે ચિત્તને પોતાનું થોડું ચાંચલ્ય દૂર કરી ખાસ અમુક જ શરીરમાં રહી ભોગ્યભોક્તાના ભાવરૂપે સંવેદન કરવું પડે છે.

જ્યારે યોગના પ્રભાવથી ધર્માધર્મરૂપ કર્મબંધ ઢીલો થઇ જાય છે ત્યારે અને શરીરમાંહેની નાડીઓના સમુદાયનું જ્ઞાન થાય છે કે, 'આ નાડી પ્રાણને વહન કરનારી છે અને આ નાડી મારફત ચિત્ત શરીરમાં ફરે છે.' આમ ચિત્તને વહન કરનારી નાડી બીજી બધી નાડીઓ કરતાં જુદી પડે છે. આવું જ્ઞાન યોગીને યોગના બળે જ્યારે થાય છે ત્યારે યોગીને પ્રચારસંવેદન થયું એમ કહેવાય છે. કઇ નાડી કયું કામ કરી રહી છે એ જાણ્યા સિવાય ચિત્ત પોતાની નાડીને પણ ન પારખી શકે. બંધ શિથિલ થાય છે ત્યારે યોગીને પ્રચારસંવેદન એટલે નાડીઓનું જ્ઞાન થાય છે. આ જ્ઞાન થયા પછી યોગી બીજાના શરીરમાં

રહેલી નાડીઓમાંથી પોતાના ચિત્તને ફરવાને માટેની ખાસ નાડીને જાણી શકે છે. પછી જ્યારે ઈચ્છા થાય ત્યારે પોતાના શરીરમાંથી ચિત્તને નીકળવાની પ્રેરણા કરે છે એટલે ચિત્ત ત્યાંથી નીકળી બીજા જીવતા કે મરેલા શરીરમાં પ્રવેશ કરે છે અને ચિત્ત સાથે જ બીજી બધી ઈન્દ્રિયો જાય છે. જેને લિંગ શરીર કહેવામાં આવે છે તે ચિત્ત સાથે જ પારકાના શરીરમાં પ્રવેશ કરે છે. ત્યાં રહી પોતાના શરીરમાં જેવો વ્યવહાર કરતું હતું તેવો વ્યવહાર કરે છે. આ પ્રમાણે બંધનું કારણ શિથિલ થયા પછી ચિત્ત સ્વતંત્ર બની જાય છે અને સમગ્ર વિશ્વમાં ગમે ત્યાં ભોગને પ્રાપ્ત કરી શકે છે.

ચિત્તનું જવું-આવવું એ ક્રિયા છે માટે આ સિદ્ધિને ક્રિયાત્મક સિદ્ધિ કહેવામાં આવે છે. ॥ ૩૮ ॥

उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥

પદાર્થ:- (उदानजयात्) ઉદાન નામના શરીરાંતઃસંચારી વાયુ ઉપર સંયમ કરવાથી (जलपङ्ककण्टकादिषु) પાણી, પંક=કાદવ અને કાંટાઓમાં (असङ्गः) યોગીને અસંગ= રોકાણ થતું નથી (च) અને (उत्क्रान्तिः) શરીરમાંથી નીકળી જવાનું બને છે.

ભાવાર્થ:- જીવન શું છે? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર શાસ્ત્રકારો આ પ્રમાણે આપે છે: બધી ઇન્દ્રિયોની વૃત્તિ ચાલુ હોવી એનું નામ જીવન છે. શરીરની બહારના વિષયો સાથે ઇન્દ્રિયોનો જે સંબંધ થાય છે અથવા પરિ-

ણામ થાય છે, જેમકે-રૂપનું, રસનું, સ્પર્શનું, શબ્દનું અને ગંધનું આલોચન (જાણવું) કરવું તેને બાહ્યલક્ષણવૃત્તિ કહેવામાં આવે છે. અને શરીરની અંદર પ્રાણાદિ વાયુઓનું શરીરના જુદા જુદા ભાગોમાં ફરતા રહેવું અને શરીરને કામ કરતું સાચવી રાખવું, આ વૃત્તિને આભ્યન્તર વૃત્તિ કહેવામાં આવે છે. જીવનને ચાલુ રાખનાર જે પ્રયત્ન છે તેનો જ એક ભેદ છે એને જ વૃત્તિ કહેવામાં આવે છે.

શરીરમાં પ્રાણ, અપાન, સમાન, વ્યાન અને ઉદાન નામના પાંચ વાયુઓ છે. આ પાંચેય સમુદિત વાયુઓને સામાન્યકરણવૃત્તિ કહેવામાં આવે છે. સાંખ્યશાસ્ત્રના આચાર્યો જણાવે છે કે:

सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ॥ (સાં. કા. ૨૯)

પ્રાણાદિ વાયુઓથી જ જીવનયોનિ (જીવનનું કારણ) પ્રયત્ન જાણી શકાય છે. પ્રાણ આદિ પાંચ વાયુઓ ભેગા મળીને જ જીવન ચલાવે છે, પાંચમાંની જો કોઈ એક કે બે વાયુઓ ન હોય તો જીવન ચાલી શકે નહિ. જો પાલખી ઉપાડવાની હોય તો ચારેય માણસોએ એક સાથે એકમત થઈને કામે લાગી જવું જોઇએ. ચારમાંથી એક પણ કામ કરવા ન માગે તો પાલખી આગળ લઈ જઈ શકાય નહિ. તે જ પ્રમાણે પ્રાણ આદિ વાયુઓનું છે. પ્રાણ આદિનાં જુદાં જુદાં કામ આ પ્રમાણે છે:

પ્રાણઃ– નાક દ્વારા શ્વાસ લેવાય છે અને તે હૃદયમાં

જઇ વિરમે છે એટલે કે જે વાયુ નાકથી લઈ હૃદય સુધીમાં ફર્યા કરે છે તે પ્રાણ.

સમાનઃ- ખાધેલા-પીધેલા આહારના જે જુદાં જુદાં પરિણામો થાય છે તેને જુદા જુદા સ્થાનમાં યોગ્ય રીતે લઇ જવાં, તે કામ જે વાયુ કરે છે તેને 'સમાન' વાયુ કહેવામાં આવે છે અને તેનું ફરવું હૃદયથી માંડી નાભિ સુધીમાં હોય છે.

ભોજવૃત્તિમાં તેનું લક્ષણ આ પ્રમાણે કર્યું છે :

नाभिदेशं परिवेष्टय समन्तान्नयनात्समानः ॥

'નાભિના પ્રદેશને વીંટાઇને રસોને શરીરમાં બધે જે ફેલાવે છે તે' 'સમાન' વાયુ છે. અને તેનું સ્થાન નાભિથી માંડી હૃદય સુધી છે.

અપાનઃ- મૂત્ર, મળ અને ગર્ભ આદિ નીચે લઈ જઈ બહાર કાઢવાનું જે કારણ છે તે વાયુ 'અપાન' કહેવાય છે અને તેનું સ્થાન નાભિથી માંડી પગના તળિયા સુધી છે.

ઉદાનઃ- રસોને ઉપર લઇ જનાર વાયુ ઉદાન છે. અને તેનું સ્થાન નાકથી લઈ શીર્ષ સુધી છે.

વ્યાનઃ- આખા શરીરમાં વ્યાપક થઇને જે વાયુ રહેલો છે તે વ્યાન વાયુ કહેવાય છે. આમ જુદા જુદા કાર્ય અને સ્થાનને લીધે શરીરની અંદર ફરતા વાયુઓ પ્રાણ તરીકે ઓળખાય છે. આ પાંચ વાયુઓમાં પ્રાણ નામનો વાયુ મુખ્ય છે. કારણ કે પ્રાણના નીકળવા સાથે જ બધા વાયુઓ શરીરમાંથી નીકળવા માંડે છે.

प्राणमुत्क्रामन्तमनु सर्वे प्राणा उत्क्रामन्ति ॥ (બૃહદારણ્યક ઉપ. ૪–૪–૨) બૃહદારણ્યક ઉપનિષદમાં કહ્યું છે કે જ્યારે પ્રાણનું ઉત્ક્રમણ થાય છે ત્યારે બધાય પ્રાણોનું ઉત્ક્રમણ થાય છે.

આ પાંચમા ઉદાન નામના વાયુ ઉપર જ્યારે યોગી સંયમ કરે છે અને તેની ઉપર જ્યારે વિજય મેળવે છે ત્યારે જળ ઉપર, કાંટાઓ ઉપર અને નરમમાં નરમ કાદવ ઉપર પણ ચાલી શકે છે, એટલે કે તે પોતાના શરીરને રૂ અથવા ઊનના દોરા જેટલું હલકું બનાવી દે છે. એટલે તે પાણીમાં ડૂબતું નથી, કાદવમાં ખૂપતું નથી અને તેને કાંટા વાગતા નથી. આ કારણથી તે યોગી તેના ઉપર ચાલી શકે છે. એની ગતિ જળ, કાદવ અને કાંટાથી રોકાતી નથી. આ સિદ્ધિ ઉદાન વાયુ ઉપરના સંયમ-જયને લીધે યોગીને મળે છે. આ સિવાય યોગી ધારે ત્યારે આ સંયમ સિદ્ધિને લીધે શરીરને છોડી શકે છે. અને અર્ચિ માર્ગે જઈ શકે છે. ॥ ૩૯ ॥

समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ४० ॥

પદાર્થઃ– (समानजयात्) સમાન નામના વાયુ ઉપર સંયમ કરવાથી અને તેના ઉપર વિજય મેળવવાથી યોગીને (ज्वलनम्) જ્વલન-સિદ્ધિ મળે છે.

ભાવાર્થઃ– યોગી સમાન નામના વાયુ ઉપર સંયમને સિદ્ધ કરે છે ત્યારે તે પોતાના શરીરની ચોતરફ અગ્નિ-જ્વાળાઓ કાઢી શકે છે. છતાં તે બળતો નથી. હનુમાન

કદાચ આવા જ યોગી હશે કે જેણે લંકાને બાળી નાંખી પણ પોતાને અગ્નિની જરા પણ આંચ આવી નહિ. પતિના કહેવાથી સતી શિરોમણિ સીતાજી જયારે અગ્નિમાં પડે છે ત્યારે અગ્નિ શરીરની ચારે તરફ ફરી વળ્યો પણ સીતાજીને જરા પણ દાહ થયો નહિ. આ એક યોગસિદ્ધિ જ હશે એ જ સતીનો પ્રતાપ. પુરુષની માફક સ્ત્રી પણ સંયમોની સિદ્ધિ મેળવી શકે છે અને યોગિની થઈ શકે છે. ॥ ૪૦ ॥

હવે 'દિવ્ય' શ્રોત્રને પ્રાપ્ત કરવા રૂપ એક બીજી સિદ્ધિ સૂત્રકાર બતાવે છે :

श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमाद् दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥

પદાર્થઃ– (श्रोत्राकाशयोः) 'શ્રોત્ર' એટલે કાન અને આકાશના (संबन्धसंयमाद्) સંબંધ ઉપર સંયમ કરવાથી અને તેની સિદ્ધિ મળવાથી (दिव्यम्) દિવ્ય (श्रोत्रम्) શ્રોત્ર બની જાય છે.

ભાવાર્થઃ– શ્રોત્ર (કાન) અને આકાશના સંબંધ ઉપર સંયમની સફલતા પ્રાપ્ત થવાથી શ્રોત્ર દિવ્ય બની જાય છે એટલે શ્રોત્રમાં=કાનમાં અત્યંત સૂક્ષ્મ, વ્યવહિત અને અતિદૂર થયેલા શબ્દોને સાંભળવાની શક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે. અતિદૂર એટલે પૃથ્વી ઉપરના ગમે તે ભાગમાં ઉચ્ચારાયેલા શબ્દ હોય તોપણ યોગી તેને સાંભળી શકે છે. પૃથ્વીના પેટાળમાં ઊંડામાં ઊંડા અવાજ થતા હોય તોપણ તેને યોગી સાંભળી શકે છે. ગમે તેટલો ધીમો ગમે ત્યાં શબ્દ થતો હોય તોપણ યોગી તેને સાંભળી શકે છે. કાનમાં

જ્યારે આ શ્રવણ-શક્તિ આવે છે ત્યારે આ જ શ્રોત્ર 'દિવ્ય શ્રોત્ર' કહેવાય છે.

હવે શ્રોત્ર અને આકાશ ઉપર વિચાર કરી જોઇએ. શ્રોત્ર શું છે અને તેની ઉત્પત્તિ ક્યાંથી થાય છે ? મહર્ષિ પતંજલિ સાંખ્યના તત્વજ્ઞાનને સ્વીકારે છે એટલે શ્રોત્ર અહંકારરૂપ તત્ત્વના સાત્ત્વિક ભાગમાંથી પ્રકટ થાય છે, એમ તેઓ સ્વીકારે છે. માટી અને ઘડાનો કાર્યકારણભાવ-સંબંધ છે, માટી કારણ અને ઘડો કાર્ય, માટે ઘડાનો આધાર માટી છે એમ કહેવાય. માટી પોતે જ ઘડા રૂપે પરિણામ પામી છે એમ કહીએ તોપણ ઘડાનો આશ્રય માટી જ છે. આ જ પ્રમાણે શ્રોત્રનું કારણ અહંકાર હોવાથી શ્રોત્રનો આધાર અહંકાર જ કહેવાય. જ્યારે આ સ્થિતિ છે તો પછી પ્રશ્ન સ્વાભાવિક રીતે ઉત્પન્ન થાય છે કે શ્રોત્રનો આકાશ સાથે કઇ જાતનો સંબંધ છે ?

આનો ઉત્તર કેટલાક આચાર્યો આ પ્રમાણે આપે છેઃ અહંકાર આકાશ સાથે જોડાયેલો હતો તેથી આકાશ-સંયુક્ત અહંકાર શ્રોત્રનું કારણ છે અને તેથી શ્રોત્ર અને આકાશનો આધારાધેયભાવ સંબંધ છે (આકાશસંસ્પૃષ્ટ અહંકાર આધાર અને શ્રોત્ર આધેય.) શ્રોત્ર એ શું છે ? કાન. તત્ત્વદૃષ્ટિએ એ માનવામાં આવે છે કે કાનની જે ભૌતિક રચના છે તેને સંસ્કૃત ભાષામાં 'કર્ણશષ્કુલી' કહે છે, એ કર્ણશષ્કુલીમાં રહેલું આકાશ જ શ્રોત્ર છે. કર્ણ-શષ્કુલીના ઉપર થયેલા ઉપકારની અને અપકારની અસર

આ સૂક્ષ્મ આકાશરૂપ શ્રોત્રને થાય છે માટે કર્ણશઙ્કુલી-યુક્ત આકાશને આપણે કાન કહીએ છીએ. આ કાન અને આકાશ વાસ્તવદૃષ્ટિએ જોઈએ તો એક જ છે-જેમ ઘટાકાશ અને મહાકાશ, એટલે જો ઘટાકાશનો આધાર મહાકાશ માનવામાં આવે તો શ્રોત્રનો આધાર મહાકાશ થઈ શકે.

આ શ્રોત્ર લોઢાના જેવું છે અને વક્તાના મોઢામાંથી ઉત્પન્ન થતા શબ્દો અયસ્કાંત મણિ જેવા છે, એટલે કે લોહચુંબક જેવા છે. લોહચુંબક જેમ લોઢાને ખેંચે છે, તેમ વક્તાના શબ્દો સાંભળનાર માણુસના કાનને ખેંચે છે. એટલે કે શ્રોત્રગત શબ્દમાંથી વૃત્તિઓની પરંપરા થવા લાગે છે અને એ પરંપરા વક્તાના મુખમાંથી જન્મેલા શબ્દનું આલોચન કરે છે. (જુઓ, વ્યાસભાષ્ય ઉપર વાચસ્પતિમિશ્રની ટીકા.) પંચશિખાચાર્ય પણ શ્રોત્રનો આધાર આકાશ છે, એમ સ્વીકારે છે. જેમકે– तुल्यदेशश्रवणानामेकदेशश्रुतित्वं सर्वेषां भवतीति । 'अ, ब અને क આદિ સર્વ પુરુષોના શ્રોત્રો આકાશમાં જ પ્રતિષ્ઠિત છે.'

બીજી વાત એ છે કેઃ– શ્રોત્રનું અધિષ્ઠાન (આધાર) આકાશ શબ્દગુણવાળા તન્માત્રામાંથી ઉત્પન્ન થયું છે. તેથી આકાશ શબ્દગુણવાળું કહેવાય છે. અને આ જ શ્રોત્રગત શબ્દની સહાયતાથી શ્રોત્ર બહાર રહેલા પૃથ્વી આદિના શબ્દોને ગ્રહણ કરી શકે છે. જેમ સ્વગત ઘ્રાણેન્દ્રિયમાં રહેલા ગંધની સહાયતાથી ઘ્રાણેન્દ્રિય બહારના પદાર્થોના ગંધને ગ્રહણ કરે છે તેમ. આ જ સ્થિતિ રસન, ત્વક્ અને ચક્ષુ

ઇંદ્રિયોની પણ છે. ચક્ષુમાં જો રૂપ ન હોય તો ચક્ષુ બહારના પદાર્થોના રૂપને ન જોઈ શકે. રસના ઇન્દ્રિયમાં રસગુણ ન હોય તો તે બહારના પદાર્થોના રસનું આલોચન ન કરી શકે અને ત્વક્ ઈન્દ્રિયગત સ્પર્શ ન હોય તો તે પણ બહારના પદાર્થોનો સ્પર્શ ન કરી શકે.

આથી સ્પષ્ટ સમજાશે કે શ્રોત્ર એક સગુણ ઈન્દ્રિય છે અને એ ગુણ તે શબ્દ જ છે. આ સગુણ શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય અહંકારમાંથી જન્મી હોવા છતાં આકાશ તેનો આધાર છે. આ આધારાધેયભાવ ઉપર સંયમની પરાકાષ્ઠા થયા પછી શ્રોત્રમાં સૂક્ષ્મ, વ્યવહિત અને દૂર દૂરના શબ્દોને સાંભળવાની શક્તિ આવે છે. આ શક્તિને લીધે 'દિવ્યશ્રોત્ર' કહેવાય છે.

સમસ્ત જગતના મંડળો પ્રકૃતિના જ વિકારો છે, પ્રકૃતિનો પહેલો વિકાર 'મહત્તત્ત્વ', મહત્તત્ત્વનો વિકાર અહંકાર અને અહંકારના આધ્યાત્મિક વિકારો ઇન્દ્રિયો અને બાહ્ય વિકારો તન્માત્રાઓ અને તેના વિકારો પાંચ મહાભૂતો. પ્રકૃતિ અને વિકારોનો એક રીતે અભેદ સંબંધ માનવામાં આવ્યો છે, આ દૃષ્ટિએ જોતાં શ્રોત્રનો અભેદ અહંકાર સાથે, અહંકારનો અભેદ મહત્તત્ત્વ સાથે અને મહત્તત્ત્વનો અભેદ સંબંધ પ્રકૃતિ સાથે. જગત બધું પ્રકૃતિમાં સમાયેલું છે માટે તેને 'પ્રધાન' પણ કહેવામાં આવે છે. प्रधीयते सर्वं जगत् अस्मिन् तत् प्रधानम् 'જ્યારે આ સ્થિતિ છે તો પછી શ્રોત્રની જ્યારે સંયમદ્વારા શક્તિ વધી જાય છે ત્યારે

તેની આગળ દૂર–નજીકનો કોઈ પ્રશ્ન જ રહેતો નથી. કાર્યકારણભાવનું ઔચિત્ય પણ બરાબર સચવાઈ રહે છે. ॥ ૪૧ ॥

હવે કાય (શરીર) અને આકાશના સંબંધ ઉપર સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ મળે છે તેને બતાવે છે :

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥४२॥

પદાર્થ:– (कायाकाशयोः) શરીર અને આકાશના (सम्बन्धसंयमात्) સંબંધ ઉપર સંયમ કરવાથી (च) અને (लघुतूलसमापत्तेः) હલકા રૂના રેસા ઉપર તન્મયતાથી (आकाशगमनम्) આકાશના માર્ગે અવરજવર કરી શકાય છે.

ભાવાર્થ:– કાય એટલે શરીર પાંચ ભૂતોમાંથી બનેલું હોવાથી પાંચભૌતિક કહેવાય છે. આકાશ શરીરને અવકાશ આપે છે તેથી તે અવરજવર કરી શકે છે, એટલે આકાશ અને શરીરનો કોઈ સંબંધ જરૂર છે. જ્યાં જ્યાં શરીર હોય છે ત્યાં ત્યાં આકાશ જરૂર છે. આકાશ વગર શરીર રહી શકતું જ નથી તેથી શરીર અને આકાશનો અવિનાભાવ સંબંધ માનવામાં આવે તો ખોટું નથી.

આ સંબંધ ઉપર યોગી સંયમ કરે છે, તેમ જ રૂ આદિના હલકા રેસાઓ ઉપર તન્મયતા સેવે છે, આ તન્મયતાને સમાપત્તિ કહેવામાં આવે છે. ઉક્ત સંયમ અને તન્મયતાને લીધે યોગીના શરીરમાં એકદમ લઘુતા = હલકાપણું આવે છે. શરીરનું ભારેપણું દૂર થવાથી અને હલકાપણું આવવાથી યોગી જ્યારે ઇચ્છે ત્યારે પાણી ઉપર

ચાલે છે. હલકાપણાને લીધે શરીર ડૂબતું નથી, પાણી કરતાં હલકી વસ્તુને પાણી ડુબાડતું નથી એ તો વિજ્ઞાનનો નિયમ છે. પછી તો યોગીનો અભ્યાસ વધતો જાય છે અને કરોળિયાના મોઢામાંથી નીકળતા તાંતણા ઉપર પણ યોગી ચાલે છે અને છેવટે સૂરજનાં કિરણોને પકડી આકાશમાં ગમે ત્યાં ઉડ્ડયન કરે છે. ॥ ૪૨ ॥

પારકાના શરીરમાં પ્રવેશ કરવાનો એક બીજો સંયમ બતાવે છે. અને એ સિદ્ધિ તરીકે ગણાય છે તે આ સૂત્રમાં સમજાવે છે:

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥ ४३ ॥

પદાર્થ:- (बहिः) શરીરની બહાર (अकल्पिता वृत्तिः) મનની જે વૃત્તિ થાય છે તે અકલ્પિતા વૃત્તિ કહેવાય છે. (महाविदेहा) મન શરીરની અપેક્ષા રાખ્યા વગર બહાર કામ કરતું હોવાથી એ વૃત્તિ 'મહાવિદેહા' નામે ઓળખાય છે. (ततः) તે વૃત્તિથી (प्रकाशावरणक्षयः) પ્રકાશ અર્થાત સત્ત્વગુણ ઉપર જે આવરણ પડ્યું હોય છે તેનો ક્ષય= નાશ થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ:- યોગથી સિદ્ધ થતી શરીરની બહાર મનની વૃત્તિ થાય છે, તે વૃત્તિ યોગશાસ્ત્રમાં 'વિદેહા' નામની ધારણા કહેવાય છે.

આ 'વિદેહા' ધારણા જો મન શરીરમાં રહીને શરીર બહાર કામ કરતું હોય તો તે 'કલ્પિતા' ધારણા કહેવાય છે. અને શરીરની અપેક્ષા રાખ્યા વગર મન બહાર રહી

વૃત્તિને ધારણ કરે અર્થાત્ કામ કરે તો તે 'અકલ્પિતા' ધારણા કહેવામાં આવે છે. પહેલી 'કલ્પિતા' વૃત્તિ સિદ્ધ કરવી પડે છે અને પછી એ જ કલ્પિતા વૃત્તિથી 'અકલ્પિતા' વૃત્તિ પ્રાપ્ત કરવામાં આવે છે. અકલ્પિતા વૃત્તિને 'મહા-વિદેહા વૃત્તિ' અથવા ધારણા કહેવામાં આવે છે. આ અકલ્પિતા ધારણાથી પ્રકાશસ્વરૂપ જે બુદ્ધિ છે અને તેના ઉપર રજોગુણ અને તમોગુણને લીધે જે આવરણ જામ્યું હોય છે, તે દૂર થાય છે. ભાવ એ છે કે 'અક-લ્પિતા' નામની શરીરની બહાર સ્વતંત્ર મનની વૃત્તિ છે તેના ઉપર સંયમને સિદ્ધ કરવાથી યોગીની સાત્વિક બુદ્ધિ ઉપર જે રજોગુણ અને તમોગુણનું આવરણ હોય છે તે દૂર થઇ જાય છે અને બુદ્ધિ સાત્વિક બની રહે છે. અને શરીર બહાર રહેલું યોગીનું મન શરીરથી સ્વતંત્ર થઇ સર્વકંઈ જાણી શકે છે. અને ત્યાં જે કંઇ બનતું હોય તેને જાણી લે છે.

'અકલ્પિતા' મહાવિદેહા વૃત્તિ ઉપર યોગી સંયમ સિદ્ધ કરી બધાય કલેશ, કર્મ અને વિપાકનો ક્ષય કરે છે અને બીજાના શરીરમાં પ્રવેશ પણ કરી શકે છે. ॥ ૪૩ ॥

પૃથ્વી આદિ પાંચ મહાભૂતોની પાંચ જુદી જુદી અવસ્થાઓ છે જેમકે–સ્થૂલત્વ, સ્વરૂપત્વ, સૂક્ષ્મત્વ, અન્વય અને અર્થવત્વ. આ પાંચ અવસ્થાઓ ઉપર સંયમ કરવાથી 'ભૂતજય' નામની સિદ્ધિ મળે છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે:

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः ॥ ४४ ॥

પદાર્થઃ- (स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्) સ્થૂલત્વ સ્વરૂપત્વ, સૂક્ષ્મત્વ, અન્વય અને અર્થત્વ ઉપર સંયમ કરવાથી (भूतजयः) પાંચે ય મહાભૂતો ઉપર વિજય મળે છે.

ભાવાર્થઃ- સ્થૂલ = પૃથ્વી આદિ પાંચ ભૂતોના આકાર સાથે જે રૂપ જણાય છે તે સ્થૂલરૂપ ગણાય છે. પૃથ્વીના સ્થૂલરૂપ ધર્મો આ પ્રમાણે છેઃ

आकारो गौरवं रौक्ष्यं वरणं स्थैर्यमेव च ।
वृत्तिर्भेदः क्षमाकार्श्यं काठिन्यं सर्वभोग्यता ॥

આકાર, ગૌરવ, રૌક્ષ્ય, વરણ, સ્થૈર્ય, વૃત્તિ, ભેદ, ક્ષમા, કાર્શ્ય, કાઠિન્ય અને સર્વભોગ્યતા આ પૃથ્વીના ધર્મો છે.

આકાર = અવયવોની ગોઠવણી.

વૃત્તિ = બધાયના આધાર તરીકે રહેવું તે.

ભેદ = ફાટ, વિદારણ વગેરે.

સ્થૈર્ય = સ્થિરતા હોવી તે.

ક્ષમા = ધારણ કરવાની શક્તિ હોવી તે.

આ સિવાય બીજા શબ્દોનો અર્થ સ્પષ્ટ છે. હવે પાણીના વિશેષ ધર્મો બતાવે છે :

स्नेहः सौक्ष्म्यं प्रभा शौक्ल्यं मार्दवं गौरवं च यत् ।
शैत्यं रक्षा पवित्रत्वं संधानं चौदका गुणाः ॥

સ્નેહ, સૌક્ષ્મ્ય, પ્રભા, શુક્લતા, મૃદુતા, ગુરુત્વ, શીતતા, રક્ષા, પવિત્રતા, સંધાન આ બધા પાણીના વિશેષ ધર્મો છે.

રક્ષા = આવરણ કરી રક્ષક બનવું તે.

સંધાન = લોટમાં અથવા માટીમાં પાણી પડવાથી તે બંધાઈને જે પિંડો બંધાય છે તે પાણીમાં રહેલી સંધાન-શક્તિને લીધે છે.

હવે 'તેજ'ના વિશેષ ધર્મો બતાવે છે :

ऊर्ध्वभाक् पाचकं दग्धृ पावकं लघु भास्वरम् ।
प्रध्वंस्योजस्वि वै तेजः पूर्वाभ्यां भिन्नलक्षणम् ॥

ઊર્ધ્વગતિ, પાચકતા, દાહકતા, પવિત્રતા, લઘુ (હલકા-પણું), ભાસ્વરતા, પ્રધ્વંસિતા, ઓજસ્વિતા આ બધા 'તેજ'ના ધર્મવિશેષો છે અને તે આગળ કહેવાઈ ગયેલા પૃથ્વી અને પાણીના ધર્મવિશેષોથી જુદા પડે છે.

હવે 'વાયુ'ના વિશેષ ધર્મો બતાવે છે :

तिर्यग्यानं पवित्रत्व माक्षेपो नोदनं बलम् ॥
चलमच्छायता रौक्ष्यं वायोर्धर्माः पृथग्विधाः ॥

અર્થ:– તિર્યગ્ગતિ, પવિત્રતા, આક્ષેપ (પાડી નાખવું તે) નોદન (ધકેલવું), બલ, ચલ = અસ્થિરતા વાળું, અચ્છા-યતા (છાયા ન હોવી તે) અને રૌક્ષ્ય = રૂક્ષતા આ બધા વાયુના વિશેષ ધર્મો છે.

હવે આકાશના ધર્મો જુઓ :

सर्वतो गतिरव्यूहोऽविष्टम्भश्चेति ते त्रयः ।
आकाशधर्मा व्याख्याता पूर्वपूर्वविलक्षणाः ॥

અર્થ:– સર્વતો ગતિઃ = બધે ગતિ હોવી, એટલે કે સર્વત્ર હોવું, વ્યાપકતા. અવ્યૂહ = કોઈ પણ રચના

ન હોવી તે. પદાર્થ (દ્રવ્ય) માત્રને જગ્યા આપવી અને અવષ્ટમ્ભ = અવકાશ, આ પૂર્વ કહેલા ધર્મો કરતાં જુદા પડતા ધર્મો આકાશમાં છે.

આ બધાં પાંચ મહાભૂતોનાં સ્થૂલ રૂપો કહેવાય છે, કારણ કે તે બધાનું ઇંદ્રિયોથી ગ્રહણ થાય છે.

આકારનો અર્થ સામાન્ય-વિશેષ પણ કહેવાય છે. જેમકે:

ગોત્વ = આ ગોત્વધર્મ સામાન્યવિશેષ કહેવાય છે. બધી ગાયરૂપ વ્યક્તિઓમાં ગોત્વ છે માટે તે સામાન્ય છે, પણ અશ્વ આદિમાં એ નથી માટે તે વિશેષ પણ કહેવાય છે. આ પ્રમાણે ભૂતોનું સ્થૂલરૂપ માનવામાં આવે છે. હવે ભૂતોનું બીજું રૂપ આ પ્રમાણે ભાષ્યકાર વ્યાસ મુનિ સમજાવે છે: स्वसामान्यम्, मूर्तिः = કઠિનતા અથવા ભૂમિ, સ્નેહ = જલ, વહ્નિ = ઉષ્ણતા, વાયુ = પરિણામી (વહનશીલ) અને સર્વતોગતિ = વ્યાપકતા. આ બધાં 'સ્વરૂપ' શબ્દથી ઓળખાય છે. આ પાતંજલદર્શનમાં સામાન્યવિશેષના સમુદાયને 'દ્રવ્ય' કહેવામાં આવે છે, કેવળ સમૂહને દ્રવ્ય માનવામાં આવતું નથી. જેમાં અવયવોના ભેદો ન જણાતા હોય છતાં બધા જ અવયવોમાં જે અનુગત હોય તે દ્રવ્ય અને તે જ અવયવી, જેમકે શરીર, વૃક્ષ, યૂથ, વન વગેરે. શબ્દો દ્વારા જેના ભેદો સમજાતા હોય તે સમૂહ. જેમકે उभये देवमनुष्याः, દેવ અને માણસો બંને. આ ઠેકાણે દેવ અને માણસોનો સમૂહ બતાવ્યો છે કારણ કે શબ્દ દ્વારા જ ભેદો જણાય છે. એ સમૂહનો એક ભાગ

માણસોનો અને બીજો ભાગ દેવનો. આમ્રવન અને બ્રાહ્મણ-સંઘ આ શબ્દોનો અર્થ પણ સમૂહ જ છે અને શબ્દોનો પ્રયોગ કરી તેમાં ભેદ જણાવ્યો છે. આ સમૂહ પણ બે પ્રકારનો હોય છે: (૧) જેના અવયવો યુતસિદ્ધ હોય, (૨) જેના અવયવો યુતસિદ્ધ ન હોય. 'વન' અને 'સંઘ' આ સમૂહમાં અવયવો યુતસિદ્ધ છે. વૃક્ષ, શરીર અને પરમાણુ, આ ત્રણે ઉદાહરણોમાં અયુતસિદ્ધ અવયવના ભેદમાં રહેલો સમૂહ છે, માટે આ સમૂહ દ્રવ્ય કહેવાય છે. પતંજલિ મુનિ દ્રવ્યની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે બાંધે છે: अयुतसिद्धावयवभेदानुगतः समूहो द्रव्यम् જ્યાં અવયવો અને અવયવી જુદા ન જણાતા હોય તે દ્રવ્ય કહેવાય છે, શરીરમાં શરીર અને એના અવયવો જુદા જુદા જણાતા નથી માટે 'શરીર' એ દ્રવ્ય છે. અથવા દ્રવ્યાત્મક સમૂહ છે. આ પ્રમાણે ભૂતોનું દ્રવ્યરૂપે હોવું અથવા સમુદાયરૂપે હોવું એ ભૂતોનું સ્વરૂપ કહેવાય છે.

ત્રીજું રૂપ—પાંચ મહાભૂતો જેમાંથી ઉત્પન્ન થયાં છે તે પાંચ તન્માત્રા કહેવાય છે. આ તન્માત્રાઓ ભૂતોનું ત્રીજું રૂપ સૂક્ષ્મ નામથી ઓળખાય છે.

ચોથું રૂપ—ખ્યાતિ, ક્રિયા અને સ્થિતિ સ્વભાવવાળા ગુણો = સત્ત્વ, રજ અને તમસ્ નામના ગુણો. આ ગુણો સર્વ-દ્રવ્ય અને સમૂહોમાં અનુગત હોય છે માટે તે ચોથું રૂપ 'અન્વય' નામે ઓળખાય છે. વન આદિ સમુદાયોમાં એ ત્રણ ગુણો હોય છે અને શરીર તથા પરમાણુરૂપ દ્રવ્યોમાં પણ આ ત્રણે ગુણો અનુગત હોય છે.

પાંચમું રૂપ—'અર્થવત્વ' નામે ઓળખાય છે. સાંસારિક સુખ અને દુઃખના ઉપભોગ માટે તથા મુક્તિ અપાવવા માટે જ પાંચે ય ભૂતોની રચના છે. અથવા એમ કહો કે કાર્ય દ્રવ્ય માત્રની રચના ભોગ અને અપવર્ગને માટે જ છે. આને જ "અર્થવત્વ" કહેવામાં આવે છે. યોગી આ પાંચભૂતો અને તેના ઉપર બતાવેલા પાંચ રૂપો ઉપર સંયમ કરવાથી 'ભૂતજયી' થાય છે. એટલે સર્વભૂતો અને તેનાં રૂપો ઉપર યોગી પોતાનું પ્રભુત્વ જમાવે છે અને તેથી જેમ ગાય આદિ પ્રાણીઓ પોતાનાં બચ્ચાંઓ પાછળ ફરતાં રહે છે, તેમ સર્વભૂતો યોગીના સંકલ્પને અનુસરે છે. યોગીનાં સંકલ્પ પ્રમાણે ચાલવું એ જ ભૂતોનો સ્વભાવ બની જાય છે. આ એક અસાધારણ યોગસિદ્ધિ છે. ॥ ૪૪ ॥

સર્વ પ્રાણીઓ અને જડતત્વો યોગીના સંકલ્પને જ્યારે અનુસરે છે ત્યારે યોગીને શું મળે છે? આનો જવાબ નીચેના સૂત્રમાં આપવામાં આવ્યો છે:

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत् तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४५ ॥

પદાર્થઃ- (ततः) સ્થૂલ ઉપર સંયમ કરી તેનો જે જય મેળવ્યો છે તેનાથી (अणिमादिप्रादुर्भावः) અણિમા આદિ સિદ્ધિઓ યોગીને પ્રાદુર્ભૂત થાય છે (कायसम्पत्) કે જે સિદ્ધિઓ શરીરનો ઉત્કર્ષ છે અર્થાત્ શરીરની સંપત છે. (च) અને (तद्धर्मानभिघातः) શરીરના ધર્મોનો અભિઘાત થતો નથી, એટલે કે અગ્નિ આદિ ભૂતો યોગીના શરીરને બાળવું, વહેવડાવવું, ભીનું કરવું, સૂકવી નાખવું વગેરે કરી શકતા નથી.

ભાવાર્થ:- સ્થૂલ ઉપર સંયમ કરીને યોગી પ્રથમ ચાર સિદ્ધિઓ મેળવી શકે છે:-

(૧) અણિમા-સિદ્ધિ: મોટું શરીર હોય તો યોગી તેને ઘણું નાનું બનાવી શકે છે.

(૨) લઘિમા-સિદ્ધિ: યોગી પોતાના શરીરને રૂના કરતાં પણ વધારે હલકું બનાવી શકે છે.

(૩) મહિમા-સિદ્ધિ: યોગી પોતાના શરીરને હાથી, પર્વત અને નગર જેવડું મોટું પણ બનાવી શકે છે.

(૪) પ્રાપ્તિ સિદ્ધિ: બધા જ અર્થો યોગીને નજીક થઈ રહે છે, જેમકે યોગી ધારે તો ભૂમિ ઉપર ઊભા રહી પોતાની આંગળીથી ચંદ્રમાને પણ સ્પર્શી શકે છે.

(૫) પ્રાકામ્ય-સિદ્ધિ: એટલે યોગીની ઈચ્છાનો અભિઘાત થતો નથી. કોઈ પણ મહાભૂત યોગીની ઈચ્છાનો ભંગ કરતું નથી. દાખલા તરીકે, યોગી ધારે તો પાણી વગરની ભૂમિમાં નાહી શકે, ડૂબકીઓ પણ મારી શકે.

આ પ્રાકામ્ય-સિદ્ધિ ભૂતોના સ્વરૂપ ઉપર સંયમ કરવાથી યોગીને મળે છે.

(૬) વશિત્વ-સિદ્ધિ: સૂક્ષ્મ-વિષય ઉપર સંયમ કરવાથી યોગીને વશિત્વનામની સિદ્ધિ મળે છે. આનાથી ભૂત અને ભૌતિક અર્થોમાં યોગી સ્વતંત્ર બને છે. અને તેથી ભૂત અને ભૌતિક અર્થોને પોતે વ્યવસ્થિત રાખી શકે છે.

(૭) ઈશિતૃત્વસિદ્ધિ: અન્વય-વિષય ઉપર સંયમ કરવાથી યોગીને ઈશિતૃત્વસિદ્ધિ મળે છે. આથી યોગી ભૂતભૌતિક

અર્થોની ઉત્પત્તિ કરી શકે છે અને તેનો નાશ પણ કરી શકે છે અને અલૌકિક સુંદર રચના પણ કરી શકે છે.

(૮) કામાવસાયિત્વ સિદ્ધિ: અર્થવત્ત્વ ઉપર સંયમ કરવાથી યોગી જેવો સંકલ્પ કરે છે અને તેનાથી જે પ્રયોજન પાર પાડવા માગે છે તે પ્રમાણે કરી શકે છે. વિષમાંથી પણ અમૃતનું કામ લે છે અને અમૃતમાંથી પણ વિષનું કામ લે છે.

આ બધી સિદ્ધિઓ અને શકિતઓ મેળવવા છતાં યોગી ઈશ્વરના સંકલ્પનું ઉલ્લંઘન કરી શકતો નથી એટલે કે યોગી ગમે તેટલો સિદ્ધ થાય તોપણ તેને ઈશ્વરના સંકલ્પનું અનુસરણ કરવું જ પડે છે.

પછી યોગીને કાયસંપત્–સિદ્ધિ મળે છે, આ સિદ્ધિ આગળના સૂત્ર ૪૬માં બતાવવામાં આવે છે. આ સિદ્ધિ મળ્યા પછી યોગીના શરીરને પૃથ્વી અટકાવી શકતી નથી, પાણી પલાળી શકતું નથી, અગ્નિ બાળી શકતો નથી, વાયુ ઉડાડી શકતો નથી, ધકેલી પણ શકતો નથી. આકાશ યોગીના શરીરને ઢાંકી શકે છે, જેથી કરીને માણસ અથવા કોઈ પણ સિદ્ધ, યોગીને પોતાની પાસે હોય તોપણ જોઇ શકતો નથી.

હવે કાયની (શરીરની) સંપત્ રૂપ સિદ્ધિ બતાવે છે:

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥ ४६ ॥

પદાર્થ:– (रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि) રૂપ, લાવણ્ય, બળ અને વજ્ર જેવું કઠણ થવું (कायसंपत्) એ કાયસંપત્–સિદ્ધિ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:- યોગીના શરીરમાં બહુ જ સુંદર રૂપ આવે છે જેથી તે બધાને માટે દર્શનીય બની જાય છે. એના શરીર ઉપર ખૂબ લાવણ્ય આવી જાય છે. શરીર ઉપર બીજાને આંજી નાખે એવી કાંતિ છલકતી હોય છે, બળ પણ પુષ્કળ હોય છે અને શરીર વજ્ર જેવું કઠણ બની જાય છે. આ સર્વ યોગીની શરીરસંપત્ કહેવામાં આવે છે. ॥૪૬॥

હવે ઇંદ્રિયજયનો ઉપાય બતાવે છે:

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्दिन्द्रियजयः ॥ ४७ ॥

પદાર્થ:- (ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमात्) ગ્રહણ, સ્વરૂપ, અસ્મિતા, અન્વય અને અર્થવત્વ, આ પાંચ સંયમ કરવાથી (इन्द्रियजयः) ઇંદ્રિયો ઉપર વિજય મેળવાય છે.

ભાવાર્થ:- આ જ પાદના સૂત્ર ૪૪માં ગ્રાહ્યવિષયોનાં પાંચ રૂપો ઉપર સંયમ બતાવ્યો છે અને સૂત્ર ૪૫માં તેના ફળસ્વરૂપ સિદ્ધિ પણ બતાવી છે એ ધ્યાનમાં રાખવું. પ્રથમ પ્રશ્ન એ થાય છે કે ગ્રાહ્ય એટલે શું? આનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે: આંખ, કાન, નાક, રસના અને ત્વક્ ઇંદ્રિયોથી જે જે વિષયો જાણી શકાય છે તે બધા 'ગ્રાહ્ય' કહેવાય છે. એટલે કે પૃથ્વી, પાણી, પવન. તેજ અને આકાશ, તથા તેમાંથી પરિણામ પામતા બીજા અર્થો પણ ગ્રાહ્ય કહેવાય છે. ગ્રાહ્યવિષયો ઉપર સંયમ અને તેનાથી મળતી સિદ્ધિઓ પણ કહેવામાં આવી છે. હવે ઇંદ્રિયોનાં પાંચ રૂપો ઉપર સંયમ કરવાનું અને તેનાથી ફલિત થતી સિદ્ધિઓ કહેવામાં આવે છે.

(૧) 'ગ્રહણ' ઇંદ્રિયોનું પહેલું રૂપ ગણવામાં આવે છે. ગ્રહણ એટલે ઇંદ્રિયોમાંથી ગ્રાહ્યના આકારે પરિણમતી વૃત્તિ. આ વૃત્તિથી જ વિષયોને જાણી શકાય છે. ચક્ષુ-ઇંદ્રિયની વૃત્તિ 'ઘટાકાર' ન થાય તો ઘડાનું જ્ઞાન ન થાય. ગ્રહણ એટલે વિષયોની પકડ. ગ્રાહ્યને જાણ્યા વગર તેની પકડ શી રીતે સમજાય ? અર્થાત્ ન જ સમજાય; માટે પ્રથમ ગ્રાહ્યની સમજણ હોવી જરૂરી છે. શબ્દ આદિ બધા જ ગ્રાહ્ય છે અને તે સામાન્યવિશેષાત્મક છે. જેમકે ઘટત્વ સામાન્ય છે અને ઘડાના અવયવોનો સંનિવેશ અર્થાત ગોઠવણી=રચના, અથવા ઘડાનો આકાર આ વિશેષ કહેવાય છે. એટલે કે સામાન્ય અને વિશેષ બંને મળીને 'ગ્રાહ્ય'. કહેવાય છે. એકલા સામાન્યનું અથવા એકલા વિશેષનું ગ્રહણ ન જ હોઈ શકે. ઘડા ઉપર દૃષ્ટિ પડતાં જ તેનાં સામાન્ય અને વિશેષ જણાઇ જાય છે. ઇંદ્રિયોની વિષયાકાર વૃત્તિ કહો, વિષયનું આલોચન કહો અથવા ઇંદ્રિયનું વિષયાકાર પરિણમવું કહો, આ બધાં એક જ અર્થના બોધક છે, અને એને જ ગ્રહણ કહેવામાં આવે છે.

(૨) સ્વરૂપ એટલે ઇંદ્રિય પોતે જ. સાંખ્યના મતમાં અથવા મહર્ષિ પતંજલિના મતમાં જે પ્રકાશાત્મક બુદ્ધિ-સત્ત્વ છે તેના સામાન્ય અને વિશેષના બે પૃથક્ પૃથક્ ન જણાતા અર્થોની સાથે રહેનાર સમૂહ છે તે જ દ્રવ્યસ્વરૂપે ઇંદ્રિય કહેવાય છે. સંસ્કૃત ભાષામાં ભાષ્યકાર વ્યાસ-મુનિ આ પ્રમાણે લખે છે :

प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्त्वस्य सामान्यविशेषयोरयुत
सिद्धावयवभेदानुगतः समूहो द्रव्यमिन्द्रियम् ॥

બધી જ ઇંદ્રિયો અસ્મિતારૂપ અહંકારમાંથી જન્મી છે અર્થાત્ પરિણમી છે. એ ઇંદ્રિય પોતે અને તેના અવયવો જુદા જુદા જણાતા નથી. ઇંદ્રિય પોતે સત્ત્વગુણના સમૂહ રૂપે છે અને તે 'દ્રવ્ય' જ છે. આ જ ઇંદ્રિયનું સ્વરૂપ છે. આ બાબતમાં મહર્ષિ કપિલ અને મહર્ષિ પતંજલિમાં કોઈ પણ જાતનો મતભેદ નથી.

(૩) હવે ઇંદ્રિયોનું ત્રીજું રૂપ અસ્મિતા શબ્દથી ઓળખાતો અહંકાર છે. ઇંદ્રિયો અહંકારમાંથી જન્મી છે એટલે ઇંદ્રિય કાર્ય છે અને અહંકાર કારણ છે. જ્યાં ઉપાદેયરૂપ કાર્ય હોય ત્યાં ઉપાદાનરૂપ કારણ હોય જ આમાં બે મત નથી. માટી કારણ છે અને ઘડો તેનું કાર્ય છે માટે જ્યાં ઘડો ત્યાં માટી હોય જ. માટીને છોડી ઘડો ન જ રહી શકે માટી જેમ ઘડામાં સામાન્યરૂપે અનુગત છે તેમ ઇંદ્રિયોમાં પણ કારણરૂપ અહંકાર અનુગત છે એમ સમજવું જોઈએ. આથી સ્પષ્ટ થાય છે કે 'અસ્મિતા' એ ઇંદ્રિયોનું ત્રીજું રૂપ છે.

(૪) ઇંદ્રિયોનું ચોથું રૂપ આ પ્રમાણે છે. નિશ્ચયાત્મક પ્રકાશ, ક્રિયા અને સ્થિતિ સ્વભાવવાળા જે સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ નામના ગુણો છે, એ જ ઇંદ્રિયોનું ચોથું રૂપ છે. એ ગુણોમાંથી જ અહંકાર સાથે ઇંદ્રિયો પરિણમી છે. એટલે ઇંદ્રિયોમાં સત્વ આદિ ગુણોનો અનુગમ છે માટે એ ગુણો ઇંદ્રિયોનું ચોથું રૂપ કહેવાય છે.

(૫) હવે ઇંદ્રિયોનું પાંચમું રૂપ સમજો. સત્ત્વાદિ બધા જ ગુણો 'પરાર્થ' છે અર્થાત્ બીજાને માટે છે. બીજો કોણ? એનો ઉત્તર એ છે કે 'આત્મા'. આત્માને મુક્ત કરવા માટે જ ગુણોની પ્રવૃત્તિ છે. આ 'પરાર્થત્વ' જ ઇંદ્રિયોનું પાંચમું રૂપ ગણાય છે. ઇંદ્રિયો પણ 'પરાર્થ' જ છે.

આ પાંચે ય રૂપો ઉપર સંયમ કરવાથી અને તે સંયમને યોગી જ્યારે વિજયશીલ બનાવે છે ત્યારે યોગીને 'ઇંદ્રિયજય' મળે છે, અર્થાત્ ઇંદ્રિયોનાં પાંચેય રૂપો ઉપર વિજય પ્રાપ્ત થાય છે.

'ઇંદ્રિયજય' પ્રાદુર્ભૂત થવાથી યોગીને કઈ સિદ્ધિઓ મળે છે તે આ સૂત્રમાં સમજાવે છે:

ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ४८ ॥

પદાર્થ:–(ततः) તેથી અર્થાત્ ઇંદ્રિયજયથી (मनोजवित्वम्) શરીરને ઉત્તમમાં ઉત્તમ ગતિ મળવી તે 'મનોજવિત્વ' કહેવાય છે. એક જ ક્ષણમાં પૃથ્વીની પ્રદક્ષિણા કરવી આ ગતિ કંઈ સાધારણ ન કહેવાય? આ એક યોગબળ છે. (विकरणभावः) કરણ એટલે ઇંદ્રિયો. વિકરણ એટલે શરીર-નિરપેક્ષ ઇંદ્રિયો ધારેલા ઠેકાણે જાય અને ત્યાં વિષયોનું આલોચન કરવું. (च) અને (प्रधानजयः) પ્રકૃતિ અને એના બધાય વિકારો ઉપર કાબુ હોવો તે.

ભાવાર્થ:– શરીરમાં મનના જેટલો વેગ આવવો તથા મનના જેટલી ગતિ આવવી તે 'મનોજવિત્વ' નામની સિદ્ધિ કહેવાય છે. શરીરની અપેક્ષા રાખ્યા વગર યોગી

ધારેલા સ્થળે ઇન્દ્રિયોથી વિષયોનું આલોચન કરે તે વિકરણભાવ સિદ્ધિ કહેવાય છે. પ્રકૃતિ અને સર્વ વિકૃતિઓ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત થવો તે 'પ્રધાનજય' નામની સિદ્ધિ કહેવાય છે. આ ત્રણ સિદ્ધિઓ 'મધુપ્રતીક' નામે યોગશાસ્ત્રમાં ઓળખાય છે. ઉપર કહેલાં ઇન્દ્રિયોનાં પાંચ રૂપો ઉપર વિજય મેળવ્યા પછી આ ત્રણ 'મધુપ્રતીક' નામે ઓળખાતી સિદ્ધિઓ સંયમી યોગીને મળે છે. ॥ ૪૮ ॥

ઇન્દ્રિયજય અને તેની સિદ્ધિ બતાવ્યા પછી હવે અંતઃકરણની સિદ્ધિ બતાવે છે :

सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं
सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ४९ ॥

પદાર્થ:– (सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य) મહત્તત્વરૂપ બુદ્ધિના સાત્વિક પરિણામ ઉપર જેણે સંયમ સ્થિર કર્યો હોય એવા યોગીને (सर्वभावाधिष्ठातृत्वम्) કાર્યકારણભાવે રહેલા સર્વ જડ પદાર્થો ઉપર અધિષ્ઠાન મળે છે (च) અને (सर्वज्ञातृत्वम्) સર્વનું જ્ઞાતાપણું પ્રાપ્ત થાય છે.

ભાવાર્થ:– આ સૂત્રમાં પુરુષ એટલે આત્મા અને મહત્તત્ત્વના ભેદની ખ્યાતિ બતાવી છે અને તેના ઉપર સંયમ કરવા માટે યોગીને સમજ આપવામાં આવી છે. મહત્તત્ત્વ પ્રકૃતિનું પહેલું પરિણામ છે. એટલા માટે જ એ તત્ત્વને મહત્ વિશેષણ આપવામાં આવ્યું છે. આ મહત્તત્ત્વ નામ પરિણામને બુદ્ધિતત્ત્વ પણ કહેવામાં આવે છે, સંસારના બધાય પરિણામો કરતાં આ મહત્તત્ત્વ સૌથી ઉત્તમ છે. આ

મહત્તત્ત્વ પણ ત્રિગુણાત્મક છે એટલે એમાં રજોગુણ અને તમોગુણ પણ છે જ. જ્યારે આ તત્ત્વમાં રજોગુણ અને તમોગુણ બહુ જ થોડાં થઈ જાય છે, અને સત્ત્વગુણ ખૂબ જ વધી જાય છે ત્યારે યોગીએ તેના ઉપર સંયમ કરવો, અને જ્યારે સંયમ પૂરેપૂરો થઈ વિજય પામે ત્યારે યોગીને સર્વ જડ પદાર્થો ઉપર અધિષ્ઠાતૃત્વ અર્થાત્ સ્વામિત્વ એક જાતનો અધિકાર મળી જાય છે. બધા જ પ્રમેયરૂપ અર્થો અને ગ્રહણ અર્થાત્ ઇંદ્રિયો અને ત્રણ અંતઃકરણ યોગીના વશમાં આવી જાય છે. આ સિદ્ધિ ક્રિયાત્મક છે. બીજી સિદ્ધિ સર્વજ્ઞાતૃત્વ છે, તે પણ યોગીને મળી જાય છે. સર્વને જાણવું એ જ્ઞાનાત્મક સિદ્ધિ કહેવાય છે. ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યકાળમાં વ્યવસ્થિત રહેલા ધર્મો એકસાથે ક્રમ વગર યોગીના જ્ઞાનના વિષયો સમાધિના પ્રભાવથી બને છે. આ જ્ઞાનને વિવેકજ્ઞાન કહેવામાં આવે છે, કારણ આમાં સત્ત્વ અને પુરુષનો વિવેક હોય છે; આ સિદ્ધિને ' વિશોકા સિદ્ધિ ' યોગશાસ્ત્રમાં કહેવાય છે. આના પરિણામે યોગીના ક્લેશ અને કર્મના બંધનો ક્ષીણ થઈ જાય છે અને સર્વથા સ્વતંત્ર સ્વામી બની યથેષ્ટ વિહાર કરે છે.

' વિશોકા ' નામની સિદ્ધિ મળ્યા પછી યોગી કયી ભૂમિકા ઉપર આવે છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છે :

तद्वैराग्यादपि दोषवीजक्षये कैवल्यम् ॥ ५० ॥

પદાર્થ :– (तद्वैराग्यात् अपि) તેના ઉપર પણ વૈરાગ્ય આવવાથી (दोषवीजक्षये) ક્લેશોનાં બીનો ક્ષય થઈ ગયા

પછી (कैवल्यम्) કૈવલ્ય અર્થાત્ પુરુષને પોતાનું વિશુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થાય છે.

ભાવાર્થ :– 'વિશોકા' નામની સિદ્ધિ ઉપર પણ યોગીને વૈરાગ્ય આવે છે, કારણ કે એ સિદ્ધિ પણ સત્ત્વગુણનું પરિણામ છે. યોગી તો સત્ત્વગુણને પણ ત્યાજ્ય સમજે છે એટલે તેના ઉપર પણ વૈરાગ્ય આવે છે, આ વૈરાગ્ય જ્ઞાનમય હોવાને લીધે પરમ વૈરાગ્ય તરીકે શાસ્ત્રમાં ઓળખાય છે. (જુઓ, સમાધિ-પાદ સૂત્ર ૧૬મું.) ત્રણ ગુણો પરિણામી છે એટલે સત્ત્વગુણનું પણ પરિણામ થાય છે આ કારણથી વિવેકખ્યાતિ ઉપર પણ યોગીને વૈરાગ્ય આવે છે. યોગી સમજે છે કે માત્ર પુરુષ આત્મા જ અપરિણામી છે અને એ જ મેળવવા યોગ્ય છે. આવી જાતના ઉત્તમ વૈરાગ્યને લીધે કલેશ કર્મનાં જે વાસનારૂપ અથવા સંસ્કારરૂપ બી હોય છે, તે બળેલાં બી જેવા થઈ રહે છે. એટલે તેમાંથી કલેશ, કર્મ આદિ કશું જ પરિણામ નીપજતું નથી, એટલે પુરુષ પોતાના સ્વરૂપમાં જ સ્થિર થાય છે. આ સ્થિતિ પુરુષની છે, અને તે જ કૈવલ્ય કહેવાય છે. તે અસંપ્રજ્ઞાત યોગની સીમા છે. આને જ મોક્ષ કહેવામાં આવે છે. જે બળેલાં બી જેવા સંસ્કારો બાકી રહ્યા હોય છે તેઓ પણ મનની સાથે પ્રકૃતિમાં લીન થઈ જાય છે. આ સ્થિતિ મળ્યા પછી આત્માને ત્રણ તાપોની જરા પણ અસર થતી નથી. સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ ત્રણે ગુણો ચરિતાર્થ થઈ જાય છે એટલે તેમને મુક્ત પુરુષને ઉદ્દેશીને કશું ય કરવા જેવું રહેતું

નથી. હવે પુરુષને ગુણો સાથેનો આત્યંતિક વિયોગ થાય છે, એટલે કે યોગી નિસ્ત્રૈગુણ્ય થાય છે. આ સ્થિતિએ પહોંચ્યા પછી કૈવલ્ય, સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠામાત્ર ચિતિશક્તિ-સ્વરૂપમાં આત્મા રહે છે. ॥ ૫૦ ॥

કૈવલ્ય અર્થાત્ મોક્ષને મેળવવા પ્રવૃત્તિ કરનાર યોગી ધીમે ધીમે એક પછી બીજી, બીજી પછી ત્રીજી અને ત્રીજી પછી ચોથી ભૂમિકા ઉપર આવે છે. જેમ જેમ યોગી આગળ વધે છે તેમ તેમ તેના ઉપર પ્રલોભનોનો ધોધમાર વરસાદ વરસે છે. આ સ્થિતિને પસાર કરનાર બહુ જ થોડા યોગીઓ હોય છે. વિશ્વામિત્ર જેવા સિદ્ધ યોગીઓ પણ સિદ્ધિના સપાટામાં આવી યોગભ્રષ્ટ થયા હતા તો પછી બીજાની તો વાત શી ? આ બાબત સૂત્રકાર નિમ્ન સૂત્રમાં સમજાવે છે:

स्थान्युपनिमन्त्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥

પદાર્થઃ-(स्थान्युपनिमन्त्रणे) ઉત્તમ સ્થાન પામેલા મહાન્ આત્માઓ આવા પરમસિદ્ધ યોગીને પોતાને ત્યાં આવવા નિમંત્રણો આપે છે અને ઉત્તમ વસ્તુઓની ભેટો પણ આપે છે, તેમાં (संगस्मयाकरणम्) આસક્તિ અને સ્મય કરવાં ન જોઈએ. સ્મય એટલે અહો મારો કેટલો બધો પ્રભાવ છે! આવા મહાન પુરુષો પણ મને માન આપે છે. આવી જાતના 'સ્મયમાં' યોગીઓએ ફસાવું ન જોઈએ. (पुनः अनिष्टप्रसङ्गात्) પ્રલોભનો અને સ્મયમાં પડવાથી ફરીથી અનિષ્ટ પ્રસંગોના ચક્કરમાં યોગીને પડવું પડતું હોવાથી.

ભાવાર્થ:–યોગીઓ ચાર પ્રકારના હોય છે. આ ચાર પ્રકાર તેમની યોગ્યતાને આધારે બને છે:–

(૧) પ્રથમકલ્પિક યોગી, (૨) મધુભૂમિક યોગી, (૩) પ્રજ્ઞાજ્યોતિ યોગી, (૪) અતિક્રાંતભાવનીય યોગી. આ ચારે ય યોગીઓની આ પ્રમાણે વ્યાખ્યા છે.

(૧) પ્રથમકલ્પિક યોગી:–જેણે યોગીનો અભ્યાસ શરૂ કર્યો છે અને થોડોઘણો યોગમાં આગળ વધ્યો છે પણ કોઇ પણ પ્રકારની સિદ્ધિ હજી સુધી મળી નથી, તે યોગી પ્રથમકલ્પિક યોગી કહેવાય છે.

(૨) ઋતંભરાપ્રજ્ઞ યોગી:– જેણે નિર્વિતર્ક સમાધિ કરી ઋતંભરા નામક પ્રજ્ઞા મેળવી લીધી છે. આ બીજા નંબરના યોગીને સિદ્ધિઓ એક પછી એક મળ્યે જાય છે. એ બીજાના શરીરમાં પ્રવેશ પણ કરી શકે છે વગેરે.

(૩) ભૂતેન્દ્રિયજયી યોગી:– આ યોગીએ સ્થૂલ અને સૂક્ષ્મ ભૂતો ઉપર સંયમ કરી સ્થૂલ અને સૂક્ષ્મ ભૂતોને સંપૂર્ણ જાણી લીધા હોય છે આથી તે ભૂતજયી કહેવાય છે. (જુઓ સૂત્ર ૩–૪૪નું ભાષ્ય.) ઇંદ્રિયોનાં જે પાંચ રૂપો સમજાવ્યાં છે (જુઓ સૂત્ર ૩–૪૭) તેના ઉપર સંયમ કરી ઇંદ્રિયોને સંપૂર્ણ રીતે જાણી લઈ તેના ઉપર પોતાનો પૂર્ણ કાબુ જમાવી દીધો છે તે ઇંદ્રિયજયી કહેવાય છે. આમ ત્રીજા નંબરનો યોગી ભૂતેન્દ્રિયજયી બનેલો હોય છે.

(૪) અતિક્રાંતભાવનીય યોગી:– આ યોગી જીવન્મુક્ત કહેવાય છે, એને આ છેલ્લો જ દેહ હોય છે, હવે પછી

એને શરીર મળવાનું નથી. શરીર છૂટે એટલે એ મુક્તિ પામેલો હોય છે. પોતાના સ્વરૂપમાં જ તે આવી પહોંચ્યો હોય છે. સત્ત્વ, રજસ અને તમસ ગુણોથી તે સર્વથા મુક્ત થયેલો હોય છે. મુક્ત આત્મા ત્રિગુણાતીત કહેવાય છે.

આ ચાર વર્ગમાંના કયા વર્ગવાળાને સંસારમાં પડવાનો વધારે ભય હોય છે? તેનો આ સૂત્રમાં વિચાર કર્યો છે. બળવાન્ પ્રલોભનો જ્યારે યોગી સમક્ષ આવે છે ત્યારે યોગીને પડવાનો ભય ઊભો થાય છે. (૧) પહેલા પ્રકારના યોગીને આવાં પ્રલોભનો આવતાં નથી, કારણ તે તો યોગના પહેલા પગથિયા ઉપર રહી યોગસાધના કરે છે, એનામાં કોઈ યોગજન્ય અલૌકિક શક્તિ આવી નથી એટલે ઉત્તમ માનવોમાં અને દેવ ગણાતા મહાત્માઓમાં તે બહુ આદર પામેલો હોતો નથી. આ કારણથી તેને યોગભ્રષ્ટ થવાની બીક હોતી નથી.

(૨) બીજા નંબરનો યોગી આગળ વધેલો હોય છે; તેણે યોગસિદ્ધિઓ પણ મેળવેલી હોય છે. પારકાનાં ચિત્તને સંપૂર્ણ રીતે જાણી શકે છે. પરકાના શરીરમાં પ્રવેશ પણ કરી શકે છે. આવા યોગીઓ તરફ દેવ તરીકે ગણાતા મહાત્માઓનો આદર વધી જાય છે, સાધારણ માણસો તો એમને લોકોત્તર યોગી તરીકે સમજે છે. આવા યોગી સમક્ષ પ્રલોભનો ઊભાં થાય છે. સ્થાની દેવો અર્થાત્ યોગના બળથી ઉત્તમ સ્થાનને પામેલા મહાત્માઓ એમને પોતાને ત્યાં આમંત્રણ આપી બોલાવે

છે, ઉત્તમ ઉત્તમ વસ્તુઓની ભેટ સ્વીકારવા તેમને વિનવે છે, કંચન અને કામિનીના લોભથી બચવું કોઈ સાધારણ વાત નથી. માટે આ સ્થિતિએ પહોંચેલા યોગીને સૂત્રકાર પતંજલિ મુનિ સૂત્ર દ્વારા લાલબત્તી ધારણ કરે છે કે, ખબરદાર, કોઈ પણ પ્રલોભનમાં ફસાઇ ન જતો, જો ફસાઇશ તો મુક્તિ તારે માટે નથી. આ સ્થિતિમાં વિજય મેળવી તારે આગળ આવવાનું છે વગેરે. આ બીજા નંબરના યોગીને પૂરેપૂરો ભય હોય છે.

(૩) ભૂતેન્દ્રિયજયીઃ– આ ત્રીજા નંબરનો યોગી છે. આ યોગીએ ભૂત અને ભૌતિક અર્થોના રહસ્યને પૂરેપૂરું જાણી લીધું હોય છે. ઇન્દ્રિયોના પાંચેય રૂપોને ઓળખી લીધા હોય છે. આમાંનો કોઈ પણ વિષય ત્રીજા નંબરના યોગીને ખેંચી શકવા સમર્થ નથી. કંચનની એ ઢેફા જેટલી જ કિંમત સમજે છે, કામિની પણ આ વીતરાગ યોગી પાસે લાચાર બની જાય છે. ઉચ્ચ સ્થાનને પામેલા અને દેવ શબ્દથી ઓળખાતા મહાત્માઓ આ યોગીને નિમંત્રણ આપી પ્રલોભનમાં પાડી શકતા નથી. આ યોગી તો દેવોને પણ દર્શનીય અને વંદનીય બન્યો હોય છે, એટલે ત્રીજા નંબરનો યોગી સર્વથા અને સર્વદા નિર્ભય હોય છે. એમણે મેળવેલાં સાધનો ખૂબ મજબૂત હોય છે. મનમાં જ્યાં કોઈ પણ જાતનો રાગ જ નથી, રજોગુણ નહીંવત્ થઈ રહ્યો હોય, તૃષ્ણામાત્ર જ્યાં અભાવરૂપમાં આવી ગઈ હોય એવી ઉચ્ચસ્થિતિએ પહોંચેલા યોગીને ભય હોય જ નહિ.

(૪) આ ચોથા નંબરનો યોગી 'અતિક્રાંતભાવનીય' કહેવાય છે. આ યોગી તો ત્રીજા નંબરના યોગી કરતાં પણ આગળ ગયેલો હોય છે. એમણે તો ભાવનાના બધા ય વિષયો ઉપર સમાધિ કરેલી હોય છે. એને તો આ ચરમદેહ હોય છે; વર્તમાન શરીર છૂટયા પછી એ મુક્ત જ હોય છે. માત્ર મનને પ્રકૃતિમાં વિલીન કરી દેવાનું હોય છે અને તે શરીર છૂટવા સાથે જ વગર પ્રયત્ને વિલીન થઈ જાય છે. એટલે કે ચોથા નંબરના યોગીને કોઈ પણ જાતનો ભય રહેતો નથી, એ કદી પણ યોગભ્રષ્ટ થતો નથી, કારણ કે એમણે યોગભ્રંશના તમામ કારણને બાળીને ભસ્મ કરી નાંખ્યા હોય છે.

આ ઉપરથી સમજી શકાશે કે બીજા નંબરના યોગીને માથે પ્રલોભનોનો ભય લટકતો હોય છે માટે તેમણે ખૂબ સાવધાન રહેવાની જરૂર છે. એમણે ચોક્કસ માનવું જોઇએ કે અદિવ્ય અને દિવ્ય તમામ વિષયો પરિણામે દુઃખજનક છે અને સંસારચક્રમાં પાડનાર છે. જો આ પ્રલોભનસ્થિતિને યોગી પાર કરી જાય તો તેને 'અસંપ્રજ્ઞાત' યોગ જરૂર પ્રાપ્ત થાય છે અને મુક્તિ પણ ચોક્કસ મળે છે. બીજા નંબરના યોગીને મહર્ષિ યોગિવર પતંજલિએ આપેલી લાલબત્તી ઉપર ખૂબ ધ્યાન આપવું જોઇએ.

'મહાત્માઓ અને દેવો મને માન આપે છે' એ માન્યતાથી ફુલાઈ ન જવું, અને કોઈ પણ વિષયમાં આસક્તિ રાખવી નહિ. વિષયમાત્ર પ્રાકૃત હોય છે અને

તેનાથી આત્મસ્વરૂપ મેળવવાને જરાય પણ મદદ મળતી નથી. त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः યોગીઓ વિષયોનો ત્યાગ કરીને જ મોક્ષ અથવા સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠા મેળવી શકયા છે. આ વેદાંતોનો પણ સિદ્ધાંત છે. ॥ ૫૧ ॥

હવે વિવેકજન્ય જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરવાનો બીજો ઉપાય સૂત્રકાર બતાવે છે:

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद् विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५२ ॥

પદાર્થ:– (क्षणतत्क्रमयोः) ક્ષણ અને તેના ક્રમના ઉપર (संयमात्) સંયમ કરવાથી (विवेकजम्) અતિસૂક્ષ્મ અર્થોના ભેદનો સાક્ષાત્કાર થાય છે અને તેનાથી પુરુષ-પર્યન્તનું (ज्ञानम्) જ્ઞાન થાય છે અર્થાત્ યોગી સર્વજ્ઞ થાય છે.

ભાવાર્થ:– પ્રથમ તો 'ક્ષણ' એટલે શું તે જાણવું જોઇએ. ક્ષણ એ અત્યંત સૂક્ષ્મ કાળનો વાચક શબ્દ છે. જેમ ઢેકું તૂટતાં તૂટતાં છેવટે એવી સ્થિતિ ઉપર પહોંચે છે કે જે પરમાણુરૂપ બની રહે છે. અને એ પરમાણુરૂપ અવયવ અવિભાજ્ય હોય છે. તેમ દિવસ, કલાક, મિનિટ વગેરે સૂક્ષ્માતિ સૂક્ષ્મ ભાગ થતાં છેવટે એવી સ્થિતિ ઉપર એક ભાગ આવે છે કે એનો પણ વિભાગ થઇ શકતો નથી એટલે કે એના વિભાગની કલ્પના થઇ શકતી નથી. એ સૂક્ષ્માતિ-સૂક્ષ્મ ભાગને ક્ષણ કહે છે. મહર્ષિ કપિલ અને મહામુનિ પતંજલિ 'કાળ'ને તત્ત્વ તરીકે માનતા નથી, પંતજલિમુનિ 'કાળ'ને એટલે કે સમયને 'વિકલ્પ' તરીકે માને છે. વિકલ્પની વ્યાખ્યા સૂત્રકારે પ્રથમ પાદમાં કરી આપી છે તે જોવી.

જેને માટે શબ્દ તો વ્યવહારમાં વપરાય પણ એ શબ્દનો અર્થ મેળવવા જાવ તો તે અર્થ ન મળે, જેમકે– આ વાંઝણીનો દીકરો જાય છે એટલે કે 'વંધ્યાપુત્ર' જાય છે. અહીં વંધ્યાપુત્ર શબ્દનો પ્રયોગ તો કર્યો પણ વંધ્યાપુત્રરૂપ અર્થ ક્યાંય પણ જોવા મળશે નહિ.

'ક્ષણ' વિકલ્પરૂપ છે એમ માનવામાં શું કારણ છે અથવા કહો કે સમયને વાસ્તવ અર્થ શા માટે ન માનવો ? આનો ઉત્તર એ છે કે, જેમ પરમાણુઓ ભેગાં થાય છે તેમ ક્ષણો ભેગા થતા નથી. એનો તો માત્ર ક્રમ હોય છે કે, એક પછી બીજો અને બીજા પછી ત્રીજો વગેરે. જો ક્ષણો તત્ત્વ તરીકે સત્ય હોત તો તેનો સમાહાર થઈ શકત અર્થાત્ તેનો સમૂહ થઈ શકત. સમાહાર (સમૂહ) નથી થતો માટે ક્ષણ, કલાક, દિવસ, રાત, પખવાડિયું વગેરે વ્યવહાર પૂરતું છે તેથી વિકલ્પ છે, અર્થશૂન્યમાત્ર શબ્દ-પ્રયોગ જ છે.

હવે 'ક્રમ' શું છે તેનો વિચાર કરીએ. ક્રમ એ ક્ષણોનો આશ્રય કરીને રહેલ છે. પૂર્વ (પહેલો) ક્ષણ અને ઉત્તર (પછીનો) ક્ષણ આ બે ક્ષણો વચ્ચે જે અંતર હોય છે તેને 'ક્રમ' કહેવામાં આવે છે. આ ક્રમ પણ માત્ર વ્યાવહારિક છે, ખરું તત્ત્વ નથી. મિથ્યા વસ્તુનો આશ્રય કરનાર મિથ્યા જ હોય. વળી ક્રમોનો પણ સમૂહ થઈ શકતો નથી. એક જ સમયમાં બે કે ત્રણ ક્રમો ભેગા કદી હોતા નથી ભેગા કરી શકાતા નથી એકી સાથે ઉત્પન્ન

થનાર બે અર્થોમાં ક્રમ હોતો નથી. ગાયને કે ભેંસને બે શીંગડા એક સાથે જ જન્મે છે અને સાથે વધે છે; આ બે શીંગડમાં અમુક શીંગડું પહેલું અને બીજું શીંગડું પછીનું છે એમ ન કહેવાય. સદૈવ બે સાથે રહેનારમાં પણ ક્રમ હોતો નથી, જેમ બે અનાદિ પરમાણુઓમાં ઉત્પત્તિદૃષ્ટિએ ક્રમ હોતો નથી.

કેટલાક આચાર્યો માને છે કે अभेद्यः कालभागः सत्यः क्षणः (યોગસૂત્ર ઉપર મણિપ્રભા ટીકા) જે કાળનો ભાગ અભેદ્ય છે તે સાચો છે અને તેને ક્ષણ કહેવામાં આવે છે. મુહૂર્ત, દિન, પક્ષ, માસ વગેરે અસત્ય છે કારણ કે ક્ષણોનો સમૂહ એ કોઈ વાસ્તવ સમૂહ નથી, મુહૂર્ત, દિન વગેરે ક્ષણોના સમુદાય રૂપે જ ગણાય. જે એક કાળમાં એક સાથે ન રહી શકે તેનો સમુદાય સત્ય શી રીતે હોઇ શકે? માટે ક્રમ પણ વ્યાવહારિક જ છે. આ ક્ષણો અને તેના ક્રમ ઉપર ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ કરવાથી પ્રકૃતિ અને પુરુષના ભેદનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન થાય છે. આ જ્ઞાન સર્વજ્ઞતા કહેવાય છે. ॥ ૫૨ ॥

હવે વિવેકજન્ય જ્ઞાન કે જે, સર્વ અર્થો વિષયરૂપ જ છે તેમાંથી તેનો ખાસ વિષય બતાવે છે. જો આ વિવેકજ જ્ઞાન ન હોય તો બીજા જ્ઞાનથી એ વિષયનું સત્ય જ્ઞાન ન જ થઈ શકે. તે વિષયને સૂત્રકાર આ પ્રમાણે સમજાવે છે:

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुयल्योस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ५३ ॥

પદાર્થ:- (तुल्ययोः) બે એકસરખા જડ કે ચેતન રૂપ

અર્થો હોય તો અને (जातिलक्षणदेशैः) જો જાતિ, લક્ષણ અને દેશથી (अन्यतानवच्छेदात्) તેના ભેદનો નિર્ણય ન થઇ શકતો હોય તો (ततः) વિવેકજજ્ઞાનથી (प्रतिपत्तिः) નિર્ણય યોગી લોકો કરી શકે છે.

ભાવાર્થઃ– સાધારણ રીતે જોતાં એકસરખા બે અર્થોના ભેદની પરખ અયોગી = લૌકિક માણસોને જાતિથી, લક્ષણથી અને દેશથી થઇ શકે છે. જેમકે બે પશુઓ ગાય અને ભેંસ, એકસરખાં છે તો લોકો કહે છે કે આ ગાય છે અને આ ભેંસ છે. ગાયની ગોત્વ જાતિ છે અને ભેંસની મહષીત્વ જાતિ છે. આ જાતિને જોઈ ગાય અને ભેંસનો તફાવત જણાઇ જાય છે, માટે જાતિ, એ ભેદજ્ઞાનનું કારણ છે.

સમાન જાતિના બે અર્થો એકસરખા હોય તો તેમાં રહેલા લક્ષણો ઉપરથી ભેદજ્ઞાન થઈ શકે છે. જેમકે બે ગાયો એકસરખી છે, તેમાં ગોત્વ જાતિ પણ સમાન છે તો એના ભેદનું જ્ઞાન લક્ષણથી લૌકિક માણસ કરી લે છે. બે સરખી ગાયોમાંથી એક ગાયની આંખ કાળી છે અને બીજી ગાયને શરીર ઉપર સાથિયા જેવું ચિહ્ન પડયું હોય છે. આ ચિહ્નને લક્ષણ કહેવામાં આવે છે. આ લક્ષણોથી બંને ગાયોના ભેદનું જ્ઞાન થઈ શકે છે. અને લોકો કહે છે કે આ કાલાક્ષી (કાળી આંખવાળી) ગાય દેવદત્તની છે અને આ સ્વસ્તિકવાળી ગાય યજ્ઞદત્તની છે. આ ઉપરથી સમજી શકાય છે કે લક્ષણ પણ અર્થોમાં રહેલા ભેદને ઓળખવાનું સાધન છે.

જેની જાતિ સમાન હોય અને લક્ષણો પણ એકસરખાં જ હોય તો તેવા બે તુલ્ય અર્થોના ભેદનું જ્ઞાન જુદા જુદા દેશથી થાય છે, જેમકે બે આમળાં એકસરખાં હોય તો તેને રહેવાની બે જુદી જુદી જગ્યા હોય છે; એ જગ્યારૂપ દેશથી સરખા બે આમળાંમાં રહેલા ભેદનું જ્ઞાન થઈ શકે છે. અથવા બે જોડ સોનાની બંગડી એકસરખી કરાવી હોય અને એક જોડ બેને પહેરી હોય તથા બીજી જોડ પેટીમાં મૂકી હોય તો, એક જોડનું પરસ્પરનું ભેદજ્ઞાન હાથરૂપ દેશથી અને બીજી જોડનું ભેદજ્ઞાન પેટીરૂપ દેશથી થઈ જાય છે કે, જે બંગડીની જોડ પહેરી છે તેથી ભિન્ન (જુદી) પેટીમાં પડી છે.

આથી સમજાય છે કે દેશથી પણ સમાન અર્થોની જુદાઈ ઓળખી શકાય છે. આથી સ્પષ્ટ થયું કે જાતિ, લક્ષણ અને દેશ આ ત્રણે સમાન અર્થોમાં રહેલા ભેદના નિર્ણય કરવામાં કારણ છે.

પણ જ્યાં આ ત્રણે સમાન અર્થોમાં રહેલા ભેદને ન સમજાવી શકે ત્યારે શું કરવું ? ધારો કે બે એકસરખા આમળા છે; એક પૂર્વમાં અને બીજો ઉત્તર ભાગમાં છે. યોગી કોઈ બીજા અર્થને જાણવામાં તલ્લીન થયો હોય અને કોઈએ યોગીને ખબર ન પડે તેવી રીતે એની જગ્યા બદલી નાખી હોય અને સાથે મૂકી દીધા હોય, પછી કોઈ પૂછે કે યોગિરાજ, કહો આ બે આમળાંમાંથી પૂર્વદિશાનું આમળું કયું અને ઉત્તરભાગમાં પડેલું હતું તે આમળું કયું ?

અહીં યોગીને જાતિ, લક્ષણ અને દેશથી ભેદનું જ્ઞાન થતું નથી માટે તેને એ વખતે ‘ વિવેકજ ’ જ્ઞાનનો ઉપયોગ કરવો પડે છે. અને તેનાથી યોગી કહી શકે છે કે આ પૂર્વભાગમાં પડેલું અને આ ઉત્તરભાગમાં પડેલું આમળું છે.

બીજી રીતે જુઓઃ– એક તપેલીમાં એક શેર પાણી છે અને બીજી તપેલીમાં એક શેર પાણી છે; આ બે પાણી બે તપેલીરૂપ દેશને લીધે જુદાં ઓળખાય છે, પણ જ્યારે એ બે પાણી એક જ તપેલીમાં ભેગાં કરવામાં આવે ત્યારે પહેલી તપેલીનું પાણી કયું અને બીજું તપેલીનું પાણી કયું ? પાણી બેશેર છે એ તો ચોક્કસ છે છતાં પહેલી તપેલીના શેર પાણીનો અને બીજી તપેલીના શેર પાણીનો ભેદ જાણી શકાતો નથી. આવી સ્થિતિમાં યોગીને ‘ વિવેકજ ’ જ્ઞાનથી બન્ને શેર શેર પાણીમાં રહેલા ભેદનું જ્ઞાન થાય છે. આ જ પ્રમાણે પૃથ્વીના સફેદ પરમાણુઓમાં તથા જળના સફેદ પરમાણુઓમાં રહેલા ભેદને યોગી ‘ વિવેકજ ’ જ્ઞાનના બળે જાણી શકે છે. પુરુષ અને પ્રકૃતિના ભેદનું પ્રત્યક્ષજ્ઞાન પણ યોગીને ‘ વિવેકજ ’ જ્ઞાનથી થાય છે. ॥ ૫૩ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં કહેવામાં આવેલું ‘ વિવેકજ ’ જ્ઞાન જ મોક્ષનું સાક્ષાત્કારણ છે, તે આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર બતાવે છે :

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति
विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥

પદાર્થ:– (तारकम्) 'વિવેકજ' જ્ઞાનને તારક જ્ઞાન કહેવાય છે. કારણ કે તે સંસારરૂપ મહાસાગરમાંથી તારનારું છે. (सर्वविषयम्) એ જ્ઞાન બધાય અર્થોને વિષય તરીકે ગ્રહણ કરે છે. (सर्वथाविषयम्) અર્થોમાં જેટલાં વિશેષણો હોય તે બધાંયને વિષય કરે છે. (अक्रमम्) ક્રમ વગર એકી સાથે સઘળા વિષયોને એ જ્ઞાન જાણે છે. (च) અને (इति) આવું 'વિવેકજ' જ્ઞાન હોય છે.

ભાવાર્થ:– સત્ત્વ અને પુરુષના ભેદને વિષય કરનારું જ્ઞાન 'વિવેકજ' જ્ઞાન કહેવાય છે. આ જ્ઞાનમાં કાર્ય અને કારણરૂપ સર્વ અર્થો વિષય થઈને રહેલા હોય છે. અર્થગત જે જે વિશેષણો હોય તેનું પણ જ્ઞાન થાય છે. ગોઘટાદિ અર્થ ભૂતકાળમાં, વર્તમાનકાળમાં કે અનાગત અવસ્થામાં હોય તોપણ તે સર્વનું તેને જ્ઞાન થાય છે. ભાવાર્થ એ છે કે 'વિવેકજ' જ્ઞાનવાળો યોગી સર્વજ્ઞ થઈ જાય છે. આ જ્ઞાનને તારક જ્ઞાન પણ કહેવામાં આવે છે. કારણ કે એ જ્ઞાન યોગીને સંસારરૂપ સાગરમાંથી પાર ઉતારીને મુક્તિ અપાવે છે. યોગીનો દેહ આ જ્ઞાન થાય ત્યારે છેલ્લામાં છેલ્લો હોય છે. એ દેહ પડે એટલે યોગી મુક્ત થાય છે. तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमाक्ष्ये તારક જ્ઞાનવાળા યોગીને મુક્તિ મેળવવા માટે પ્રકૃત ચરમ શરીર પડવાની જ જરૂર છે. વિવેકજ જ્ઞાન 'અનૌપદેશિક' કહેવાય છે એટલે કે એ જ્ઞાન મેળવવા માટે યોગીને કોઈ ગુરુ પાસે જવું પડતું નથી. એ તો યોગીની પોતાની જ પ્રતિભામાંથી

ઉત્પન્ન થાય છે. આ જ્ઞાનવાળો યોગી વીતરાગ અને પરમ વૈરાગ્યવાન્ હોય છે. 'વિવેકજ' જ્ઞાન 'પરિપૂર્ણ જ્ઞાન' છે. સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં જે જે સિદ્ધિઓ અને જ્ઞાનો મળતાં હોય છે તે આ વિવેકજ જ્ઞાનના જ અશંભૂત હોય છે, સંપ્રજ્ઞાત યોગરૂપ પ્રદીપ પણ આ જ જ્ઞાનનો અંશ હોય છે, મધુમતી ભૂમિ વગેરે આ વિવેકજ જ્ઞાનનાં પ્રાથમિક પગથિયાં હોય છે. ॥ ૫૪ ॥

ઉક્ત 'વિવેકજ' તારક જ્ઞાનનું ફળ શું છે? તે આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર બતાવે છે :

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ ५५ ॥

પદાર્થઃ– (सत्त्वपुरुषयोः) સત્ત્વ અને પુરુષની (शुद्धि-साम्ये) સમાન શુદ્ધિ થયા પછી (कैवल्यम्) પુરુષને મોક્ષ મળે છે. (इति) ઇતિ શબ્દ પાદની સમાપ્તિને સૂચવે છે.

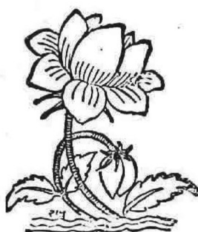
ભાવાર્થઃ– સત્ત્વ એટલે કે બુદ્ધિ સત્ત્વ. આ સત્ત્વમાંથી જ્યારે રજોગુણ અને તમોગુણની નિવૃત્તિ થઈ જાય છે અને બુદ્ધિસત્ત્વ અત્યંત નિર્મળ બની જાય છે ત્યારે તેમાંથી સર્વકર્તૃત્વના અભિમાનની નિવૃત્તિ થઈ જાય છે અને બુદ્ધિસત્ત્વ પોતાના ઉપાદાન કારણમાં વિલીન થઈ જાય છે, આ વિલીનીકરણને 'સત્ત્વની શુદ્ધિ' કહેવામાં આવે છે, જ્યારે બુદ્ધિસત્ત્વ પુરુષને અદૃશ્ય થાય છે ત્યારે પુરુષનો ઉપચરિત સુખ-દુઃખના અનુભવરૂપ ભોગ સદાને માટે નિવૃત્ત થઈ જાય છે, આ ઉપચરિત એટલે ગૌણ તરીકે

જણાતા ઉપભોગનું દૂર થવું. એ જ પુરુષની શુદ્ધિ છે. આ પ્રમાણે બુદ્ધિસત્ત્વ અને પુરુષની એકસરખી શુદ્ધિ થયા પછી પુરુષને મોક્ષ પ્રાપ્ત થઇ જાય છે, એટલે કે પુરુષ પોતાના સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત થઇ જાય છે. વૃત્તિઓના સારૂપ્યથી સંપૂર્ણ મુક્ત દ્રષ્ટારૂપ પુરુષનું સ્વરૂપમાં અવ-સ્થાન થાય છે. આ સ્થિતિને મુક્તિ કહેવામાં આવે છે. કેટલાક આચાર્યો બુદ્ધિસત્ત્વને પણ મુક્તિ મળે છે એમ કહે છે કારણ કે, એ પુરુષને ભોગ અને અપવર્ગ (મુક્તિ)ને માટે પ્રવૃત્તિ કર્યા કરતું હતું. સંપૂર્ણ ભોગ અને અપવર્ગ પુરુષને મળી ગયાં એટલે બુદ્ધિસત્ત્વ પણ એ કામમાંથી મુકત થયું. પણ બુદ્ધિસત્ત્વ અચેતન હોવાથી એને મુક્તિ જેવું કશું હોતું નથી, પુરુષ ચેતન હોવાથી એ જ મુક્તિ-સુખનો આનંદ માણી શકે છે. આ સૂત્રમાં ઇતિ શબ્દ મૂક્યો છે તે આ વિભૂતિપાદની સમાપ્તિ સૂચવે છે. ૫૫.

આ પાદમાં યોગના આઠ અંગોમાંના છેલ્લા ત્રણ અંગોની પ્રથમ વ્યાખ્યા કરી છે અને પછી એ ત્રણેનું 'સંયમ' એવું પારિભાષિક નામ આપ્યું છે. આ સંયમ ત્રણ જાતના પરિણામ ઉપર કરવાથી અતીત અને અનાગતનું યોગીને જ્ઞાન થાય છે. એ પ્રમાણે આગળ પણ જુદા જુદા સ્થાન ઉપર સંયમ કરવાની સમજ આપી જ્ઞાનરૂપ અને ક્રિયારૂપ અંતર–બહારની વિભૂતિઓ બતાવી છે. આ વિભૂતિઓ યોગીના લક્ષ્ય તરીકે નથી, યોગીનું લક્ષ્ય તો સ્વરૂપાવસ્થાનરૂપ મોક્ષ જ છે, છતાં વિભૂતિ બતાવવાનું

કારણ એ છે કે, યોગીમાં વિવિધ શક્તિઓ ઉત્પન્ન થાય છે એથી યોગીને મોક્ષ મળવાની પૂરેપૂરી ખાત્રી થઇ જાય છે, જેથી યોગી વિભૂતિઓમાં નહીં ફસાતાં મુક્તિ સુધી પહોંચી જાય છે. આ પ્રમાણે વિભૂતિપાદ સંપૂર્ણ થાય છે.

इति गुर्जरभाषाभाष्ययुते पातंजल योगदर्शने तृतीयो विभूतिपादः ।



अथ चतुर्थः कैवल्यपादः

આગળના ત્રણ પાદમાં સમાધિ, સમાધિનાં સાધન, અને મુખ્ય મુખ્ય વિભૂતિઓ બતાવવામાં આવ્યાં છે. સમાધિ આદિ બધાંય સાધનો કૈવલ્ય અર્થાત્ મોક્ષને માટે છે એટલે એ બધાં કૈવલ્યનાં કારણો જ છે. હવે કૈવલ્યને સમજાવવું છે. કૈવલ્યને પણ ત્યારે જ સમજાવી શકાય કે જ્યારે કૈવલ્યને લગતું ચિત્ત, સારી રીતે સમજી શકાય.

આ ચિત્તનો નિર્ણય કરવા માટે પાંચ પ્રકારની સિદ્ધિઓ આ સૂત્રમાં બતાવવામાં આવે છે અને તેમાંથી જાણી શકાશે કે કઈ સિદ્ધિ પાછળ કામ કરતું ચિત્ત મોક્ષને (કૈવલ્યને) માટે કામ કરતું હોય છે. પાંચ સિદ્ધિઓ આ પ્રમાણે છે:

जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजा सिद्धयः ॥ १ ॥

પદાર્થ:– (जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः) જન્મથી થનાર, ઔષધિથી થનાર, મન્ત્રથી થનાર, તપઃથી થનાર અને સમાધિથી થનાર (सिद्धयः) સિદ્ધિઓ છે.

ભાવાર્થ:– (૧) જન્મસિદ્ધિ, (૨) ઔષધિસિદ્ધિ, (૩) મંત્રસિદ્ધિ, (૪) તપઃસિદ્ધિ, (૫) સમાધિજ સિદ્ધિ.—આ પ્રમાણે પાંચ પ્રકારની સિદ્ધિઓ છે. આની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે છે:

(૧) જન્મસિદ્ધિ = જન્મથી જ જે સિદ્ધિ મળે તે. આમાં સિદ્ધિનું કારણ જન્મ નથી પણ જન્મ તો એક દ્વાર કહેવાય છે. જેમ કે, મહર્ષિ કપિલને જન્મથી જ સર્વ અર્થોનું યથાર્થ જ્ઞાન હતું અને તેમણે સાંખ્યશાસ્ત્રની રચના કરી. આ જન્મદ્વારા સિદ્ધિ કહેવાય. સિદ્ધિનું મુખ્ય કારણ તો પૂર્વ જન્મમાં કરેલાં સમાધિ અને તેનાં અનુષ્ઠાન જ હતાં અને તેનું ફળ વર્તમાન જન્મ દ્વારા મળી ગયું.

(૨) ઔષધિ-સિદ્ધિ = ઔષધિના સેવન કરવાથી પણ સિદ્ધિ મળે છે પણ કઈ ઔષધિ સિદ્ધિને આપનાર છે તે જાણવું જોઈએ. આને માટે કોઇ ધન્વન્તરિ જેવા વૈદ્યને શરણે જ જવું જોઇએ.

(૩) મંત્રસિદ્ધિ = મંત્રના જપ અને તેના અર્થની ભાવના કર્યા કરવાથી સમય પાકે ત્યારે આકાશ-ગમન વગેરેમાંથી કોઈક સિદ્ધિ મળે છે.

(૪) તપઃસિદ્ધિ = તપ કરવાથી સિદ્ધિ મળે છે, પણ તપ પરિપૂર્ણતાએ પહોંચ્યું હોય તો. તપની સિદ્ધિથી યોગીના સંકલ્પો સાચા જ પડે છે, યોગી કામરૂપી અને કામગામી બની જાય છે.

(૫) સમાધિજ-સિદ્ધિ = આ સિદ્ધિઓ તો સંયમને લીધે થાય છે, અને તે ત્રીજા પાદમાં કહેવાઇ છે. આ સિદ્ધિઓમાંથી સમાધિજ-સિદ્ધિ ઉત્તમ છે, કારણ કે એનો ઉદ્દેશ કૈવલ્ય મેળવવાનો હોય છે; માટે સમાધિજસિદ્ધિ પછળ કામ કરતું ચિત્ત જ કૈવલ્યભાગીય ચિત્ત છે એવું નિર્ધારણ થાય છે. ॥ ૧ ॥

ઔષધિ, મંત્ર, તપ અને સમાધિ આ ચાર સાધન વાળી ચાર સિદ્ધિઓ દ્વારા શરીર અને ઇંદ્રિયોનું રૂપાંતર થાય છે એટલે કે પરિણામાન્તર થાય છે. હવે ધારો કે, માનવ-શરીર અને ઇંદ્રિયો કોઇ ઉચ્ચત્તર શરીરમાં અને ઉચ્ચતર ઇંદ્રિયોમાં પરિણામ પામ્યાં તો એ ઉચ્ચતર શરીર અને ઇંદ્રિયોનાં ઉપાદાનકારણ શું હશે? કેવળ માનવ-શરીર અને ઇંદ્રિયોમાં રહેલાં ઉપાદાનો પૂરતાં થઇ શકે નહિ, કારણ કે દિવ્ય શરીર અને દિવ્ય ઇંદ્રિયોમાં વધારે પડતાં સાત્ત્વિક ઉપાદાનો જોઇએ, કે જે માનવ-શરીર અને ઇંદ્રિયોમાં હોતાં નથી, તો એ પુરવઠો દિવ્ય શરીર અને ઇંદ્રિયોમાં કયાંથી આવે છે? એ બધું આકસ્મિક થાય છે એમ તો માની શકાય નહિ. ઉપાદાનમાં જો વિલક્ષણતા ન હોય તો ઉપાદેયરૂપ કાર્યમાં વિલક્ષણતા ન જ આવે, એ સૌ કોઇ વિદ્વાન સમજી શકે છે. આ પ્રશ્નનો ઉત્તર આ નીચેના સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર આપે છે :

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

પદાર્થ:–(जात्यन्तरपरिणामः) બીજી ઉચ્ચતમ જાતિમાંનો પરિણામ (प्रकृत्यापूरात) માનવ શરીર અને ઇંદ્રિયોની જે પ્રકૃતિ છે તેના આપૂરથી અર્થાત્ નવાં શરીર અને ઇંદ્રિયોમાં પ્રકૃતિના ખૂટતા અવયવોના અનુપ્રવેશથી થાય છે.

ભાવાર્થ:-પ્રકૃત્યાપૂર એટલે પ્રકૃતિના અવયવોનો કાર્ય શરીર અને ઇંદ્રિયોમાં અનુપ્રવેશ થવો તે. શરીરની પ્રકૃતિ પૃથ્વીઆદિ પાંચ તન્માત્રાઓ છે. અને ઇંદ્રિયોની પ્રકૃતિ

અસ્મિતા અર્થાત્ અહંકાર તત્ત્વ છે. આમાંથી બીજી ઉચ્ચતર જાતિમાં શરીર અને ઇંદ્રિયોનું પરિણામ થાય છે. એટલે કે પંચતન્માત્રાના સાત્ત્વિક અવયવો બીજી જાતિમાં ગયેલા શરીરમાં પ્રવેશે છે અને બીજી જાતિમાં ગયેલી ઇંદ્રિયોમાં આસ્મિતાના સાત્ત્વિક અવયવો પ્રવેશે છે આથી દિવ્ય શરીર અને દિવ્ય ઇંદ્રિયો વિકાસ પામતાં હોય છે.

વડનું નાનકડું બી કોઈની પણ મદદ લીધા વગર મોટા વડમાં પરિણામ પામી શકતું નથી. બીની પ્રકૃતિરૂપ પાંચ મહાભૂતોના અવયવો બીમાં પ્રવેશ પામે છે ત્યારે જ તે બી મોટા વડના રૂપમાં પરિણમે છે. જમીનમાં બી પડે છે અને તે પાણી અને જમીનમાંથી રસ ચૂસે છે એટલે કે બીજા અવયવોને પોતામાં દાખલ કરતું રહે છે તેથી જ તે બી અંકુરરૂપે પરિણમે છે અને આગળ વધતાં વધતાં મહાન્ વડ થઈ જાય છે. બીને પાંચ મહાભૂતોમાંથી રસ રૂપે જે પુરવઠો મળે છે તે જ પ્રકૃતિનો આપૂર કહેવાય છે.

સિદ્ધિઓ દ્વારા શરીર અને ઇંદ્રિયો જે ઉચ્ચતર ભૂમિમાં પરિણમે છે તેમાં ધર્મ નિમિત્તરૂપે કારણ છે એમ પણ સમજી લેવું જોઈએ. પ્રકૃતિ નિમિત્તકારણ વગર પ્રવૃત્તિ કરતી નથી. જો અધર્મ નિમિત્ત રૂપે કારણ હોય તો શરીર અને ઇંદ્રિયોનું પરિણામ પશુઆદિની યોનિમાં પણ થાય છે. યોગીએ તો યોગ કરી ઉત્તમ ધર્મ મેળવ્યો હોય છે તેથી તેના શરીર અને ઇંદ્રિયો ઉચ્ચતર યોનિમાં પરિણમે

છે. ભાવાર્થ એ છે કે શરીર અને ઇંદ્રિયોની પ્રકૃતિ (ઉપાદાન કારણ) પોતપોતાના વિકારોને ધર્મ આદિની અપેક્ષા રાખી પોતાના અવયવોના અનુપ્રવેશ દ્વારા પોષતી જ રહે છે. આથી દિવ્ય શરીર અને દિવ્ય ઇંદ્રિયોમાં કારણ સામગ્રી ક્યાંથી આવે છે એ પ્રશ્નનો ખુલાસો મળી રહે છે. ॥ ૨ ॥

પ્રકૃતિ આપૂરને સ્વતંત્ર રીતે કરે છે કે કોઇથી અધિ-ષ્ઠિત થઇને એટલે કે, કોઇને આધીન રહીને ?

ઉત્તર:– પ્રકૃતિ જડ છે માટે તે આપૂર (પરિણામ)ને સ્વતંત્ર રીતે તો ન જ કરી શકે. ચેતનના સંબંધને લીધે જ જડપ્રકૃતિમાં પરિણામ થાય છે. ચેતન, ધર્મ અને અધર્મ વગેરે નિમિત્તકારણો ગણાય છે.

આમ છતાં કેટલાક સાંખ્યના આચાર્યો માને છે કે, પ્રકૃતિ પોતામાં પરિણામ કરવાને સ્વતંત્ર છે, તેમાં ઈશ્વર, ધર્મ કે અધર્મની જરૂર નથી. આ કારણથી પ્રકૃતિ સ્વતંત્ર રીતે આપૂરને સર્જાવે છે.

જો પ્રકૃતિનો આપૂર આપોઆપ થતો હોય તો ઈશ્વર, ધર્મ અને અધર્મ વગેરે નિમિત્તકારણોનું સ્થાન ક્યાં છે ? આ પ્રશ્નનો જવાબ સૂત્રકાર નીચેના આ સૂત્રમાં જણાવે છે :

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ३ ॥

પદાર્થ:– (निमित्तम्) જે નિમિત્તકારણ હોય છે તે (प्रकृतीनाम्) પ્રકૃતિઓનું (अप्रयोजक) પ્રયોજક નથી

એટલે કે પ્રકૃતિના કાર્ય કરવાના સ્વભાવને કરતું નથી. (ततः) નિમિત્ત કારણથી (तु) તો (वरणभेदः) આવરણનો ભંગ થાય છે. (क्षेत्रिकवत्) પાણી વાળનાર ખેડુત જેમ પાળને તોડે છે તેમ.

ભાવાર્થઃ- ઈશ્વર, ધર્મ અને અધર્મ વગેરે જે નિમિત્ત કારણો છે તે, પ્રકૃતિના સ્વભાવને બનાવતાં નથી. પ્રકૃતિ પોતાના સ્વભાવને લીધે જ પોતામાં પ્રવૃત્તિ ઉત્પન્ન કરે છે આ બાબતમાં નિમિત્ત કારણ અપ્રયોજક છે.

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् (गीता अ. ९ श्लो. १०)

પ્રકૃતિનો અધ્યક્ષ પરમાત્મા છે તેથી પ્રકૃતિ ચર અને અચર જગતને બનાવે છે. ગીતાના આ સિદ્ધાંતને પણ કેટલાક નિરીશ્વરવાદી સાંખ્યના આચાર્યો સ્વીકારતા નથી.

હવે પ્રશ્ન એ રહે છે કે જ્યારે જડ પ્રકૃતિ જ બધું કરી લે છે તો નિમિત્ત કારણનું સ્થાન ક્યાં છે?

આનો ઉત્તર એ છે કે, નિમિત્ત કારણનું સ્થાન આવરણનો ભંગ કરવામાં છે. જેમકે, ક્યારામાં પાણી વાળનાર ખેડુતને નીચાણ તરફ વહેતા પાણીને આડી આવતી પાળને તોડવામાં કામ કરવાનું હોય છે. પાળ તૂટચા પછી તો પાણી આપોઆપ જ ક્યારામાં ભરાઈ જાય છે. અહીં ખેડુત નિમિત્તકારણ છે અને તેને પાળ રૂપ આવરણને તોડવાનું જ કામ હોય છે, પ્રકૃતિને પ્રવૃત્તિ આપવાનું નહિ. આ જ પ્રમાણે ઇશ્વર, ધર્મ, અધર્મ વગેરે નિમિત્ત કારણોનું કામ પ્રકૃતિને કાર્ય

કરવામાં આડે આવતા વિઘ્નોને તોડવામાં હોય છે. આથી સૂત્રકારે સમજાવ્યું છે કે પ્રકૃતિ–અર્થાત્ ઉપાદાનકારણની અને નિમિત્તકારણની શક્તિ જુદી જુદી છે. ઉપાદાન-કારણનું સ્થાન નિમિત્તકારણ ન જ લઈ શકે.

આવરણનો ભંગ કરવામાં જ ઈશ્વરનું કર્તૃત્વ છે. અને એથી ઈશ્વર જગતનો કર્તા કહેવાય છે.

આમ હોવા છતાં સેશ્વરસાંખ્યસિદ્ધાંતવાદી કહે છે કે, પ્રકૃતિ ઉપર ઈશ્વરની સત્તા છે અને બુદ્ધિપૂર્વક રચનાને પ્રકૃતિ ઈશ્વરની મદદ લીધા વગર ન જ કરી શકે. ઈશ્વરને નિમિત્તકારણ માનવામાં તો બંને પક્ષોને વાંધો નથી.

'મારે આ આત્માને આ ભોગ કરાવવો છે.' આનું જ્ઞાન જડ પ્રકૃતિને હોતું નથી, માટે પ્રકૃતિને પ્રવૃત્તિ કરાવવામાં પણ ઈશ્વરની જરૂર છે. આ જ કારણથી મહર્ષિ પતંજલિએ પ્રકૃતિ ઉપર ઈશ્વરનું અધિષ્ઠાન સ્વીકાર્યું અને તેમણે ઈશ્વરનું લક્ષણ આ પ્રમાણે કર્યું છે.

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।। १–२४

ઈશ્વર શબ્દનો અર્થ જ અધિષ્ઠાતા થાય છે. એટલે મહર્ષિ પંતજલિ 'પ્રકૃતિ ઉપર કર્મસાપેક્ષ થઈ સત્તા ચલાવે છે.'

ઈશ્વર વસ્તુઓના સ્વભાવને ઉત્પન્ન કરતો નથી. અગ્નિના પરમાણુઓમાં વિવિધ શક્તિઓ સ્વાભાવિક છે. અગ્નિના પરમાણુઓમાં પ્રકાશ આપવાની અને દાહ કરવાની શક્તિને ઈશ્વર પેદા કરતો નથી. એ તો એમાં સ્વાભાવિક

છે, છતાં એ શકિતઓને યોગ્ય દિશામાં વાળવાનું કામ તો ઇશ્વર જ કરે છે. આથી ઈશ્વર સર્વજ્ઞ અને સર્વ-શકિતમાન્ કહેવાય છે.

પ્રકાશ આપવાનું કામ અગ્નિમાં સ્વાભાવિક છે પણ ઘરમાં કયારે પ્રકાશ આપવો અને કયારે ન આપવો એ કામ અગ્નિનું નથી. એ તો ઘરના માલિકને જ્યારે પ્રકાશ જોઇએ ત્યારે તે દીપકને સળગાવે છે અને ન જોઇએ ત્યારે દીપક બુઝાવી નાખે છે. આ ઉપયોગ કરવામાં અગ્નિ આડે આવી શકતો નથી. આથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ઈશ્વર નિમિત્તકારણ છે અને તે પ્રકૃતિ ઉપર અધિષ્ઠાન ધરાવે છે. આ વસ્તુનો ઇન્કાર કોઇ પણ ન કરી શકે. આથી એ સ્પષ્ટ સમજાય છે કે પ્રકૃતિ નવાં શરીરો બનાવવા માટે 'આપૂર' આપે છે પણ 'આપૂર' કેટલો આપવો અને કયારે બંધ પાડવો એ કામ તો નિમિત્તકારણ ઈશ્વરનું જ છે. આપૂર એટલે નવાં શરીરો બનાવવા માટે જોઇતા પરમાણુરૂપ અવયવો. ॥ ૩ ॥

જ્યારે યોગીને બધી સિદ્ધિઓ મળી જાય છે ત્યારે તેનામાં ઘણી શક્તિઓ આવે છે, પોતાને માટે નવાં શરીરો પણ બનાવી શકે છે. યોગીને જ્યારે એવી ઇચ્છા થાય કે હું અનેક શરીર દ્વારા અનેક ભોગ (સુખદુઃખ) કરી, કર્મનો નાશ કરી જલદી મુક્તિ મેળવી કૃતાર્થ થાઉં; ત્યારે પ્રકૃતિ-માંથી અનેક શરીરો બનાવે છે અને ઇંદ્રિયો પણ બનાવે છે. કોઇક શરીર દ્વારા તપ કરે છે તો કોઇક શરીર

દ્વારા ધર્માનુષ્ઠાન કરે છે. આ વખતે તે પોતાના એક જ મનથી (કે જે કર્મ દ્વારા જન્મથી તેને મળ્યું છે તેનાથી) બધા શરીર ચલાવે છે કે પ્રત્યેક શરીર દીઠ જુદાં જુદાં મન બનાવે છે ? જો જુદાં જુદાં મન બનાવી શરીરો ચલાવે તો હરેક અભિપ્રાયનું અનુસંધાન કોઇ એક મન શી રીતે કરી શકે ? દાખલા તરીકેઃ–ગંગાદત્તના મનમાં જે કંઈ અભિપ્રાય હોય તેનું અનુસંધાન 'યમુનાદત્ત' કરી શકતો નથી. અને અનુસંધાન (સ્મરણ) તો યોગીને થવું જોઈએ; માટે યોગી પોતાને જન્મથી મળેલા એક ચિત્તથી જ બધાં શરીરોને ચલાવે છે એમ માનવું રહ્યું. જેમ દીવાનો પ્રકાશ પ્રસરણશીલ હોવાથી દૂર દૂર અજવાળું આપી શકે છે તેમ એક જ મન પ્રસરણશીલ હોવાથી દૂર દૂર રહેલાં શરીરોને ચલાવી શકશે. આ માનવું ઠીક તો લાગે છે પણ મનને આવી રીતે પ્રસરણશીલ માનવું એ યોગ્ય નથી. મન તો સૂક્ષ્મ છે, માટે હરેક શરીર દીઠ એક એક મન યોગીએ બનાવવાં જ રહ્યાં. આ માનવામાં પ્રતિસંધાન (સ્મરણ) ન થઇ શકવાની જે શંકા કરી છે તેનું સમાધાન બીજી રીતે કરવામાં આવશે. આથી સિદ્ધાંત એ ઠર્યો કે જેટલાં શરીર તેટલાં મન યોગી પોતાના યોગથી પ્રાપ્ત થયેલા ધર્મને બળે બનાવે છે. આમાં શંકા એ થાય છે કે એ મન કયા ઉપાદાનકારણમાંથી બનાવે છે ? આનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર આપે છે :

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

પદાર્થઃ–(निर्माणचित्तानि) યોગી જે ચિત્તોને બનાવે છે

તે 'નિર્માણચિત્ત' કહેવાય છે અને તે (अस्मितामात्रात्) અહંકારરૂપ તત્ત્વમાંથી.

ભાવાર્થઃ-જ્યારે યોગી સિદ્ધિના બળે અનેક શરીરો અને ઇંદ્રિયો બનાવે છે ત્યારે હરેક શરીર દીઠ એક એક મનને પણ બનાવે છે. આ મન અહંકાર રૂપ તત્ત્વમાંથી જ ઉત્પન્ન થાય છે. એટલે કે અહંકારમાંથી ઇંદ્રિયોની જેમ મન પણ પરિણમે છે. આ પરિણામમાં ઉપાદાન અહંકાર હોય છે. અને નિમિત્તકારણ યોગીએ મેળવેલો યોગજ ધર્મ છે. 'तेषां कारणमाह अस्मितात्रादिति, मनःकारणादहङ्कारादित्यर्थः' અર્થ મનનું કારણ છે અસ્મિતા અને અસ્મિતા એટલે અહંકાર. આ પ્રમાણે ભાવાગણેશ વગેરે યોગશાસ્ત્રોના વિદ્વાનો માને છે. ॥ ૪ ॥

હવે ઉપર જે શંકા કરવામાં આવી છે કે જો ઘણાં મનોમાંનું દરેક મન દરેક શરીરને જુદી જુદી પ્રકૃતિમાં જોડે તો તે બધાં મનનાં જુદા જુદા અભિપ્રાયોનું અનુસંધાન કોઈ એક મન શી રીતે કરી શકે ? અને સ્મરણ પણ શી રીતે કરી શકે ? આનો ઉત્તર સૂત્રકાર આ સૂત્રમાં આપે છે. આ ઠેકાણે એટલું યાદ રાખવું જરૂરી છે કે સૂત્રકાર ચિત્ત અને મનમાં કશો ભેદ માનતા નથી એટલે કોઈ ઠેકાણે ચિત્ત તો કોઈ ઠેકાણે મનનો એક જ અર્થમાં પ્રયોગ કરે છે:

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

પદાર્થઃ-(अनेकेषाम्) અનેક ચિત્તોની (प्रवृत्तिभेदे) પ્રવૃત્તિમાં ભિન્નતા હોય છે તેથી (एकम् चित्तम्) એક ચિત્ત

તે બધા ઉપર (प्रयोजकम्) પ્રયોજક તરીકે હોય છે. તેથી પ્રવૃત્તિમાં ભિન્નતા આવી શકશે નહિ.

ભાવાર્થ:-પ્રતિશરીર એક એક મન હોય છે. ધારો કે યોગીએ ચાર શરીરો પ્રકૃિતમાંથી બનાવ્યાં. અને તેમાં અસ્મિતામાંથી ચાર મન પણ બનાવ્યાં. હવે આ ચારેય મન શરીરને જુદી જુદી પ્રવૃત્તિ કરાવવા લાગ્યાં તો આ ચારેય મનોની પ્રવૃત્તિ કરાવવામાં એકતા શી રીતે જળવાય ? જેમ જુદા જુદા માણસો જુદા જુદા અભિપ્રાયને લઈ પોતપોતાની પ્રવૃત્તિ આદરે છે, તેમ તે ચારેય મનો પોતપોતાના જુદા જુદા અભિપ્રાયથી જુદી જુદી પ્રવૃત્તિ આદરે એ સ્વાભાવિક છે, તો યોગી આ બધી પ્રવૃત્તિઓ પાછળ રહેલા અભિપ્રાયોનું અનુસંધાન શી રીતે કરી શકે અને એ બધાય મનોના અનુભવોનું સ્મરણ પણ યોગી શી રીતે કરી શકે ? કારણ કે नान्यदृष्टं स्मरत्यन्यः એકે અનુભવેલા અર્થનું સ્મરણ બીજાને થતું નથી. આ શંકાનો ઉત્તર એ છે કે યોગી જુદા જુદા શરીરોમાં કામ કરતાં જુદાં જુદાં નિર્માણ ચિત્તો ઉપર એક વધારાનું સૌને પ્રેરણા આપનાર પ્રયોજક ચિત્ત બનાવે છે. આ પ્રયોજક ચિત્તના અભિપ્રાય પ્રમાણે જ બધાં ચિત્તો કામ કરતાં હોય છે આથી પ્રવૃત્તિઓનો ભલે ભેદ રહે પણ એની પાછળનો અભિપ્રાય તો સૌનો એક જ હોય છે. દાખલા તરીકે:- માણસના શરીરમાં એક જ મન કામ કરે છે અને એના અભિપ્રાય અનુસરી આંખ, કાન, નાક, હાથ, પગ વગેરે ઇંદ્રિયો

પોતપોતાની જુદી જુદી પ્રવૃત્તિઓ કરે છે. આથી અભિપ્રાયમાં ફરક પડતો નથી. તેમ, આંખે શું જોયું ? કાને શું સાંભળ્યું એનું સ્મરણ પણ ચિત્તને થાય છે, તેમ પ્રયોજક ચિત્તને પણ બધાય ચિત્તોના અનુભવોનું સ્મરણ થશે. અને જુદી જુદી પ્રવૃત્તિઓ હોવા છતાં પ્રયોજક-ચિત્તના અભિપ્રાયમાં ફરક પડશે નહિ. સારાંશ એ છે કે, નિર્માણચિત્તો ઉપર એક વધારાનું પ્રયોજક ચિત્ત યોગી બનાવે છે. અને તેના અભિપ્રાયને અનુસરી બીજાં ચિત્ત કામ કરે છે અને સૌ કોઈ જુદી જુદી પ્રવૃત્તિઓ કરે છે. ॥ ૫ ॥

જેમ યોગીને પાંચ પ્રકારની સિદ્ધિઓ હોય છે તેમ તેને પાંચ પ્રકારનાં મન અથવા ચિત્ત પણ હોય છે. એ પાંચ પ્રકારમાંથી જે ચિત્ત 'ધ્યાનજ' એટલે કે સામાધિ દ્વારા સંસ્કાર પામેલું હોય છે તે સૌથી ઉત્તમ છે. એ બાબત કારણ સાથે સૂત્રકાર મહર્ષિ પંતજલિ આ સૂત્રમાં સમજાવે છેઃ

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

પદાર્થઃ- (तत्र) પાંચ પ્રકારનાં ચિત્તોમાં (ध्यानज) 'સમાધિજ' ચિત્ત (अनाशयम्) વાસનાથી રહિત થયેલું હોય છે. તેથી જ તે મોક્ષભાગીય ચિત્ત કહેવાય છે.

ભાવાર્થઃ-યોગીને સિદ્ધિઓ જેમ પાંચ પ્રકારની હોય છે તેમ મન પણ પાંચ પ્રકારનાં હોય છે. (૧) જન્મદ્વારા મળેલું ચિત્ત, (૨) ઔષધિઓના પ્રયોગોથી સંસ્કાર પામેલું

ચિત્ત, (૩) મંત્રના જપ અને તેની નિરન્તર ભાવનાથી સંસ્કાર પામેલું ચિત્ત, (૪) તપ કરી કરીને જેને સંસ્કાર આપવામાં આવેલું હોય તે ચિત્ત. જેમ કે વિશ્વામિત્ર આદિ મહાતપસ્વીઓએ પોતાના ચિત્તને સંસ્કાર આપી બનાવેલું ચિત્ત. અને (૫) ધ્યાન એટલે કે સમાધિ. સમાધિ કરીને સંસ્કારમાં આવેલું ચિત્ત. આ પાંચ પ્રકારનાં સંસ્કાર પામેલાં ચિત્તોમાં સમાધિના સંસ્કારોથી સિદ્ધ થયેલું ચિત્ત ઉત્તમ હોય છે, તેમાં કારણ એ છે કે એ ચિત્તમાં ક્લેશ અને કર્મની વાસના હોતી નથી, વાસનાથી વિહીન થયેલું ચિત્ત જ મોક્ષ મેળવવાને યોગ્ય છે. બીજાં ચિત્તોમાં રાગદ્વેષ ભરેલા હોય છે તેથી તે મોક્ષભાગીય નથી. રાવણ અને હિરણ્ય-કશિપુએ તપ કરી પોતાનાં ચિત્તને સંસ્કૃત બનાવ્યાં હતાં પણ તેમાંથી રાગદ્વેષ દૂર થયા નહોતા; આ કારણથી એનાં ચિત્ત મોક્ષ મેળવવાને લાયક નહોતાં. દુર્વાસા ઋષિનાં દૃષ્ટાંતો પણ આપવામાં આવે છે. તેઓ મહાન્ તપસ્વી હતા પણ તેનું ચિત્ત રાગ, દ્વેષ અને ક્રોધથી મુક્ત ન હતું. તપસ્વીઓ માટે કહેવામાં આવે છે કે सुलभकोपा हि तपस्विनः તપસ્વી લોકોને જલદી ક્રોધ ચડી જાય છે. આથી સ્પષ્ટ થાય છે કે કેવળ તપથી સંસ્કાર પામેલું ચિત્ત મોક્ષપક્ષમાં નથી. આ કારણથી ધ્યાનના અર્થાત્ યોગના સંસ્કારોથી સંસ્કૃત થયેલું ચિત્ત જ અવિદ્યા, અસ્મિતા, રાગ, દ્વેષ, અને અભિનિવેશોથી રહિત થયેલું હોય છે અને તેથી એ ચિત્તની પ્રાપ્તિ માટે યોગીએ યત્ન કરવો જોઇએ. ॥ ૬ ॥

યોગીનું ચિત્ત મોક્ષપક્ષીય છે કારણ કે તે વાસનારહિત છે. એવું ઉપરના સૂત્રમાં કહેવામાં આવ્યું છે. એ ચિત્તના મોક્ષપક્ષીય હોવામાં એક બીજો હેતુ આ સૂત્રમાં આપવામાં આવે છેઃ

कर्मशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

પદાર્થઃ–(योगिनः) યોગીનું (कर्म) કર્મ (अशुक्लाकृष्णम्) અશુકલ અને અકૃષ્ણ હોય છે. જ્યારે (इतरेषाम्) બીજાઓનું કર્મ (त्रिविधम्) ત્રણ પ્રકારનું હોય છે.

ભાવાર્થઃ– યોગીનું ચિત્ત મોક્ષભાગીય હોવામાં એ કારણ છે કે, તે વાસનાથી રહિત થયેલું હોય છે. અને બીજું કારણ એ છે કે યોગીનું કર્મ શુકલ યે નથી અને કૃષ્ણ યે નથી, એટલે કે એ કર્મ પાપરૂપ નથી અને પુણ્યરૂપ પણ નથી. જે કર્મ સુખનું કારણ હોય તે પુણ્યકર્મ કહેવાય છે અને એને જ 'શુકલ કર્મ' યોગીની પરિભાષામાં કહે છે. જે કર્મ દુઃખનું કારણ છે તેને પાપકર્મ કહે છે અને કૃષ્ણ (કાળું) કર્મ પણ કહે છે. યોગીનું કર્મ નિષ્કામ હોય છે એટલે તે સુખનું કારણ નથી તેમ દુઃખનું પણ કારણ નથી. આ કર્મને લીધે પણ યોગીનું ચિત્ત મોક્ષભાગીય છે.

યોગશાસ્ત્ર પ્રમાણે કર્મની મીમાંસા આ પ્રમાણે છેઃ– કર્મ ચાર જાતનાં છેઃ (૧) શુકલ કર્મ, (૨) કૃષ્ણ કર્મ, (૩) શુકલકૃષ્ણ કર્મ, (૪) અશુકલ અને અકૃષ્ણકર્મ.

(૧) જેઓ તપ, સ્વાધ્યાય અને ધ્યાન કરે છે તેઓનું કર્મ શુકલ હોય છે. તપ, સ્વાધ્યાય અને ધ્યાન આ બાહ્ય-

સાધનો નથી પણ અંદરનાં સાધનો છે; આ સાધનોથી કોઈને પીડા થતી નથી માટે એનાથી થતાં કર્મ શુકલ કહેવાય છે.

(૨) દુષ્ટ લોકોનાં કર્મ કૃષ્ણ (કાળાં કર્મ) હોય છે, કારણ કે, એનાં કર્મ બીજાને દુઃખ આપનારાં હોય છે.

(૩) જે કર્મ કરવામાં બહારનાં સાધનોની જરૂર પડે છે. જેમકે વેપાર, ખેતી, યુદ્ધ, હુન્નરઉદ્યોગ વગેરે. આમાં બહારનાં સાધનોની જરૂર પડે છે અને એ કર્મ બીજાઓને લાભકર્તા હોય છે અને થોડેઘણે અંશે એમાં હિંસા પણ હોય છે, આ કારણથી એ કર્મ 'શુકલકૃષ્ણ' કહેવાય છે. આવાં કર્મો માણસ માત્ર કરે છે. યજ્ઞયાગાદિ કર્મ પણ શુકલકૃષ્ણ કહેવાય છે, કારણ કે તે તદ્દન હિંસારહિત નથી.

(૪) ફળની ઈચ્છા રાખ્યા વગર જે કર્મ કરવામાં આવે છે અર્થાત્ કર્મનું ફળ ઈશ્વરને સમર્પિત કરી દેવામાં આવે છે તે કર્મ અશુકલ અને અકૃષ્ણ કહેવાય છે. કારણ કે નિષ્કામ કર્મ જાતિ, આયુષ અને ભોગને ઉત્પન્ન કરતું નથી. આવાં કર્મ સંન્યાસીઓ કે જેનાં કર્મ ક્ષીણ થઈ ગયેલાં હોય છે તે જ કરે છે. અથવા ચરમ શરીર વાળા યોગીઓ જ કરે છે. આવા યોગીઓ -કર્મફળ ઈશ્વરને અર્પણ કરી મરણ પછી તરત મુક્ત જ થઈ જાય છે.

માટે નિષ્કામ યોગીઓનાં કર્મ અશુકલ અને અકૃષ્ણ હોય છે. સામાન્ય ભાષામાં કહીએ તો યોગીઓનાં કર્મ સુખ કે દુઃખના કારણરૂપ નથી. આવા કર્મવાળા યોગીઓનું ચિત્ત મોક્ષભાગીય હોય છે.

યોગીનું ચિત્ત મોક્ષભાગીય છે કારણ કે તે 'અનાશય' છે. યોગીનું ચિત્ત મોક્ષભાગીય છે કારણ કે એનું (યોગીનું) કર્મ અશુકલ અને અકૃષ્ણ હોય છે. આ પ્રમાણે કર્મના મોક્ષભાગીય હોવામાં બે હેતુઓ છે. ॥ ૭ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં કર્મના આશયનું વિવેચન કર્યું, હવે ક્લેશના આશયનું વિવેચન આ સૂત્રમાં કરે છે :

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

પદાર્થઃ- (ततः) ચાર પ્રકારનાં કર્મોમાંથી ત્રણ પ્રકારના કર્મનો આશય હોય છે અને તે જાતિ, આયુષ્ અને ભોગ રૂપે છે. ત્રણ પ્રકારના કર્મમાંથી (तद्विपाकानुगुणानाम्) ત્રણ પ્રકારના કર્મનો જે વિપાક થાય છે તેને અનુકૂળ (वासना-नाम्) વાસનાઓની (अभिव्यक्तिः) પ્રકટતા થાય છે.

ભાવાર્થઃ- ધારો કે કર્મનો વિપાક મનુષ્યના શરીર રૂપે અને તેના આયુષ્ તથા ભોગ રૂપે થયો. તો મનુષ્યને અનુકૂળ વાસનાનો જ અવિર્ભાવ થવો જોઇએ, તો જ માનવ-જીવન બની શકે. પૂર્વ જન્મમાં પશુનો જન્મ હોય અને પછી તરત જ મનુષ્યનો જન્મ થયો હોય તો એ માનવદેહમાં પશુની વાસના ન જન્મવી જોઇએ. કારણ કે, પશુ તો ઘાસ ખાતું હતું અને જો એ જ આત્માને માનવદેહમાં ઘાસ ખાવાની વાસના જાગે તો માનવ-જીવન ન જ બની શકે. આ કારણથી પશુના જન્મ પહેલાં ગમે ત્યારે તે આત્મા માનવદેહ ધારી બન્યો હોય, તે માનવની જ વાસના જાગવી જોઇએ, તો જ દૂધ અને અન્ન કે જે

માનવીય ખોરાક છે તે ખાવાની તે આત્માને સ્મૃતિ થાય. અવિદ્યા, અસ્મિતા, રાગ, દ્વેષ અને અભિનિવેશરૂપ ક્લેશોથી ચિત્તમાં વાસના બંધાય છે. ચિત્ત પ્રથમ ઇંદ્રિયો દ્વારા પદાર્થોનો અનુભવ કરે છે અને તેનાથી તે જ ચિત્તમાં સંસ્કાર બંધાય છે. હવે આ સંસ્કાર જ્યારે પાછો ફરી માનવ-જન્મ મળે ત્યારે તે સંસ્કાર તે જ ચિત્તમાં સ્મૃતિ રૂપે પરિણમે છે. કર્મથી મનુષ્યનો દેહ મળ્યો અને તેને લગતી સંસ્કારજન્ય વાસના જાગી એટલે મનુષ્ય-દેહને લગતો ખોરાક વગેરે નવીન દેહધારી માનવાત્મા લઈ શકે છે અને માનવ–જીવન શરૂ થાય છે. આ જ પ્રમાણે પશુઆદિમાં પણ સમજવું. શુક્લ કર્મનું પરિણામ બહુ જ ઉત્તમ શરીરમાં થાય છે, કૃષ્ણ કર્મનું પરિણામ પશુ આદિ તિર્યક્ પ્રાણીઓમાં થાય છે, અને શુક્લકૃષ્ણ કર્મનું પરિણામ માનવદેહમાં આવે છે. એ પણ ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ. ॥ ૮ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં જણાવ્યું છે કે વિપાકને અનુકૂળ જે વાસના હોય તેની જ અભિવ્યક્તિ થાય છે. હવે ધારો કે મનુષ્યયોનિમાં એક બાળકનો જન્મ થયો તો મનુષ્ય-જન્મને અનુકૂળ વાસના કઈ છે? તેનું સમાધાન આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર બતાવે છે :

जातिदेशकालव्यवहितानामपि आनन्तर्यं
संस्कारयोरेकस्मृतिरूपत्वात् ॥ ९ ॥

પદાર્થ:-(जातिदेशकालव्यवहितानाम्) વાસના જાતિ,

દેશ અને કાળથી વ્યવહિત થયેલી હોય (अपि) તો પણ એ વ્યવહિત વાસનાની જ અભિવ્યક્તિ થશે, કારણ કે જન્મરૂપ વિપાક અને એ વાસનાનો જ (आनन्तर्यम्) અનુક્રમ હોય છે કારણ કે (स्मृतिसंस्कारयोः) સ્મૃતિ અને સંસ્કારની (एकरूपत्वात्) એકરૂપતા હોય છે.

ભાવાર્થઃ– સંસ્કારરૂપે રહેલા ધર્મ અને અધર્મનો વિપાક મનુષ્યજન્મરૂપે થયો, માટે માનવજન્મને અનુકૂળ વાસના જ જાગવી જોઈએ. હવે નિયમ એવો છે કે સંસ્કારમાંથી વાસના જન્મે છે. વાસના રાગ અને દ્વેષરૂપ ક્લેશનું પરિણામ છે. આથી સંસ્કાર અને વાસનાનું આનન્તર્ય માનવું રહ્યું. ચિત્તમાં રહેલા ધર્મ અને અધર્મરૂપ સંસ્કારોથી જ્યારે મનુષ્ય યોનિ મળે છે, તો પછી માનવના રાગ–દ્વેષમાંથી જન્મેલી વાસના જ માનવબાળના ચિત્તમાં જાગવી જોઈએ. માનવજન્મની વાસના દૂધ પીવા અને અન્ન ખાવાની હોય છે એટલે એ વાસના જાગવાથી માનવ બાળક માતાનું દૂધ પીએ છે અને પછી ધીમે ધીમે અન્ન ખાવાની વાસના જાગે છે, એટલે એ અન્ન ખાતું થઈ જાય છે. આ સૂત્રમાં વાસનાજન્ય સ્મૃતિ શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે. આ પ્રમાણે ધર્માધર્મરૂપ સંસ્કાર અને વાસનાનો કાર્યકારણભાવસંબંધ પણ થયો, એટલે સંસ્કાર અને વાસનાજન્ય સ્મૃતિનું 'આનન્તર્ય પણ થયું. આનન્તર્ય એટલે એકની પછી બીજાની વચ્ચે રહેલો ટૂંકામાં ટૂંકો સમય.

હવે બીજી શંકા એ છે કે જે બાળકને મનુષ્યનો જન્મ મળ્યો છે તે બાળકનો આત્મા ધારો કે પશુયોનિમાં હોય તો પશુ અને માનવનું જ આનન્તર્ય માનવું જોઈએ. અને જો એ આનન્તર્ય સ્વીકારવામાં આવે તો બાળક ઘાસ ખાતું જ થવું જોઈએ. જો પૂર્વ જન્મમાં એ માનવ બાળક સિંહ યોનિમાં હોય તો સિંહના ખોરાકની વાસના જાગવી જોઈએ અને માનવ બાળક માંસ ખાતું થઈ જવું જોઈએ અને સિંહની પેઠે જ ચાલચલગત થઈ જવી જોઈએ.

આ શંકાનું સમાધાન એ છે કે—માનવબાળકનો આત્મા પૂર્વ જન્મમાં ભલે સિંહાદિ ક્રૂર પશુઓની યોનિમાં હોય, પણ હજારો કે લાખો જન્મ પહેલાં તે મનુષ્યયોનિમાં જન્મેલું હોવું જોઈએ અને તેથી જ હાલના માનવબાળને માનવીય વાસના જાગે છે. વચ્ચે આવેલા જન્મના સંસ્કારો અને વાસના દબાયેલા જ રહેશે. વિજાતીય કરતાં સજાતીયતા બલવતી હોય છે, માટે સજાતીયતાનું આનન્તર્ય સજાતીય સાથે જ હોય છે.

આ જ પ્રમાણે દેશનું વ્યવધાન અને સમયનું વ્યવધાન પણ માનવબાળની માનવવાસનાને રોકી શકશે નહિ. આ સંસ્કાર અને વાસના ચિત્તમાં જ હોય છે. ચિત્ત અને આત્માનો સંબંધ કાયમ હોય છે. આ ચિત્ત સ્થિર હોય છે, પુનર્જન્મમાં પણ આત્માની સાથે જ હોય છે. ચિત્ત બદલાતું નથી, તેમાંથી પરિણમતી વૃત્તિઓ જ જુદી જુદી હોય છે. ચિત્તમાં રહેલા સંસ્કારનો જે વિષય અનુ-

ભવના બળે હોય તે જ વિષય તે જ સંસ્કારજન્ય સ્મૃતિનો પણ હોય છે. આ એક વિષય એ જ સ્મૃતિ અને સંસ્કારની એકરૂપતા સૂત્રમાં જણાવવામાં આવી છે. જે લોકો આત્માને માનતા નથી કેવળ ચિત્તની પરંપરાને જ માને છે, સ્થિરચિત્ત કોઇ છે જ નહિ, તેઓ સંસ્કાર અને સ્મૃતિનો કોઇ પણ જાતનો સંબંધ બતાવી શકતા નથી અને તેથી તેના મતમાં સંસારી વ્યવસ્થા થઈ શકતી નથી. ચિત્ત સ્થિર છે આ વૈદિક મત છે અને મહર્ષિ પતંજલિએ તેનો સ્વીકાર કરી યોગદર્શન તેને આધારે બનાવ્યું છે. ચિત્તને જ મન પણ કહેવામાં આવે છે. સૂત્રનો ભાવાર્થ એ છે કે બે સજાતીય જન્મો વચ્ચે વિજાતીય જન્મો પોતાની વાસના કે સ્મૃતિને જગાડી શકતા નથી તેથી જે યોનિમાં જે જન્મ્યો હોય તેનો જ ખોરાક અને તેની બોલચાલ વગેરે તે નૂતન જન્મેલા પ્રાણીને મળે છે અને વ્યવહાર અને વ્યવસ્થા બરાબર ચાલ્યા કરે છે. ॥ ૯ ॥

પૂર્વસૂત્રમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે, માનવબાળને અન્ન, દૂધ વગેરેમાં પ્રવૃત્તિ થવી એ પૂર્વજન્મમાં થયેલા માનવજન્મની વાસનાથી ઉત્પન્ન થયેલી સ્મૃતિને લીધે છે. વાસનાથી સ્મૃતિ થાય છે અને સ્મૃતિથી દૂધ-પાન અને અન્ન વગેરે પીવા–ખાવાની પ્રવૃત્તિ થાય છે. અહીં શંકા એ ઊઠે છે કે સૃષ્ટિની શરૂઆતમાં જે માનવબાળ જન્મ્યાં હતાં અથવા માનવયુવકો જન્મ્યા હતા તેને માનવભોગ્ય અર્થમાં પ્રવૃત્તિ શી રીતે થઇ. સૃષ્ટિની પહેલાં માનવજન્મ

થયો ન હતો તો તેને લગતી વાસના તો ક્યાંથી જ હોય ? આનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર આપે છેઃ

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥१०॥

પદાર્થ:–(च) અને (तासाम्) વાસનાઓનું (अनादित्वम्) અનાદિત્વ છે (आशिषः) આશિષ્ (नित्यत्वात्)નિત્ય હોવાથી.

ભાવાર્થ:–આ પહેલી જ સૃષ્ટિ છે, આના પહેલાં કદી સૃષ્ટિ થઈ નથી એવો સમય કદી હતો જ નહિ. સૃષ્ટિ પછી પ્રલય અને પ્રલય પછી સૃષ્ટિ એમ થયા જ કરે છે; માટે પ્રવાહરૂપે સૃષ્ટિ અનાદિ છે આ કારણથી માનવ જન્મ પણ કોઈ ને કોઇ વખતે થયેલો જ હોય છે એટલે તેની વાસના હોય જ છે. વાસનાઓનો પ્રવાહ પણ અનાદિ છે. આ પ્રવાહ ચિત્તરૂપ ભૂમિ ઉપર વહ્યા જ કરે છે. વેદમાં સૂર્ય ચંદ્ર આદિ સર્વસૃષ્ટિને પ્રવાહરૂપે અનાદિ જણાવી છે. “सूर्या-चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्” (ઋગ્વેદ.)આ શબ્દ પ્રમાણ સિવાય હરેક માણસને પોતાને માટે આવી આશિષ છે કે, ‘मा न भूवम् भूयासम्’ હું કદી ન હતો એમ નહિ અર્થાત્ હતો જ અને હવે પછી પણ હું રહું, મારો અભાવ ન હો. આ ભાવનામયી આશિષ પણ વાસનાની અનાદિતા સિદ્ધ કરે છે. જુઓ, બાળક જન્મે છે ત્યારે તેને પણ મરણના ભયનો ત્રાસ હોય છે. એ જે રડે છે તે તેના દુઃખની યાદી બતાવે છે. જો આ માનવબાળે દુઃખ અનુભવ્યું જ ન હોય તો તેની સ્મૃતિ ન થાય અને સ્મૃતિ ન થવાથી તે રડે પણ નહિ. પણ એ રડે છે, હસે છે તે તેના પૂર્વજન્મમાં અનુભવેલાં

દુઃખ અને સુખનાં સ્મરણોને બતાવે છે. આથી વાસના અનાદિ છે એટલે કે વાસનાઓ પ્રવાહરૂપે અનાદિ છે. પ્રાણીમાત્ર જીવતું રહેવા જ માગે છે, મરણનો ત્રાસ સર્વ કોઈને છે જ.

માણસને જે સદા જીવતા રહેવાની આશા અને મરણનો ત્રાસ છે તે સ્વાભાવિક નથી પણ તેમાં ધર્મ અને અધર્મ નિમિત્તરૂપે છે. સ્વાભાવિક ત્રાસ હોય તો તે સદૈવ રહેવો જ જોઈએ, પણ ત્રાસ તો કોઈ પણ નિમિત્તને લીધે જ થાય છે. આ નિમિત્તને માટે પણ પૂર્વ જન્મ હોવો જ જોઇએ. તરતમાં જન્મેલા બાળકને થતા ત્રાસને આ જન્મનું કોઇ નિમિત્ત નથી. આ કારણથી પૂર્વજન્મોની પરંપરા અને તેથી થતી વાસનાઓની પરંપરા પણ અનાદિ છે. એમ માનવું જ રહ્યું.

હવે એક બીજો વિચાર છે, તે એ કે, દ્રવ્યરૂપમાં રહેલી વસ્તુઓનાં ત્રણ પરિમાણો હોય છે. કોઇ વસ્તુ સૂક્ષ્મ પરિમાણવાળી, કોઈ મધ્યમ પરિમાણવાળી, તો કોઇ વિભુ પરિમાણવાળી હોય છે. તો વિચાર એ થાય છે કે ચિત્ત સૂક્ષ્મ છે કે મધ્યમ પરિમાણવાળું છે કે વિભુ પરિમાણવાળું છે? મહર્ષિ પતંજલિ ચિત્તને સૂક્ષ્મ માનતા નથી. કારણ કે જો ચિત (મન) અવયવરહિત સૂક્ષ્મ હોય તો તેના એકી સાથે વિવિધ ઇંદ્રિયોનાં વિવિધ જ્ઞાનો ન થવાં જોઇએ. જયાં એકી સાથે જ્ઞાન થતાં હોય ત્યાં પણ જ્ઞાનોનો ક્રમ છે એમ માનવું એ વધારે પડતો આગ્રહ કહેવાય.

આથી મહર્ષિ પતંજલિના મતમાં ચિત્ત વિભુ છે. ચિત્તની વૃત્તિઓ સંકોચશીલ અને વિકાસશીલ હોય છે તેથી માનવ આદિ પ્રાણીઓને વસ્તુઓનું જ્ઞાન નિત્ય હોતું નથી. જ્યારે ચિત્તમાંથી અર્થાકાર વૃત્તિ થાય ત્યારે તે અર્થનું જ્ઞાન થાય છે અને વૃત્તિ નથી થતી ત્યારે વસ્તુનું જ્ઞાન નથી થતું.

જે લોકો એમ માને છે કે જે ઘડામાં દીવો રાખ્યો હોય તેનો પ્રકાશ તે ઘડામાં જ સંકુચિત થયેલો હોય છે. અને એ જ દીવો ઘરમાં મૂક્યો હોય તો ઘરના પ્રમાણમાં એનો પ્રકાશ વિસ્તરેલો હોય છે. તેની માફક ચિત્ત પણ સંકોચવાળું અને વિકાસવાળું છે. આ માન્યતાનું ભાષ્યકારે ખંડન કર્યું છે એથી સમજાય છે કે ચિત્ત મધ્યમપરિમાણ-વાળું નથી. ભાષ્યકાર વ્યાસજીએ ચિત્તને 'વિભુ' માન્યું છે. वृत्तिरेवास्य विभुनः संकोचविकाशिनीत्याचार्यः અહીં આચાર્ય સ્વયંભૂ છે એમ વાચસ્પતિ ટીકામાં લખે છે. અને તેમાંથી થતી વૃત્તિઓ સંકોચવાળી અને વિકાસવાળી માની છે. આ વૃત્તિઓથી જ્ઞાન થાય છે. ॥ ૧૦ ॥

જો વાસનાઓ અનાદિ અને અસંખ્ય છે એમ માનવામાં આવે તો અનાદિ ભાવનો નાશ શી રીતે થાય? અને જો એનો નાશ ન થાય તો મોક્ષ ન જ મળે એ સ્વાભાવિક છે. આનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં આપવામાં આવે છેઃ

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषा मभांवे तदभावः ॥ ११ ॥

પદાર્થઃ–(हेतुफलाश्रयालम्बनैः) હેતુ, ફળ, આશ્રય અને આલંબનોથી (संगृहीतत्वात्) ઉત્પન્ન થઈ એકઠી થયેલી

હોવાથી (एषाम्) હેતુ આદિના (अभावे) અભાવમાં (तदभावः) વાસનાઓનો અભાવ થાય છે.

ભાવાર્થઃ– વાસનાઓ પ્રવાહરૂપે અનાદિ છે છતાં વાસનાઓ હેતુ, ફલ, આશ્રય અને આલંબનોને લીધે ઉત્પન્ન થાય છે, એટલે કે વાસનાઓ કારણજન્ય છે. કારણ નાશ પામે એટલે કાર્ય પણ નાશ પામે જ. આ ઠેકાણે કારણ એટલે ઉપાદાનકારણ સમજવું. આત્માની પેઠે એ અનાદિ નથી. આત્મા તો સ્વરૂપથી અનાદિ છે માટે એનો નાશ ન થઇ શકે. હવે કારણોનો વિચાર કરીએ.

(૧) હેતુઃ—ધર્મ અને અધર્મ એ વાસનાઓનું કારણ છે. સત્કર્મ એટલે ધર્મ અને અસત્કર્મ એટલે અધર્મ. આ કર્મજન્ય સંસ્કારો પણ ધર્મ અને અધર્મ જ કહેવાય છે.

(૨) ફલઃ—સુખ અને દુઃખ. ધર્મથી સુખ ઉત્પન્ન થાય છે અને અધર્મથી દુઃખ ઉત્પન્ન થાય છે. સુખ અને દુઃખ ભોગવવાથી રાગ અને દ્વેષ ઉત્પન્ન થાય છે. સુખ ઉપર જે આસક્તિ બંધાય છે તે રાગ છે અને દુઃખ ભોગવાથી દુઃખ ઉપર દ્વેષ થાય છે, કારણ કે દુઃખ કોઇને ગમતું નથી. આ પ્રમાણે ધર્મ, અધર્મ, સુખ, દુઃખ, રાગ અને દ્વેષ આ છ આરાવાળું ચક્ર ફર્યા કરે છે અને એનું મૂળ અવિદ્યા છે.

(૩) આશ્રયઃ–સાધિકાર મન એ વાસનાઓનો આશ્રય છે. મનમાં જ્યાં સુધી ધર્માધર્મ છે ત્યાં સુધી વાસનાઓ મનમાં બનતી જ રહે છે, માટે ધર્મ અને અધર્મના

આશ્રયવાળું મન સાધિકાર કહેવાય છે. મનમાંથી ધર્મ અને અધર્મ નાશ પામે તો કારણુના નાશને લીધે વાસ-નાઓનો પણુ નાશ થવો જ જોઈએ, મન સાધિકાર મટે એટલે તે મન પ્રકૃતિમાં વિલીન થાય છે પછી આશ્રય વગર અને કારણુ વગર વાસના ન રહે એ સ્વાભાવિક જ છે.

(૪) આલંબન:– અન્ન, શય્યા, સ્ત્રી અને પુરુષ આદિનો સુખ, સ્પર્શ વગેરે આલંબન કહેવાય છે. આ બધું અવિદ્યા-રૂપ કલેશને લીધે થયા કરે છે. તત્ત્વજ્ઞાન થાય પછી અર્થાત્ પ્રકૃતિ અને પુરુષનું વિવેકજ્ઞાન યોગના અનુષ્ઠાનથી જ્યારે થાય છે ત્યારે અવિદ્યા નાશ પામે છે. અવિદ્યા નાશ પામી એટલે વાસનાઓ પણુ નાશ પામે જ છે. અવિદ્યા ગઇ એટલે આત્મા અને પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર થાય છે.

આ સ્થિતિને ઉપનિષદોમાં આ પ્રમાણે બતાવી છે: भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ (मुं. उप. २–२–८) આત્મા, પરમાત્મા અને પ્રકૃતિનું વિવેકજ્ઞાન થાય છે ત્યારે હૃદયોની બધી ગ્રંથિઓ, બધા સંશયો અને બધાં જ કર્મો નાશ પામે છે. બસ આ જ સ્થિતિને મોક્ષ કહેવામાં આવે છે. યોગમાં એને સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠા કહેવામાં આવે છે. સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ ગુણોનું પ્રકૃતિમાં વિલીનીકરણુ થાય છે. ॥ ૧૧ ॥

ઉપરના સૂત્રમાં જે વાત કહી તેમાં શંકા એ છે કે વાસના જો વિદ્યમાન છે, સત્સ્વરૂપ છે, તો પછી તેનો નાશ શી રીતે થાય ? સૂત્રકાર મહર્ષિ પતંજલિ સત્કાર્ય-

વાદી છે માટે એમના મતમાં સદ્‌વસ્તુનો નાશ ન થવો જોઇએ અને અસદ્‌વસ્તુનો ભાવ ન હોવો જોઇએ 'नासतो विद्यतेभावो नाभावो विद्यते सतः' (અ. ૨–૧૬) અસત્‌નો ભાવ નહિ અને સત્‌નો અભાવ નહિ. આમ ગીતામાં શ્રીકૃષ્ણ ભગવાન્ પણ જણાવે છે. આ કારણથી સદ્‌રૂપ જે વાસનાઓ ચિત્તમાં છે તેનો અભાવ ન થવો જોઇએ અને જો વાસના કાયમ રહે તો પછી મોક્ષ મળે જ શી રીતે? માટે તેને લગતું યોગનું અનુષ્ઠાન જ નકામું થઈ જાય છે. આ શંકાનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં છે:

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणाम् ॥ १२ ॥

પદાર્થ:– (अतीतानागतम्) જે વસ્તુ અતીત થઈ ગઇ છે તે અને જે વસ્તુ હજી ઉત્પન્ન થવાની છે તે બંને વસ્તુ (स्वरूपतः) સ્વરૂપે અર્થાત સામાન્યરૂપે (अस्ति) છે કારણ કે (धर्माणाम्) સર્વ કાર્યોના (अध्वभेदात्) માર્ગોનો ભેદ હોવાથી.

ભાવાર્થ:– જે વસ્તુ ભૂતકાળમાં ગઈ હોય છે તે, જેમકે ઘડો ફૂટી ગયો એટલે તે ભૂતકાળમાં ગયો. હવે તે 'ઘડો હતો' એમ કહેવાશે. ભૂતકાળમાં ગયેલી વસ્તુનો અભાવ હોતો નથી, તે વસ્તુ તો સામાન્ય દ્રવ્યરૂપે 'છે' એમ જ મહર્ષિ પતંજલિ માને છે.

તેમ જ જે અનાગત અર્થાત્ જે કાર્ય બનવાનું છે હજી બન્યું નથી તે કાર્ય પણ સામાન્યરૂપે છે જ એમ માનવું જોઇએ. જો એમ ન માનવામાં આવે તો (ઘડો

હતો) ભૂતકાળમાં અને (ઘડો થશે) ભવિષ્ય કાળમાં ઘડાનો ઉલ્લેખ જ ન થવો જોઇએ. ઘડો જ્યારે પાણી લાવવાનું અથવા પોતામાં ભરી રાખવાનું કામ કરતો હોય છે ત્યારે 'ઘડો છે' આમ વર્તમાન કાળમાં ઘડાનું અસ્તિત્વ છે. આમ કાર્યરૂપ ઘડો ત્રણે કાળમાં છે જ પણ ઘડો પોતાનું કામ પોતે વર્તમાન કાળમાં હોય છે ત્યારે જ કરે છે. ભૂત-કાળ અને ભવિષ્યકાળમાં ઘડો હોય ત્યારે નહિ. કાર્ય માત્રના ત્રણ માર્ગો છે: ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળ. જ્યારે કાર્ય વર્તમાન કાળમાં હશે ત્યારે તે પોતાનું કામ કરશે અને ભૂતકાળ અને ભવિષ્યકાળમાં કાર્યરૂપ વસ્તુ હશે ત્યારે નહિ કરે. આથી સ્પષ્ટ સમજાશે કે કાર્ય શાસ્ત્રીય ભાષામાં કહીએ તો ધર્મ ત્રણે કાળમાં સત્ જ છે અસત્ નથી. કાર્યમાત્ર (ધર્મમાત્ર) ઇંદ્રિયોથી વર્તમાન કાળમાં જ અનુભવાય છે, ભૂતકાળ અને ભવિષ્યકાળમાં નહિ. ન અનુભવી શકાય તેથી વસ્તુનો અભાવ ન માની શકાય. સામાન્યદ્રવ્ય રૂપે રહેલું કાર્ય ઇંદ્રિયોથી ન જ અનુભવી શકાય. ફૂટી ગયેલો ઘડો અને ભવિષ્યમાં બન-નાર ઘડો અત્યારે તો માટીરૂપ સામાન્ય દ્રવ્યાકારે જ છે અને તે પોતાનું કામ કરવા માટે યોગ્ય નથી. આથી સ્પષ્ટ સમજાશે કે વાસના ભલે ભૂતકાળમાં તેના ઉપાદાન-કારણરૂપે રહો પણ તે પોતાનું કાર્ય કરવાને માટે યોગ્યતા ધરાવતી નથી. ભૂતકાળમાં ગયેલી વાસના બળી ગયેલા બી જેવી હોય છે તેથી તે યોગીને મોક્ષ મેળવવામાં વિઘ્નરૂપ થતી નથી. વિદ્યમાન વાસના જ અર્થાત્ વર્તમાન

કાળમાં રહેલી વાસના જ મોક્ષ-પ્રતિબંધક હોય છે, માટે ચિત્તસ્વરૂપે રહેલી બળેલા બી જેવી વાસના કશું પરિણામ લાવતી નથી. વસ્તુ માત્ર ત્રણે કાળમાં છે એમ માનવામાં ઉપર બતાવેલી રીતે કોઈ દોષ જણાતો નથી. કુંભાર માટીમાં ભવિષ્યકાળમાં ઘડો નથી એમ જાણે તો તે માટીમાં ઘડો મેળવવા મથામણ શા માટે કરે? પણ તે જુએ છે કે માટીમાં અનાગત ઘડો છે, માટે તેને વર્તમાનકાળમાં લાવવા પ્રયત્ન કરે છે. ભવિષ્યકાળમાં રહેલા સર્વકાર્યોને વર્તમાનકાળમાં લાવવા માટે જ મનુષ્યમાત્રના પ્રયત્ન સામાન્ય દ્રવ્યમાં (ઉપાદાનકારણમાં) થાય છે. શશવિષાણ અને આકાશના ફૂલ માટે કોઈપણ મહેનત કરતું નથી, કારણ કે, એનો અભાવ છે. અભાવ ભાવરૂપે કોઈ પણ કાળે થઈ શકે નહિ. સામાન્યદ્રવ્ય એકરૂપે રહે છે અને તેમાં ધર્મો અસંખ્ય વારાફરતી થયા કરે છે, જેમકે સોનું એકરૂપ રહે છે પણ તેમાં અલંકારો તો એક પછી એક એમ બનતા જ રહે છે. આ જ પ્રમાણે પ્રકૃતિ એકરૂપે રહે છે અને તેમાં કાર્યો અનેકવિધ અનન્ત સંખ્યામાં બનતા રહે છે. વાસના એ ચિત્તનું પરિણામ છે. આ વાસના કામ કરતી બંધ પડી અને સદાને માટે ચિત્તરૂપે જ થઈ રહી, હવે એનો આવિર્ભાવ વિવેક જ્ઞાનવાળા યોગીને કદી પણ થશે નહિ. ॥ ૧૨ ॥

પ્રકૃતિ અથવા પ્રધાનમાંથી આ વિશ્વરૂપવાળું જગત્ બન્યું છે, તો આમાં શંકા એ છે કે, પ્રકૃતિ અથવા પ્રધાન એક છે અને એકરૂપ છે તો એકરૂપ કારણમાંથી આવું

વિવિધ જગત શી રીતે બને ? અવિલક્ષણ કારણમાંથી વિલક્ષણ કાર્ય અથવા પરિણામ ન બને એ જ યુક્તિયુક્ત લાગે છે. તલ પીલે તો તેમાંથી તેલ નીકળે પણ ખાટો રસ તો ન જ નીકળે, કારણ કે તલમાં ખાટા રસને ઉત્પન્ન કરનારી કોઇ શક્તિ નથી. તેમ આ વિવિધ જગતને ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિ એકરૂપ પ્રધાનમાં નથી તો આ જગતમાં વિવિધતા આવી ક્યાંથી ? આનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર આપે છે :

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

પદાર્થ:-(ते) ત્રણ માર્ગવાળા ધર્મો કે જે (व्यक्त-सूक्ष्माः) व्यक्ताश्च सूक्ष्माश्च વ્યક્ત અને સૂક્ષ્મ છે તે (गुणात्मनः) સત્ત્વ, રજસ્, અને તમોગુણરૂપે છે.

ભાવાર્થ:-પ્રકૃતિ અથવા પ્રધાન ભલે એક હોય, પણ તે ત્રિગુણાત્મક છે માટે તેમાંથી બધાં જ પરિણામો અથવા ધર્મો=કાર્યો પણ ત્રિગુણાત્મક છે તેથી જગતમાં વિવિધતા આવે છે. આ સિવાય જગતમાં રહેલી વિચિત્રતાનું કારણ અનાદિકલેશ અને વાસનાઓનો ત્રણે ગુણોને મળતો સહકાર છે. આમ અનાદિકલેશ વાસનાના બળે ત્રિગુણાત્મક તમામ ધર્મોમાં વિચિત્રતા આવે છે. અને પૃથ્વી, પાણી, પર્વત, પવન વગેરે એકબીજાથી જુદા સ્વભાવવાળા બને છે.

કોઈ ધર્મો વ્યકત છે તો કોઇ સૂક્ષ્મ છે. જેમ કે પૃથ્વી, પાણી, તેજ, પવન અને આકાશ એ વ્યક્ત છે, તેમ જ અગ્યાર ઇંદ્રિયો પણ વ્યક્ત છે. પાંચ તન્માત્રાઓ અને

અહંકાર અવ્યક્ત છે. અવ્યક્તમાં વ્યક્તધર્મો ત્રણે કાળમાં રહે છે પણ એ ધર્મો જ્યારે વર્તમાનકાળમાં આવિર્ભૂત હોય છે ત્યારે જ તે કાર્ય કરતા હોય છે. પાંચ તન્માત્રાઓ અને અહંકાર 'અવિશેષ' છે અને તે પણ ત્રણ માર્ગવાળા છે—અનાગતરૂપે, વર્તમાનરૂપે અને અતીતરૂપે. અનાગત અને ભૂતકાળમાં રહેલા ધર્મો માત્ર સામાન્યરૂપે હોય છે અને નિષ્ક્રિય હોય છે. પ્રધાન અર્થાત્ પ્રકૃતિ એક છે છતાં તેમાં સર્વ વિચિત્રતાનાં બી વિદ્યમાન છે. વાયુ પુરાણમાં લખ્યું છે કે—

" वैश्वरूप्यात् प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः "

પ્રધાન (પ્રકૃતિ) વિશ્વરૂપવાળું હોવાથી તેમાંથી આ અદ્ભુત જગતરૂપ પરિણામ થાય છે. જો કોઇ શંકા કરે કે સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ આ ત્રણ ગુણો અમારી દૃષ્ટિના વિષય કેમ બનતા નથી અર્થાત્ અમે તેને કેમ જોઇ શકતા નથી ? કેમ અનુભવી શકતા નથી ? આનો ઉત્તર સાંખ્ય-શાસ્ત્રના ષષ્ટિતંત્રનું અનુશાસન આ પ્રમાણે આપે છેઃ—

गुणानां परमंरूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्त तन्मायेव सुतुच्छकम् ॥

ગુણોનું પરમ રૂપ દૃષ્ટિગોચર થતું નથી અને જે દૃષ્ટિ-ગોચર થાય છે તે માયા જેવું છે અર્થાત્ થોડા વખત માટે હોય છે કારણ કે તે અનિત્ય હોય છે. સુતુચ્છક શબ્દનો અર્થ અનિત્ય છે. જેમ માયા થોડો જ વખત ફેરફાર પામે છે તેમ જગતના બધા જ પરિણામરૂપ વિકારો

ફરતા રહે છે. ભાવ એ છે કે મૂળ ત્રણ ગુણો અનુભવી શકાતા નથી પણ તેના કાર્યો અનુભવી શકાય છે અને તે અનિત્ય હોય છે. મૂળ ત્રણ ગુણો તો પરિણામી હોવા છતાં નિત્ય છે. એ કોઈ પણ પદાર્થમાં વિલીન થતા નથી. ॥ ૧૩ ॥

હરેક કાર્યસ્વરૂપ અર્થ ત્રણ ગુણાત્મક છે તો પછી ત્રણ સંખ્યાના સમુદાયમાં 'આ અર્થ એક છે' એમ શી રીતે કહેવાય? ખરી રીતે એક અર્થમાં જ એક શબ્દનો પ્રયોગ થવો જોઈએ. આનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર આપે છે:

परिणामैकत्वाद् वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥

પદાર્થ:–(परिणामैकत्वात्) ત્રણ ગુણોનું પરિણામ એક જ થવાથી (वस्तुतत्त्वम्) એક વસ્તુ તરીકે વ્યવહાર થાય છે.

ભાવાર્થ:– પ્રકાશ સ્વભાવવાળો સત્ત્વગુણ છે, ક્રિયા સ્વભાવવાળો રજોગુણ છે અને સ્થિતિસ્વભાવવાળો તમોગુણ છે. આ ત્રણસ્વરૂપવાળા જ સર્વ કાર્યપદાર્થો છે; આમ હોવા છતાં એ ત્રણ ગુણોનું પરિણામ તો એક જ થાય છે અને આ એક પરિણામને લીધે એક શબ્દનો પ્રયોગ અને વ્યવહાર થાય છે. ત્રણગુણાત્મક અહંકારમાંથી એક પરિણામ થયું અને તે ઇંદ્રિય રૂપે થયું. એટલે તેમાં શ્રોત્ર એક ઇંદ્રિય છે, એવો શબ્દપ્રયોગ અને વ્યવહાર થાય છે. શબ્દ પંચતન્માત્ર ત્રિગુણાત્મક છે પણ તેમાંથી શબ્દરૂપ એક પરિણામ થાય છે. પૃથ્વી તન્માત્રામાંથી પૃથ્વી રૂપ એક પરિણામ થયું. 'ગાય' પણ એક પરિણામ જ છે.

તેવી જ રીતે વૃક્ષ, પર્વત વગેરે એક એક પરિણામ છે. આ કારણે વ્યવહારમાં 'એક' શબ્દનો પ્રયોગ થવામાં કોઇ પણ હરકત નથી. 'તેલ, વાટ અને અગ્નિ' આ ત્રણ ભેગાં થાય એટલે પ્રકાશ રૂપ એક પરિણામ થાય છે એ તો સર્વકોઇ જાણે છે. આમ ઉપાદાનકારણ ત્રણ હોવા છતાં તેઓનું પરિણામ એક થાય છે, એટલે ઘડો 'એક' છે. ગાય 'એક' છે, આવા પ્રયોગો થયા કરે છે. અને તે વ્યાવહારિક દૃષ્ટિએ સત્ય છે. આવું મહર્ષિ પતંજલિનું માનવું છે. ॥ ૧૪ ॥

બૌદ્ધ લોકોમાંના કેટલાક એમ માને છે કે વિજ્ઞાનથી જુદો કોઈ અર્થ જ નથી. જે કંઈ છે તે બધું જ્ઞાન જ છે. સ્વપ્નમાં કોઇ પણ અર્થ હોતો નથી છતાં જ્ઞાન તો થાય જ છે. એટલે કે જ્ઞાન હોવામાં અર્થકારણ જ નથી. જ્ઞાનનો વિષય પણ અર્થ નથી. જ્ઞાનમાં જે વિચિત્રતા જણાય છે તે અનાદિ વાસનાને લીધે છે. ભૂમિજ્ઞાન, સાગરજ્ઞાન, પર્વતજ્ઞાન અને વૃક્ષજ્ઞાન વગેરેમાં જે વિષય જણાય છે તે વાસના જ છે અને વાસના પણ જ્ઞાનથી કોઇ જુદો અર્થ નથી. ભ્રાંતિજ્ઞાનને લીધે જ ભેદ જણાય છે જેમકે— એક ચંદ્રજ્ઞાનમાં બે ચંદ્ર જ્યારે અનુભવાય છે ત્યારે તે જ્ઞાન ભ્રાંતિજ્ઞાન કહેવાય છે; તેમ ગોઘટાદિ ભેદજ્ઞાન ભૂલભરેલું છે. વસ્તુ એ તો જ્ઞાનની માત્ર કલ્પના જ છે, વાસ્તવમાં કોઇ અર્થ નથી. જો અર્થ સાચો હોય તો જ્ઞાનના અભાવમાં પણ અર્થ જણાવો જોઇએ, પણ જ્ઞાનથી

જુદો પડતો અર્થ જ નથી, જ્યારે જુઓ ત્યારે જ્ઞાન સાથે જ અર્થ હોય છે. એથી જ્ઞાનથી અર્થનું અલગપણું નથી એમ સિદ્ધ થાય છે. આ વાતને પુષ્ટિ આપનાર બૌદ્ધોનું આ પ્રમાણે કથન છે કે :

सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः ।
भेदश्च भ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्येतेन्दाविवाद्वये ॥

સદૈવ સાથે ઉપલબ્ધિ થતી હોવાથી નીલ અને નીલ-જ્ઞાનમાં (કાળો અર્થ અને તેના જ્ઞાનમાં) કોઈ ભેદ નથી. એક ચંદ્રમાં બે ચંદ્રવાળું જ્ઞાન મિથ્યાજ્ઞાન છે તેમ બધાં જ જ્ઞાન અને અર્થમાં ભેદ જણાવતાં જ્ઞાન મિથ્યા છે. આ કારણથી સાંખ્ય અને યોગ શાસ્ત્રને માનનાર સત્વ, રજસ્ અને તમસ્ ત્રણ અર્થો માને છે તે ખોટું છે અને તેમાંથી એક પરિણામ થાય છે તે પણ ખોટું છે. એકત્વ-બુદ્ધિ એક જ્ઞાનને લીધે જ થાય છે, કોઈ એક અર્થને લીધે નહિ. બૌદ્ધોની આ માન્યતા ભૂલભરેલી છે તેનું સમર્થન કરનાર આ નિમ્ન સૂત્રનું પ્રણયન શાસ્ત્રકારે કર્યું છે :

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥ १५ ॥

પદાર્થઃ– (वस्तुसाम्ये) ઘણાં ચિત્તોનો = જ્ઞાનનો એક જ અર્થ આલંબન તરીકે હોવાથી (चित्तभेदात) જ્ઞાન અને અર્થમાં ભેદ હોવાથી (तयोः) જ્ઞાન અને અર્થનો (पन्थाः) માર્ગ (विभक्तः) ભિન્ન છે.

ભાવાર્થઃ– જ્ઞાન અને અર્થ એક જ્ઞાનસ્વરૂપ નથી તેમ અર્થ એ કેવળ જ્ઞાનની કલ્પના પણ નથી. અર્થ પોતાની

સત્તા ધરાવનાર જ્ઞાનથી જુદો છે. ધારો કે એક 'અશ્વ' છે અને તે સેંકડો માણસોના ચિત્તોનું = જ્ઞાનોનું આલંબન બન્યો છે તો તે વખતે એ અશ્વ કયા માણસના જ્ઞાનની કલ્પના માનશો ? જો સેંકડો માણસોના ચિત્તોની કલ્પના હોય તો એકને બદલે સેંકડો અશ્વો હોવા જોઇએ પણ એમ નથી એ તો સૌ કોઇ જાણે છે. જો કોઈ એક જ માણસના જ્ઞાનની કલ્પના એ અશ્વ હોય તો તે અશ્વ બીજાઓને ન જણાવો જોઇએ, જેની કલ્પના હોય તેને જ જણાવો જોઇએ, પણ એમ નથી. અશ્વ તો સૌનું સાધારણ આલંબન છે, માટે જ્ઞાન અને અર્થ જુદા જુદા છે. જ્ઞાન અને અર્થ એક સાથે જણાય છે તે તો જ્ઞાન અને અર્થના નિત્ય સંબંધને લીધે છે. અર્થ અને જ્ઞાનનો જ્ઞાપ્યજ્ઞાપકભાવસંબંધ છે.

વસ્તુ ચિત્તની કલ્પના નથી પણ તે પોતાની અલગ સત્તા ધરાવે છે અને તેથી તે 'સ્વપ્રતિષ્ઠ' કહેવાય છે. અનેક માણસોના ચિત્તોની આલંબન તરીકે સાધારણ બનેલી વસ્તુ કોઇને સુખનું કારણ હોય છે, કોઈને દુઃખનું કારણ હોય છે, કોઇને મોહનું કારણ હોય છે અને કોઇને તટસ્થતાનું કારણ હોય છે. જેમકે એક સુંદરી છે, તે સુંદરી જેની સ્ત્રી છે તેને સુખનું કારણ છે, કારણ કે તે તેણે ધર્મથી પ્રાપ્ત કરી છે. એ જ સુંદરીને સુખી જોઈ તેની શોકયને દુઃખ થાય છે, કારણ કે એ શોકયમાં અધર્મ છે. એ સુંદરીને બીજો કોઈ ઈચ્છે છે, પણ તે તેને મળતી નથી તેથી તે મુંઝાય છે, કારણ કે એ માણસમાં અવિદ્યા ભરી છે. અને કોઈ સમ્યગ્દર્શી યોગીને તે સ્ત્રી તરફ

ઉપેક્ષાબુદ્ધિ હોય છે, કારણ કે યોગીમાં પૂર્ણ વૈરાગ્ય છે. હવે આ સુંદરી કોના ચિત્તની કલ્પના છે ? આનો ઉત્તર બૌદ્ધ વિદ્વાનો પાસે કશો નથી, માટે સ્વીકારવું રહ્યું કે જ્ઞાન અને અર્થ સ્વભાવથી જ જુદા છે. જ્ઞાન શરીરની અંદર છે જ્યારે ગોઘટાદિ વસ્તુઓ બહાર પૃથ્વી ઉપર સર્વ કોઈ જોઈ શકે એવી રીતે હોય છે.

અર્થ ગ્રાહ્ય છે અને જ્ઞાન ગ્રહણ છે. ગ્રાહ્ય અને ગ્રહણમાં ભેદ ન માનવો એ નરી અજ્ઞાનતા છે. સાંખ્યશાસ્ત્રના મતે વસ્તુ ત્રિગુણાત્મક છે અને તે ચલ સ્વભાવવાળું છે. ધર્મ આદિના સહકારથી વસ્તુ ચિત્તની સાથે સંબંધ પામે છે. આ કારણ જ્ઞાન અને અર્થ જુદા જુદા છે. 'ભેદને વિષય કરનારું જ્ઞાન ભ્રાંત છે.' આ માન્યતામાં જરાપણ સત્ય નથી અને અર્થભેદને નહીં સ્વીકારનાર બધા જ હેતુઓ હેત્વાભાસ બની રહે છે. એ વાત બુદ્ધશાસ્ત્રના નિષ્ણાતોએ ધ્યાનમાં રાખવી જોઇએ. ॥ ૧૫ ॥

હવે કેટલાક આચાર્યો એમ માને છે કે અર્થ એ તો ભોગ્ય વસ્તુ છે. જે ભોગ્ય હોય તે જ્ઞાન સાથે ઉત્પન્ન થાય છે અને જ્ઞાન સાથે જ નાશ પામે છે, જેમ કે 'સુખ.' સુખ ભોગ્ય છે તેથી તે જ્ઞાન સાથે ઉત્પન્ન થાય છે અને જ્ઞાન સાથે નાશ પામે છે. આ ઉપરથી એ ફલિત થાય છે કે અર્થ 'જ્ઞાનસહભૂ' (જ્ઞાન સાથે રહેનાર) છે. ભાવ એ છે કે, અર્થ જ્ઞાનથી ભલે જુદો રહે, પણ એ જડ હોવાથી જ્ઞાન સિવાય એ જાણી શકાતો નથી. અર્થ જ્ઞાનને લીધે

જ પ્રકાશમાં આવે છે, માટે જે જ્ઞાનનો સમય છે તેજ અર્થનો સમય છે, જ્યારે જ્ઞાન ન હોય ત્યારે અર્થ પણ નથી એમ સમજવું.

ઉપરનું કથન યોગશાસ્ત્રના સિદ્ધાંતથી વિરુદ્ધ છે. કારણ કે, મહર્ષિ પતંજલિ માને છે કે અર્થ અનેક ક્ષણોની પરંપરામાં વિદ્યમાન હોય છે અને તે પરિણામાત્મક છે, આવું સર્વકોઇ વિદ્વાન અને અવિદ્વાન્ પણ સમજી શકે છે, માટે જો અર્થને જ્ઞાનસહભૂ માનવામાં આવે તો અર્થ નથી પણ જ્ઞાન જ છે એ સિદ્ધાંત આવીને ઊભો રહે છે, માટે એ પણ ખોટું છે. એ બાબત આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર સમજાવે છે :

न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥ १६ ॥

પદાર્થ:-(च) અને (वस्तु) અર્થ (एकचित्ततन्त्रम्) એક જ્ઞાનવ્યક્તિને આધીન (न) નથી (तद्) તે જ્ઞાન (अप्रमाणकम्) અપ્રમાણરૂપ હોય (तदा) ત્યારે (किम्) તે વસ્તુ શું (स्यात्) હોય?

ભાવાર્થ:- જો અર્થનું આયુષ્ય તેના જ્ઞાનના જેટલું જ માનવામાં આવે તો ઘટરૂપ અર્થને ગ્રહણ કરનારું જ્ઞાન જ્યારે બીજા કોઈ વિષયમાં વ્યગ્ર હોય અને ઘટને વિષય ન કરતું હોય ત્યારે ઘટરૂપ વસ્તુ વિદ્યમાન છે કે નહિ? જો છે તો તે કયા જ્ઞાનનો વિષય બને છે? જ્ઞાન વગર એનો ભાસ જ શી રીતે થાય. ઘટેતર વિષયનું જ્ઞાન ઘટને ગ્રહણ ન કરી શકે એ તો સૌ કોઈ સમજી શકે છે. ઘટનું

જ્ઞાન વિષયાંતરમાં વ્યગ્ર હોય અને બીજા વિષયનું જ્ઞાન ઘટને જણાવી ન શકે તે વખતે ઘટ નથી એમ માનવું રહ્યું અને પરિણામે જ્ઞાન છે અને વિષય નથી એમ ઠર્યું અને એ બાબતનું ખંડન ઉપરના સૂત્રમાં કરી દીધું છે. આથી સિદ્ધ થાય છે કે અર્થ જ્ઞાનસહભૂ નથી. એટલે કે જ્ઞાન સાથે જ અર્થ ઉત્પન્ન થાય છે, જ્ઞાન સાથે જ એ રહે છે અને જ્ઞાન સાથે નાશ પામે છે. એ સિદ્ધાંત તદ્દન અયોગ્ય જણાય છે, કારણ કે જ્ઞાન નાશ પામ્યા પછી પણ અર્થ તો રહે જ છે.

વળી જ્ઞાન સાથે સંબંધ પામનાર વસ્તુ ઉત્પન્ન ક્યાંથી થાય છે? તથા પુરોવર્તી વસ્તુના ભાગો જે નથી જણાતા તેનો પણ જ્ઞાનના અભાવે અભાવ જ માનવો રહ્યો? આથી એવું થયું કે વાંસો નથી દેખાતો માટે ઉદર પણ નથી. પાછલા ભાગ વગર આગળનો ભાગ ન હોય. એટલે ન્યાયની રીતે પાછલો ભાગ આગલા ભાગનો વ્યાપક છે એમ માનવું જ જોઈએ. વ્યાપક વગર વ્યાપ્યની ઉપલબ્ધિ ન થાય એ પણ સત્ય છે. વ્યાપક અગ્નિ ન હોય તો વ્યાપ્ય ધુમાડાનું અસ્તિત્વ ન જ હોય. આથી સ્વીકારવું પડે છે કે, અર્થ જ્ઞાનથી સ્વતંત્ર છે; જ્ઞાન સાથે જકડાઈ રહ્યો નથી. વસ્તુ સર્વપુરુષોનું સાધારણ હોય છે અને જ્ઞાનો હરેક પુરુષોમાં પ્રવર્તતાં હોય છે. જ્ઞાન અને અર્થના સંબંધ થયા પછી પુરુષ ભોગ કરી શકે છે. અર્થ જમીન ઉપર હોય છે અને જ્ઞાન શરીરમાં હોય છે. આમ દેશના ભેદથી પણ જણાય છે કે અર્થ અને જ્ઞાન બંને છે. અર્થ જ્ઞાનથી બંધાયેલ નથી. નગાધિરાજ હિમાલયને વિષય

કરનારાં કરોડો જ્ઞાનો ઉત્પન્ન થઈ નાશ પામ્યાં છે અને હજી પણ એ જ સ્થિતિ પ્રવર્તે છે. માટે અર્થને સ્વતંત્ર માનવો જ જોઈએ. 'બધું જ્ઞાન જ છે અને જ્ઞાનો પણ ક્ષણિક છે અથવા જ્ઞાન સાથે જ અર્થ રહે છે એ બૌદ્ધોનો સિદ્ધાંત યથાર્થ (સાચો) નથી.' ॥ ૧૬ ॥

જો જડરૂપ અર્થ સ્વતંત્ર હોય અને તે ચિત્તની સાથે સંબદ્ધ ન હોય તો તેનું જ્ઞાન શી રીતે થાય? અર્થ પોતાની મેળે તો પ્રકાશમાં અર્થાત્ જ્ઞાનરૂપ પ્રકાશમાં આવી શકે નહિ. જો અર્થ પોતાની જાતે જ પ્રકાશિત થાય તો તેમાં જડત્વરૂપ ધર્મ જ ન રહે અને પરિણામે તે જ્ઞાનરૂપ જ બની રહે, એટલે બધું જ્ઞાન જ છે, એ જ બૌદ્ધ સિદ્ધાંત આવીને ઊભો રહે છે. આ શંકાનું સમાધાન શું છે? આનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર આપે છે:

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताऽज्ञातम् ॥ १७ ॥

પદાર્થ:–(चित्तस्य) ચિત્તને (तदुपरागापेक्षित्वात्) અર્થના ઉપરાગની અપેક્ષા હોવાથી (वस्तु) અર્થ (ज्ञाताऽज्ञातम्) કોઈ વખતે જ્ઞાત અને કોઈ વખતે અજ્ઞાત હોય છે.

ભાવાર્થ:– અર્થનું જ્ઞાન થવું એ અર્થનું પ્રકાશમાં આવવું કહેવાય છે. ચિત્ત જ્યારે વૃત્તિ દ્વારા અર્થ સાથે સંબંધ પામે છે ત્યારે અર્થ પોતે ચિત્તની વૃત્તિમાં પ્રતિબિંબિત થાય છે; ત્યારે અર્થનું જ્ઞાન થાય છે અને તે વખતે અર્થ જ્ઞાત કહેવાય છે અને જ્યારે અર્થ ચિત્તની વૃત્તિમાં પ્રતિબિંબિત થતો નથી એટલે કે ચિત્તનો સંબંધ

અર્થ સાથે થતો નથી ત્યારે અર્થ અજ્ઞાત રહે છે. એટલે કે વસ્તુ=અર્થ જ્ઞાત અને અજ્ઞાત બંને અવસ્થામાં રહે છે.

ભાષ્યકાર વ્યાસ મુનિ કહે છે કે વિષયો બધા જ લોહચુંબક જેવા છે. ચિત્ત લોહ જેવું છે. વિષયોથી ચિત્ત ખેંચાય છે એટલે ચિત્તવૃત્તિદ્વારા અર્થ સાથે સંબંધ પામે છે, પછી અર્થ પોતાના સ્વરૂપને ચિત્તની વૃત્તિમાં સમર્પિત કરે છે અર્થાત્ દર્પણ જેવી ચિત્તની વૃત્તિમાં અર્થનું પ્રતિબિંબ પડે છે, આ ચિત્તવૃત્તિ સાથે આત્માનો સંબંધ તો હોય જ છે એટલે અર્થ જણાય છે. આ પ્રમાણે અર્થ જ્ઞાત છે. અર્થનું જ્યારે પ્રતિબિંબ ચિત્ત-વૃત્તિમાં નથી હોતું ત્યારે તે (અર્થ) અજ્ઞાત હોય છે. આને લીધે ચિત્ત પરિણામી છે કારણ કે ચિત્તનું વૃત્તિરૂપે પરિણામ થાય છે. આ પરિણામને લીધે વસ્તુ જ્ઞાત અને અજ્ઞાત કાળના ભેદે રહે છે. આ કારણથી અર્થને જ્ઞાનરૂપ માનવાની જરૂર રહેતી નથી, તેમ તે જ્ઞાનસહભૂ અર્થાત્ સદૈવ જ્ઞાન સાથે જ રહેનાર છે એમ પણ માનવાની જરૂર નથી. અર્થ તો પોતાના અસ્તિત્વમાં સ્વતંત્ર છે. ॥ ૧૭ ॥

ચિત્તથી ભિન્ન બધા જ અર્થો કોઈ વખત જ્ઞાત હોય છે તો કોઈ વખત અજ્ઞાત હોય છે, કારણ કે ચિત્તનું પરિણામ કે જેને વૃત્તિઓ કહે છે તે કાદાચિત્ક હોય છે. કોઈ વખતે અર્થાકાર વૃત્તિ હોય તો કોઈ વખતે ન પણ હોય, પણ ચિત્ત અને પ્રમાણાદિ ચિત્તની વૃત્તિઓ તો સદૈવ જ્ઞાત જ હોય છે. તે આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર સમજાવે છે:

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्याऽपरिणामित्वात् ॥१८॥

પદાર્થ:–(चित्तवृत्तयः) ચિત્તની વૃત્તિઓ (सदा) હમેશાં (ज्ञाताः) જ્ઞાત હોય છે (तत्प्रभोः) વૃત્તિઓનો સ્વામી (पुरुषस्य) પુરુષ = આત્મા (अपरिणामित्वात्) અપરિણામી હોવાથી.

ભાવાર્થ:–પ્રમાણ, વિપર્યય, વિકલ્પ, નિદ્રા અને સ્મૃતિ-રૂપ પાંચેય વૃત્તિઓ પુરુષ અર્થાત્ આત્માને સદૈવ જ્ઞાત હોય છે, કારણ કે વૃત્તિઓનો સ્વામી આત્મા પરિણામી નથી. વૃત્તિઓમાં જે આત્માનું પ્રતિબિંબ પડે છે એ કોઈ સંબંધ કે પરિણામ નથી. પ્રતિબિંબ આત્મામાં કોઈ પણ જાતનો વિભાગ કરતું નથી. જ્યારે જે વસ્તુ પરિણામ વાળી હોય તેમાં કોઇ ને કોઈ રૂપમાં વિભાગ હોય જ. દૂધનું જ્યારે દહીંરૂપ પરિણામ થાય છે ત્યારે દૂધમાં અંદર ને અંદર વિભાગ થયા જ કરે છે. આત્મામાં આ સ્થિતિ નથી માટે આત્મા અપરિણામી છે અને તેથી ચિત્ત અને ચિત્તની વૃત્તિઓ સદા જ્ઞાત હોય છે. ચિત્તમાં સદૈવ આત્માનું પ્રતિબિંબ છે તેથી ચિત્તને કે આત્માને કદી પણ સંદેહ થતો નથી કે, 'હું છું કે નહિ ?' પરમાત્મા કે જેને યોગશાસ્ત્રમાં પુરુષવિશેષ કહેવામાં આવ્યો છે તે પણ અપરિણામી હોવાથી સદૈવ સર્વજ્ઞ છે, અન્ય આત્માઓ પણ સદૈવ જ્ઞાતા હોય છે, કોઈ પણ આત્મા પરિણામધર્મ વાળો નથી. ॥ ૧૮ ॥

અહીં બૌદ્ધ લોકો એવી શંકા કરે છે કે મનને જ સ્વયંપ્રકાશિત અને વિષયને પણ પ્રકાશિત કરનાર શામાટે

ન માનવું? જો મનને સ્વપ્રકાશરૂપ માનવામાં આવે તો આત્માને માનવાની જરૂર ન રહે. આનો ઉત્તર શાસ્ત્રકાર આ સૂત્રમાં આપે છે :

न च तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

પદાર્થ:-(च) અને (तत्) તે ચિત્ત (स्वाभास) સ્વયં પ્રકાશરૂપ નથી (दृश्यत्वात्) દશ્ય હોવાથી.

ભાવાર્થ:- ચિત્ત દશ્ય અર્થ છે. જે દશ્ય હોય તે જડ હોય અને જડ અર્થ સ્વયંપ્રકાશિત ન હોય માટે મનથી જુદો આત્મા માનવો જોઇએ.

પ્રશ્ન:-અગ્નિ જડ છે છતાં તે સ્વયંપ્રકાશિત છે, સૂર્ય પણ સ્વયં પ્રકાશિત છે, પરપ્રકાશિત નથી. તેમ મન પણ જડ હોવા છતાં સ્વયંપ્રકાશિત હોઈ શકે?

ઉત્તર:-અગ્નિ અને સૂર્ય પણ સ્વયંપ્રકાશિત નથી. પ્રકાશનો અર્થ જડ પ્રકાશ અહીં લેવાનો નથી, પણ ચૈતન્યરૂપ પ્રકાશ લેવાનો છે. અગ્નિને અથવા સૂર્યને એ ખબર નથી કે હું પ્રકાશરૂપ છું. દશ્ય બધાં જ પરપ્રકાશિત છે અર્થાત્ તે બધાં આત્માથી જ પ્રકાશમાં આવે છે. વળી હું ક્રુદ્ધ છું, મને ભય છે, મને અમુકમાં રાગ છે -આ બધા ક્રોધ, ભય અને રાગ વગેરે મનમાં રહે છે અને મનની સાથે જ એ બધા જણાય છે અર્થાત્ ગ્રાહ્ય બને છે; માટે મન ગ્રાહ્ય છે, દશ્ય છે. આત્મા દશ્ય નથી એ તો દ્રષ્ટા જ છે. ચિત્ત પ્રકૃતિનું પરિણામ છે, પ્રકૃતિ જડ

હોવાથી મન પણ જડ છે. માટે એને પ્રકાશમાં (જ્ઞાનરૂપ પ્રકાશમાં) લાવવા સ્વયંપ્રકાશસ્વરૂપ આત્માને માનવાની જરૂર છે જ. જેમ ચક્ષુ આદિ ઇંદ્રિયો દૃશ્ય છે તેમ મન પણ એક ઇંદ્રિય હોવાને કારણે પણ તે દૃશ્ય જ હોવું જોઇએ. આ ઠેકાણે મન, બુદ્ધિ, મહત્‌તત્ત્વ, ચિત્ત એક જ અર્થમાં છે, શબ્દો જ માત્ર જુદા વપરાયા છે.

પ્રકાશ સદૈવ પ્રકાશક અને પ્રકાશ્યના સંયોગમાં હોય છે, જડ પ્રકાશ કંઇ સ્વપ્રતિષ્ઠિત હોતા નથી જ્યારે આત્મા તો સ્વપ્રકાશ અને સ્વપ્રતિષ્ઠિત છે માટે ચિત્તથી આત્મા જુદો છે. ચિત્ત દૃશ્ય છે અને આત્મા સદૈવ દ્રષ્ટા જ છે. ॥ ૧૯ ॥

હવે બૌદ્ધ લોકો જુદી શંકા ઉઠાવે છે અને તે આ પ્રમાણે- "અમે ચિત્તને પ્રકૃતિમાંથી ઉત્પન્ન થતું માનતા નથી, અમે તો ચિત્તની અનાદિ ધારા માનીએ છીએ. એક પછી બીજું અને બીજામાંથી ત્રીજું અને ત્રીજામાંથી ચોથું એવી રીતે અનાદિ અને અનન્ત ચિત્તની ધારા માનીએ છીએ. હરેક ચિત્તવ્યક્તિ સ્વપ્રકાશ હોવાથી ઉત્પન્ન થઈ અર્થને જાણે છે. આમાં અનાદિ અને અનન્ત એક આત્માને ક્યાંય પણ સ્થાન નથી." આ બૌદ્ધસિદ્ધાંતમાં શો દોષ આવે છે? તે આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર જણાવે છે:

एकसमये चोभयाऽनवधारणम् ॥ २० ॥

પદાર્થ:- (च) અને (एकसमये) એક જ ક્ષણમાં (उभयानवधारणम्) બે બાબતોનો નિર્ણય થઇ શકે નહિ.

ભાવાર્થઃ– હરેક ચિત્તવ્યક્તિ ક્ષણિક છે એમ બૌદ્ધ વિદ્વાનોનું માનવું છે. પ્રથમ ક્ષણમાં સ્વાભાસ=સ્વયંપ્રકાશિત ચિત્ત ઉત્પન્ન થાય પછી બીજા ક્ષણમાં તે ચિત્ત વસ્તુનું અવધારણ કરે એ સામાન્ય નિયમ જ છે. બીજા ક્ષણે ચિત્ત જો સ્થિર રહે તો ચિત્ત ક્ષણિક ન કહેવાય. અને ઉત્પત્તિક્ષણમાં તો ચિત્ત પોતે ઉત્પત્તિમાં જ વ્યગ્ર હોવાથી વસ્તુનું અવધારણ ન કરી શકે. એક ક્ષણમાં એક વ્યક્તિથી બે ક્રિયા પણ ન થઈ શકે. કલમ જે વળાંકરૂપ ક્ષણથી 'ક' લખે તે જ વળાંકરૂપ ક્ષણથી 'ખ' ન લખી શકે. 'ખ' લખવાને માટે કલમે બીજો વળાંક લેવો જ પડશે. આથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ચિત્ત એક જ ક્ષણમાં બે કામ ન કરી શકે, એટલે કે જે ક્ષણમાં પોતાની (ચિત્તની) ઉત્પત્તિ તે જ ક્ષણમાં ચિત્ત વસ્તુનું અવધારણ કરે. આ બે ક્રિયાઓ એક જ ક્ષણમાં ચિત્ત ન કરી શકે, માટે જો ચિત્તે વસ્તુનું અવધારણ કરવું હોય તો બીજા ક્ષણ સુધી સ્થિર રહેવું પડે, પણ બૌદ્ધ લોકોને તે માન્ય નથી; એ તો ચિત્તને એક જ ક્ષણમાં માને છે, બીજા ક્ષણમાં તો તેનો નાશ થાય છે. ક્ષણવાદી બૌદ્ધોનો આ સિદ્ધાંત છે કે मूर्तिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते । મનની જે ઉત્પત્તિ તે જ તેની ક્રિયા અને તે જ કારક. આ બે કામ 'ઉત્પત્તિ અને વસ્તુનું અવધારણ' ચિત્ત એક જ ક્ષણમાં ન કરી શકે. વળી ક્રિયા કારક હોઇ શકે નહિ. ચિત્ત દૃશ્ય છે અને તેથી તે સ્વપ્રકાશ પણ નથી. આ કારણથી અનાદિ અને અનન્ત આત્માનો સ્વીકાર કરવો જ જોઇએ. આ પ્રમાણે મહર્ષિ પતંજલિ આત્માને

અપરિણામી અને કૂટસ્થ નિત્ય માને છે. ॥ ૨૦ ॥

એક જ ક્ષણમાં ચિત્તની ઉત્પત્તિ અને એ જ ચિત્તનું અવધારણ (અર્થનું જાણવું) આ બે વાત એકી સાથે ન થઇ શકે–એ શાસ્ત્રકારે વિજ્ઞાનવાદી બૌદ્ધોને સમજાવ્યું છતાં પણ બૌદ્ધો એમ કહે છે કે, ચિત્ત એ બંને અર્થને માટે સમર્થ છે. જોકે આ વાત ખોટી છે, છતાં શાસ્ત્રકાર આગળ વાદ વધારવા માટે અને બૌદ્ધોનું મન્તવ્ય વધારે સમજવા માટે ઉત્પત્તિ અને અવધારણ બંને એક ક્ષણમાં થાય છે એમ અભ્યુપગમવાદ રૂપે સ્વીકારી બૌદ્ધોને સમજાવે છે કે ચિત્તમાં અવધારણ કરવા માટે સ્વપ્રકાશ જોઇએ તેનું શું ? આનો ઉત્તર બૌદ્ધો આપે છે કે અર્થના અવધારણ સાથે નિરુદ્ધ થતા ચિત્તને તેની પછી ઉત્પન્ન થતું ચિત્ત પ્રકાશ આપે છે. મહર્ષિ પતંજલિ કહે છે કે, પછીથી ઉત્પન્ન થતું ચિત્ત પણ દશ્ય જ છે અને જે દશ્ય હોય તે સ્વયંપ્રકાશરૂપ ન હોય. જ્યારે ચિત્તમાં જ્ઞાનરૂપ પ્રકાશ જ નથી તો એ બીજાને પ્રકાશ શી રીતે આપી શકે? સ્વયં જે નિર્ધન હોય તે બીજાને ધન ક્યાંથી આપી શકે? જો કહો કે બીજા ચિત્તને ત્રીજું ચિત્ત પ્રકાશ આપે છે તો ત્યાં પણ એ જ દોષ આવી ઊભો રહે છે માટે ક્ષણિક વિજ્ઞાનવાદીઓના મતમાં અર્થનું અવધારણ થઈ શકતું નથી અને જો માનવાનો દુરાગ્રહ સેવે તો બીજા બે દોષો પણ વિજ્ઞાનવાદી બૌદ્ધોને માથે આવે છે. તે આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર સમજાવે છે :

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृति-संकरश्च ॥ २१ ॥

પદાર્થઃ- (चित्तान्तरदृश्य) જન્યચિત્તથી જો જનકચિત્ત દૃશ્ય બનતું હોય તો જન્યચિત્ત કોનાથી દૃશ્ય થાય છે? જો ચિત્ત પણ એની પછીના ચિત્તથી ગ્રહણ (દૃશ્ય) થાય તો (अतिप्रसङ्गः) અનવસ્થા દોષ આવે છે (च) અને (स्मृतिसङ्करः) સ્મૃતિઓમાં ભેળસેળ થઈ જાય છે અને કયા અનુભવની આ સ્મૃતિ છે? એનો નિર્ણય થઇ શકે નહિ.

ભાવાર્થઃ- પૂર્વજ્ઞાન અર્થાત્ ચિત્ત જો ઉત્તર જ્ઞાનથી (ચિત્તથી) ગૃહીત થાય એટલે જ્ઞાનાત્મક પ્રકાશથી યુક્ત થાય તો પ્રશ્ન એ ઊભો થાય છે ઉત્તર ચિત્ત પણ દૃશ્ય હોવાથી તે પણ કોઇથી જ્ઞાનાત્મક પ્રકાશથી યુક્ત થવું જોઇએ તેને માટે ત્રીજા ચિત્તની કલ્પના કરવી પડે અને ત્યાં પણ એ જ સવાલ આવીને ઊભો રહેતો હોવાથી ચોથા ચિત્તની કલ્પના કરવી પડે. આમ ચિત્તની કલ્પનાની પરંપરાનો અંત આવતો ન હોવાથી અનવસ્થા દોષ આવે છે અને આ અનવસ્થા દોષ કોઈ પણ ચિત્તને અર્થનું અવધારણ કરવા દેતું નથી માટે એક ચિત્ત બીજા ચિત્તને ગ્રહણ કરતું નથી. સાંખ્યશાસ્ત્રના મત પ્રમાણે એ ઠેકાણે ચિત્ત એટલે ચિત્તની વૃત્તિ સમજવી, કારણ કે અર્થના આકારને ચિત્તની વૃત્તિઓ ધારણ કરે છે, સાક્ષાત્ ચિત્ત નહિ.

બૌદ્ધ લોકોના મતમાં ચિત્તનું સ્વરૂપ જુદું છે, તે કયાંથી ઉત્પન્ન થાય છે એનો કોઇ પણ જવાબ એની પાસે નથી. આમ છતાં એના મતમાં ચિત્ત ક્ષણિક હોવાને લીધે અર્થનું અવધારણ થઇ શકતું નથી.

અર્થના અનુભવથી સ્મૃતિ થાય છે એ સર્વ કોઇ સમજી શકે છે. કેવળ ચિત્તવાદીઓના મતમાં એક અર્થ ઉપર પડેલા ચિત્તના અસંખ્ય અનુભવોમાંથી જન્મ પામતી સ્મૃતિઓમાં આ સ્મૃતિ કયા અનુભવથી જન્મી છે? એ પણ જાણી શકાતું નથી, આમ ચિત્તની પરંપરાથી જન્મતો અનવસ્થાદોષ અને સ્મૃતિઓનો સંકર અર્થાત્ સેળભેળ, આ બે દોષ કાયમ રહે છે. તેથી અર્થનું અવધારણ અને સ્મૃતિઓનો વિવેક થઈ શકતો નથી, માટે બૌદ્ધોએ સ્થિર = નિત્ય આત્માનો સ્વીકાર કરવો જોઇએ. ન્યાય, સાંખ્ય, મીમાંસા વગેરેના નિષ્ણાતોએ તો આત્માનો સ્વીકાર કર્યો છે તેથી તેમના મતે અર્થોનાં અવધારણો થવામાં કોઇ પણ શંકા ઉત્પન્ન થતી નથી.

હવે આત્માને માનવાથી અર્થોનું અવધારણ ચિત્ત કેવી રીતે કરે છે? તે વિષયને સમજાવતું આ સૂત્ર શાસ્ત્રકાર ઉપદેશે છેઃ

चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २२ ॥

પદાર્થઃ– (चित्तेः) ચિતિશક્તિ = આત્માનો (अप्रतिसंक्रमायाः) જેનો પ્રતિસંક્રમ થતો નથી એટલે કે જે કોઈ પણ ક્રિયાથી રહિત છે તેના (तदाकारापत्तौ) પ્રતિબિંબરૂપ આકારને ધારણ કર્યા પછી (स्वबुद्धिसंवेदनम्) ચિત્તની વૃત્તિનું સંવેદન થાય છે.

ભાવાર્થઃ– ચિતિશક્તિ એટલે પુરુષ અથવા આત્મા. આ ચિતિશક્તિ પરિણામથી રહિત જ છે, તેમ કોઈ પણ

જાતની ક્રિયા પણ આત્મામાં નથી, પણ ચિત્ત આત્માના પ્રતિબિંબને ધારણ કરે છે. પ્રતિબિંબ પડવામાં આત્મામાં કોઈ પણ જાતની ક્રિયાની જરૂર રહેતી નથી તેમ કોઈ પણ જાતના પરિણામની પણ જરૂર પડતી નથી. અપ્રતિબિંબને ધારણ કરવાથી ચિત્ત ચેતન જેવું થઈ રહે છે અને તેથી ચિત્ત પોતાની વૃત્તિ કે જેણે અર્થના આકારને ધારણ કર્યો છે તેનું સંવેદન અર્થાત્ અવધારણ થાય છે. ચંદ્રનું પ્રતિબિંબ પાણીમાં પડવાથી પાણી પ્રકાશમાન થાય છે અને પાણીની જે ચંચલતા છે તે ચંદ્રના પ્રતિબિંબમાં આવી હોય તેમ જણાય છે. આ જ પ્રમાણે ચિત્તના ધર્મ ચેતનના પ્રતિબિંબમાં આવે છે અને તેને લીધે આત્માનો ધર્મ જાણે કે ચિત્તમાં આવ્યો હોય એમ જણાય છે. આનું નામ જ આત્મા ઉપર રહેલું 'વૃત્તિસારૂપ્ય' કહેવાય છે. સમાધિપાદના ચોથા સૂત્રમાં કહ્યું છે કે, જ્યારે ચિત્તવૃત્તિઓનો નિરોધ થયેલો હોતો નથી ત્યારે આત્મા વૃત્તિના જેવું જ રૂપ ધારણ કરતો હોય છે. આ વાત પણ આ સૂત્રમાંથી જ ત્યાં સૂત્રરૂપે ઉપદેશવામાં આવી છે. આથી સમજાશે કે ચિત્ત જડ હોવા છતાં અને ચિત્ત બીજા કોઇ પણ ચિત્તથી દશ્ય ન થવા છતાં અપરિણામી અને કૂટસ્થ આત્માના પ્રતિબિંબને લીધે પોતાની વૃત્તિને જાણે છે અને આત્મા ચિત્તના ધર્મના આરોપને લીધે સુખ-દુઃખ આદિનો ભોક્તા હોય એમ જણાય છે અને ચિત્તમાં ભોગ્યતા અને ચેતનમાં ભોક્તૃતા આવે છે. વ્યવહાર દશામાં પણ આત્મા સદા ભોક્તા જ હોય છે. આમ જડ અને ચેતનના સંબંધને લીધે જ સંસાર

ચાલ્યા કરે છે માટે બૌદ્ધોએ પણ અપરિણામી અને કૂટસ્થ આત્માને માનવો જોઇએ. ॥ ૨૨ ॥

મન જડ છે તેથી વૃત્તિપણ જડ છે છતાં આત્માનું પ્રતિબિંબ તેના પર પડે છે તેથી તે ચેતન જેવી જણાય છે અને તે જ્ઞાનવૃત્તિ કહેવાય છે આવી બંનેની સામાન્ય જ્ઞાનવૃત્તિઓની ઓથે આત્મા છે. આ કારણથી સાંખ્ય અને યોગના નિષ્ણાતોએ કહ્યું છે કે,

न पातालं न विवरं गिरीणां नैवान्धकारं कुक्षयो नोदधीनाम् ।
गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतं बुद्धिवृत्तिमविशिष्टां कवयो वेदयन्ते ॥

અર્થ:-બ્રહ્મને પાતાળે સંતાડયું નથી, પર્વતોની ગુફાઓએ પણ એને ઢાંકયું નથી, એના ઉપર અંધકાર પણ ફરી વળ્યો નથી તથા મહાસાગરોના ઊંડાણોએ પણ આત્માને છુપાવ્યો નથી, પણ અવિશિષ્ટ બુદ્ધિવૃત્તિરૂપ ગુહામાં બ્રહ્મ છુપાયું છે અર્થાત્ આત્મા છુપાયો છે. આ પ્રમાણે સાંખ્ય અને યોગના સિદ્ધાંતોને જાણનાર વિદ્વાનો સમજે છે. ॥ ૨૨ ॥

ચિત્ત દૃશ્ય છે અને તેથી પરિણામી અર્થાત્ પરિણામ પામનારું છે, જ્યારે પુરુષ એટલે આત્મા અપરિણામી છે એટલે કે એનામાં કોઈ પણ જાતનું પરિણામ (ફેરફાર) થતું નથી એ વાત યુક્તિઓ અને પ્રમાણો આપી સિદ્ધ કરી આપી હવે ચિત્તના સંબંધમાં વધારે આ પ્રમાણે કહેવામાં આવે છે :

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २३ ॥

પદાર્થ:-(द्रष्टृदृश्योपरक्तम्) દ્રષ્ટા=આત્માના પ્રતિબિંબથી ઉપરક્ત થયેલું અને દશ્ય અર્થાત્ જડપદાર્થ રૂપે પરિણામ પામતું ચિત્ત (सर्वार्थम्) સર્વ અર્થાત્ જડ અને ચેતનનું કામ કરતું હોવાથી સર્વાર્થ કહેવાય છે, એટલે કે જડ અને ચેતન બંનેનું ઉપકારક છે.

ભાવાર્થ:- 'ચિત્ત' એ પ્રકૃતિના સત્ત્વગુણનું એક પરિણામ છે તે અત્યંત સ્વચ્છ હોવાથી આત્માના પ્રતિબિંબને ધારણ કરે છે આ પ્રતિબિંબને લીધે તે જડ હોવા છતાં તેમાં જાણવાની શક્તિ આવે છે. જેમ લોઢું ઠંડું હોવા છતાં જ્યારે તેમાં અગ્નિ પ્રવેશ પામે છે ત્યારે તે લાલચોળ થાય છે અને તેમાં દાહક શકિત આવે છે તેમ. જેમ સ્વચ્છ હીરા પાસે પીળું કે કાળું ફૂલ પડયું હોય તો તે હીરો એ ફૂલના પ્રતિબિંબને ધારણ કરે છે અને તેથી તે પણ કાળા ફૂલની જેમ કાળો દેખાય છે, તેમ પુરુષના પ્રતિબિંબને ધારણ કરવાથી જ્ઞાતૃત્વ અને ભોક્તૃત્વરૂપે ધર્મ ચિત્તમાં ઊતરે છે તેથી ચિત્ત ચેતન-આત્મા જેવું ચેતન જણાય છે.

વળી ચિત્ત પરિણામરૂપ વૃત્તિ દ્વારા ગોઘટાદિ જડ અર્થોને પણ પોતામાં ધારણ કરતું હોવાથી અર્થાત્ ગવાકાર અને ઘટાદિ આકારવાળું થતું હોવાથી તે તે અર્થરૂપે પણ જણાય છે. આ પ્રમાણે જડ અને ચેતન એમ બે આકારવાળું ચિત્ત બને છે. 'नीलमहं संप्रत्येमि' હું કાળા

અર્થને જાણું છું. આ વાક્ય જડ અર્થ અને ચેતન અર્થને જણાવે છે, 'હું' પદથી ચેતન અને 'કાળા' પદથી જડ અર્થ જણાય છે. તેથી જ્ઞેય અર્થની માફક જ્ઞાતારૂપ અર્થ પણ પ્રત્યક્ષ થતો જણાય છે.

આ પ્રમાણે જોતાં ચિત્ત ગ્રહણ રૂપે તો છે જ. (જેનાથી અર્થનું જ્ઞાન થાય તે ગ્રહણ) પુરુષની છાયા ચિત્ત ઉપર પડવાથી તે ચિત્ત ગ્રહીતારૂપે જણાય છે અને અર્થાકાર ચિત્ત પરિણામ પામતું હોવાથી તે ગ્રાહ્યરૂપે પણ છે. એટલે ચિત્ત ગ્રહણ = કરણ છે, ગ્રહીતા = ગ્રહણ કરનાર જ્ઞાતૃરૂપે છે અને ગ્રાહ્યરૂપ અર્થકારે પણ છે. આ પ્રમાણે ચિત્તમાં અદ્ભુત શકિત છે તેથી તે સર્વરૂપે જણાય છે, જાણે કે તેના સિવાય બીજું કશું જ નથી. આવી ઉપલક દૃષ્ટિને ન સમજતાં બૌદ્ધ લોકોએ ખરી રીતે ચિત્તને તેવું જ માની લીધું જણાય છે તેથી તેઓ જડરૂપ બાહ્ય અર્થ અને પુરુષ = આત્માને માનતા જણાતા નથી. આથી એ લોકોએ ચિત્તને ખરા સ્વરૂપમાં જાણી લેવું જોઈએ અને ચિત્તથી અતિરિક્ત બાહ્ય જડ અર્થ છે અને ચેતનરૂપ આત્મા પણ છે એમ માનવું જોઈએ. આ ઠેકાણે વાચક મહાનુભાવોએ જાણવું જોઇએ કે આત્મા અરૂપી છે, અમૂર્ત છે છતાં પણ એનું સ્વચ્છ સત્વગુણના પરિણામરૂપ ચિત્તમાં પ્રતિબિંબ પડે છે એવું સાંખ્યશાસ્ત્રના નિષ્ણાતો માને છે અને એના સમર્થનમાં તેઓ દાખલો આપે છે કે જેમ આકાશ અરૂપી છે અને અમૂર્ત છે તથા વ્યાપક પણ છે છતાં તેનું પ્રતિબિંબ સ્વચ્છ દર્પણમાં પડે છે, તેમ ચેતન આત્માનું

પ્રતિબિંબ ચિત્તમાં પડે છે અને ચિત્તનું પ્રતિબિંબ ચેતન આત્મામાં પણ પડે છે. ખરી રીતે તો નિરાકાર વસ્તુનું પ્રતિબિંબ હોય જ નહિ.

આ કારણથી અર્થાત્ ચિત્ત પોતાના ધર્મો આત્માને સમર્પિત કરતું હોવાથી આત્મા સુખ અને દુઃખનો ભોક્તા પણ બને છે. સુખ અને દુઃખનો ભોગ એ પણ આત્મા ઉપર એક પ્રકારનું વૃત્તિસારૂપ્ય જ છે. ॥ ૨૩ ॥

ચિત્તથી જુદો આત્મા છે અને તેને જરૂર માનવો જોઈએ. તેના સંબંધમાં એક વધારે હેતુ શાસ્ત્રકાર આ સૂત્રમાં આપે છે :

तदसंङ्ख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥ २४ ॥

પદાર્થ:–(तत्) તે ચિત્ત (असंख्येयवासनाभिः) અસંખ્ય વાસનાઓથી (चित्रम्) ચિત્રવિચિત્ર બનેલું (अपि) હોવા છતાં પણ (परार्थम्) તે પારકાને માટે છે એટલે કે તે ભોગ્ય છે (संहत्यकारित्वात्) બીજાની મદદ લઈને કામ કરતું હોવાથી; અથવા ભેગા મળીને કામ કરતું હોવાથી.

ભાવાર્થ:– જોકે અસંખ્ય વાસનાઓ અર્થાત કર્મની વાસનાઓ અને ક્લેશની વાસનાઓ ચિત્તમાં જ રહે છે, આત્મામાં નહિ, અને તેને લીધે ચિત્ત અસંખ્ય વાસનારૂપ ચિત્રવાળું બની રહેલું છે અને વાસનાઓમાંથી જાગતા જાતિ, આયુષ અને ભોગરૂપ વિપાકો ચિત્તનો જ આશ્રય કરીને રહ્યા છે તેથી તે બધાં ચિત્તમાં જ ભોક્તૃતા બતાવતા જણાય છે, કારણ કે, ભોક્તાને માટે જ ભોગ્ય હોય છે

અને બધું ચિત્તમાં ભેગું થાય છે માટે બધું જ ચિત્તને માટે છે. પરિણામે ચિત્ત જ ભોગ કરનાર છે એમ ઉપલક દૃષ્ટિથી જણાય છે તોપણ ચિત્ત ભોગ્ય જ છે ભોક્તૃ નથી. કારણ કે તે સંહત્યકારી છે, અર્થાત્ બધાની સાથે મળીને જ ચિત્ત કાર્ય કરે છે. જે બીજાની મદદથી કાર્ય કરે તે ભોક્તા ન હોય જેમકે ઘર. ઘર ઇંટ, ચૂનો, પત્થર, લોઢું આદિ અનેકની મદદથી બન્યું છે અને મનુષ્ય, પશુ વગેરેની રક્ષા કરે છે તે ઘર પોતે પોતાનો ભોગ કરતું નથી, પણ એ ઘરનો ભોક્તા તો માનવ આદિ કોઈ ચેતન જ છે. તે જ પ્રમાણે ચિત્ત રજોગુણ, તમોગુણ અને અસંખ્ય વાસનાઓને સાથે લઈ કાર્ય કરે છે માટે તે પણ ભોગ્ય છે, તેનું અસ્તિત્વ જ બીજાને માટે છે. આ બીજો જે હોય તે બીજાથી બનેલો ન હોય, અને એવો નિત્યસિદ્ધ ચેતન આત્મા જ પર તરીકે છે.

'આત્મા' એ અનેક અર્થોની બનાવટ નથી, એ તો અદ્વિતીય અનાદિ અને અપરિણામી છે. ચેતન આત્મા સિવાય મન આદિ બધા જ જડ છે અને જડ ચેતન માટે જ હોય છે એ પ્રસિદ્ધ છે. આથી આત્મા ભોક્તા છે, ચિત્ત નહિ. સુખ, દુઃખ અને જ્ઞાન વગેરેનો ભોક્તા આત્મા જ છે. સાંખ્યશાસ્ત્રમાં સત્વ, રજસ્ અને તમસ્‌ને 'ગુણ' એવું નામ આપ્યું છે તે એમ બતાવે છે કે તે બધા આત્માના 'શેષ' છે. જેમ શય્યા આદિ માણસને માટે છે તેથી શય્યા આદિ માણસના શેષ કહેવાય છે, તેમ

ગુણો પણ આત્માને માટે છે. આથી આત્માને ચિત્તથી અને પ્રકૃતિથી પણ જુદો માનવો જોઈએ. ॥ ૨૪ ॥

ઉપરના કેટલાક સૂત્રોમાં ચિત્તસંબંધી કેટલીક પ્રાસંગિક ચર્ચાની સમાપ્તિ કરી. હવે દસ સૂત્રોમાં કૈવલ્ય અર્થાત્ મોક્ષનું નિરૂપણ કરવા માટે મોક્ષના અધિકારી વિશિષ્ટ પુરુષના સંબંધમાં સમજ આપતા સૂત્રનું પ્રણયન શાસ્ત્રકાર આ પ્રમાણે કરે છે:

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥ २५ ॥

પદાર્થ:- (विशेषदर्शिनः) પ્રકૃતિ અને પુરુષ અથવા ચિત્ત અને આત્મામાં રહેલા ભેદને સાક્ષાત્ કરનાર યોગીને (आत्मभाव भावनाविनिवृत्तिः) આત્માના ભાવની ભાવનાની નિવૃત્તિ થઇ જાય છે.

ભાવાર્થ:-સંસારમાં આસ્તિક અને નાસ્તિક બે જાતના મનુષ્યો હોય છે. નાસ્તિક લોકો આત્માને તથા પરજન્મને માનતા નથી, તેમ વેદ આદિ કોઇ પણ શાસ્ત્રમાં વિશ્વાસ ધરાવતા હોતા નથી. એટલે તેને ચિત્ત 'આત્મા' છે કે નહિ? હું શરીર અને ઇંદ્રિયોથી કોઈ જુદો આત્મા છું કે શરીર ઇંદ્રિયો અને બુદ્ધિ વગેરનો સમુદાયરૂપ છું? હું ચેતન છું કે જડ? ચેતન અને જડ આ બે વસ્તુઓમાં કોઇ ભેદ છે કે નહિ? વગેરેની ભાવના અર્થાત્ વિચાર હોતો નથી; પણ જે આસ્તિક માણસ છે તેને આત્મભાવની ભાવના હોય છે. જે આસ્તિક હોય છે તે જ્યારે મોક્ષ-માર્ગનું શ્રવણ કરે છે ત્યારે તેને હર્ષ થાય છે અને કોઈક

વખત તે હર્ષ-રોમાંચ પણ અનુભવે છે. વર્ષા ઋતુમાં જ્યારે વરસાદ પડે છે અને જ્યાં ઘાસ નહોતું ત્યાં ઘાસ ઊગી નીકળે છે ત્યારે અનુમાન થાય છે કે, આ ઠેકાણે ઘાસનાં બી પડેલાં હોવાં જોઈએ, તેમ મોક્ષશાસ્ત્ર સાંભળવામાં અને વાંચવામાં જેને ખૂબ શ્રદ્ધા હોય છે તે આસ્તિક છે અને હું કોણ છું ? આ શરીરમાં ક્યાંથી આવ્યો ? શા માટે આવ્યો ? અને હવે મરણ પછી ક્યાં જઈશ ? વગેરે ભાવનાઓ થાય છે. યોગના અનુષ્ઠાન કરવામાં પણ આસ્તિક પુરુષ જ અધિકારી છે.

યોગીને જ્યારે યોગસમાધિ કરતાં કરતાં એવો સાક્ષાત્કાર થાય છે કે, ચિત્ત જુદું છે અને હું પણ જુદો છું; હું ચેતન છું અને ચિત્ત જડ છે; મારા સંબંધમાં (આત્માના સંબંધમાં) આવી ચિત્ત ચેતન જેવું થાય છે અને સર્વ વ્યવહાર કરવાને સમર્થ બને છે. આવો જ્યારે વિવેક-સાક્ષાત્કાર થાય છે ત્યારે યોગીને આત્મભાવની ભાવનાઓ કરવાની જરૂર રહેતી નથી. આત્માના સંબંધમાં જે કંઈ શંકાઓ હતી તે બધીથી રહિત બની જાય છે. જેને વિવેકનો સાક્ષાત્કાર થયો હોય છે તે એમ માને છે કે, આ બધું ચિત્તનું જ વિચિત્ર પરિણામ છે. જ્યારે પુરુષમાં અવિદ્યા નથી હોતી ત્યારે તે શુદ્ધ છે અને ચિત્તના ધર્મોથી અલિપ્ત હોય છે. આ સ્થિતિએ પહોંચેલો યોગી કુશલ કહેવાય છે. ॥ ૨૫ ॥

હવે જે યોગીએ પ્રકૃતિ અને પુરુષના અથવા ચિત્ત અને આત્માના ભેદનો સાક્ષાત્કાર કરી લીધો છે અને તે

યોગીની પાસે હજી ચિત્ત તો વિદ્યમાન છે અર્થાત્ જ્યાં સુધી જીવન છે ત્યાંસુધી યોગીને પણ ચિત્ત તો હોય છે, તો પછી વિવેકદર્શી યોગીનું ચિત્ત કેવું હશે તે સંબંધી સમજ શાસ્ત્રકાર આ સૂત્રમાં આપે છે :

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ २६ ॥

પદાર્થ:- (तदा) આત્મભાવની ભાવનાઓની નિવૃત્તિ થયા પછી (चित्तम्) યોગીનું ચિત્ત (विवेकनिम्नम्) વિવેકને લીધે વિક્ષેપશૂન્ય બની વહેતું હોય છે અને (कैवल्य-प्राग्भारम्) કૈવલ્યરૂપ ચરમ સીમા તરફ ધસતું હોય છે.

ભાવાર્થ:- જ્યારે યોગીને પ્રકૃતિ અને પુરુષના ભેદનું જ્ઞાન થઇ જાય છે અને હું કાળો છું, ગોરો છું, કાણો છું, બહેરો છું અને કમ અક્કલવાળો છું વગેરે ધર્મો આત્માના નથી પણ ચિત્તના અને બીજી ઇંદ્રિયોના છે એવું સાક્ષાત્કારમય જ્ઞાન થાય છે ત્યારે યોગીના ચિત્તમાં કોઈ પણ વિક્ષેપ રહેતો નથી અને એનું ચિત્ત વિવેકજ્ઞાન માર્ગમાં વહેતું હોય છે, વિવેકને લીધે ખૂબ નમ્ર બનેલું હોય છે. જેમ વર્ષા ઋતુમાં પાણીના ભારને લીધે વાદળાં નીચે ભૂમિ તરફ વળતાં હોય છે તેમ ચિત્ત વિવેકજ્ઞાનના બોજાને લીધે નિમ્ન (મોક્ષ તરફ વહેતું) બનેલું હોય છે એટલે કે કોઇ પણ સાધારણ માણસને પણ તે પ્રભાવિત કરી શકે છે, એના સંનિધાનમાં આવનાર કોઇ પણ પ્રાણી પવિત્રતાના રંગથી રંગાઇ જાય છે. આવા ચિત્તને વિવેકનિમ્ન ચિત્ત કહેવાય છે. બીજું, એ યોગીનું ચિત્ત કૈવલ્યના ભારવાળું હોય છે,

એટલે કે જીવનની ચરમ સીમા જે મોક્ષ છે તેને પ્રાપ્ત કરવા આગળ વધતું હોય છે. યોગીને જે છેલ્લું શરીર રહ્યું છે, અને તે જે જીવન જીવી રહ્યો છે તેમાં કોઇ પણ જાતની અશુદ્ધિ ન આવે અને વહેલામાં વહેલી તકે મુક્તિ મેળવી લેવાય એ જ એના ચિત્તમાં ભાર હોય છે. મોક્ષ મળ્યો કે બધો જ ભાર ઉતરી જાય છે. આવું વિશુદ્ધ ચિત્ત વિવેકદર્શી યોગીને આત્મભાવની ભાવનાઓ નિવૃત્ત થયા પછી હોય છે. ॥ ૨૬ ॥

હવે શંકા એ થાય છે કે, જો વિવેકદર્શી યોગીનું ચિત્ત વિવેકમાં જ વહેતું હોય તો તે ચિત્ત કદી પણ વ્યુત્થિત ન થવું જોઇએ અર્થાત્ તેમાં વ્યુત્થાન=રાગ-દ્વેષાદિમય સંસાર તરફ વલણ ન થવું જોઇએ, પણ આવા યોગીઓમાંના કોઇક યોગીના ચિત્તનું વલણ સંસાર તરફ થાય છે તેનું કારણ શું? ક્લેશોથી રહિત થયેલા યોગીમાં સંસાર તરફ વલણ શા માટે થાય? કારણ વગર કાર્ય બનતું નથી તો કોઇ પણ વિવેકદર્શી યોગી યોગભ્રષ્ટ ન થવો જોઇએ. છતાં યોગભ્રંશ થાય છે એનું કારણ શું? વિશ્વામિત્ર, પરાશર, ભરતમુનિ આ બધા યોગીઓ જ હતા છતાં તેઓનો યોગભ્રંશ ઇતિહાસના પાનામાં જણાય છે. એનું કારણ શું? આ શંકાનું સમાધાન આ સૂત્રમાં છે:

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २७ ॥

પદાર્થ:– (तच्छिद्रेषु) સંપ્રજ્ઞાત યોગમાં નિષ્ણાત થયેલા યોગીને સમાધિમાં ક્યાંય પણ રહેલા છિદ્રોમાં અર્થાત્

નિર્બલતામાં (प्रत्ययान्तराणि) યોગ વિરોધી જ્ઞાનો (संस्कारेभ्यः) પૂર્વજન્મના જૂના સંસ્કારોમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે.

ભાવાર્થઃ– સંપ્રજ્ઞાતયોગના અભ્યાસી યોગીને સમાધિમાં જો વિરોધી જ્ઞાનો ઉત્પન્ન થતાં હોય તો સમજવું કે, પૂર્વ-જન્મના રૂઢ થયેલા સંસ્કારોમાંથી એ જ્ઞાનો ઉત્પન્ન થાય છે. अस्मि 'હું છું'—આ જ્ઞાન અહંકારને સૂચવે છે. इदं मम 'આ મારું છે'—આ જ્ઞાન આસક્તિને સૂચવે છે. जानामि હું 'મોક્ષને જાણું છું'—આ જ્ઞાન અભિમાનને સૂચવે છે. न जानामि 'હું નથી જાણતો'—આ જ્ઞાન મોહને સૂચવે છે. આવી જાતનાં જ્ઞાનો પૂર્વજન્મના અથવા આ જન્મના ઘસાઈ જતા સંસ્કારમાંથી જન્મે છે. ભાવાર્થ એ છે કે વ્યુત્થાનનાં કારણો ક્ષય પામતાં જૂના સંસ્કારો હોય છે. આ સંસ્કાર જયારે નાશ પામશે ત્યારે યોગીની સમાધિ તદ્દન વિશુદ્ધ જ હશે, વચ્ચે વચ્ચે વ્યુત્થાન નહીં હોય. ॥ ૨૭ ॥

જો ચિત્ત અને પુરુષના વિવેકનું (ભેદનું) જ્ઞાન થયા પછી જો પ્રાચીન વ્યુત્થાન– સંસ્કારોમાંથી ભેદજ્ઞાનો વચ્ચે વચ્ચે થતાં રહેતાં હોય તો તેના હાનનો (નાશનો) ઉપાય શો ? જો કોઈ ઉપાય ન જ હોય તો અસંપ્રજ્ઞાત યોગનું ફળ જે મુક્તિ છે તેની આશા જ છોડી દેવી જોઈએ. આનો ઉત્તર શાસ્ત્રકાર આ સૂત્રમાં આપે છે :

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ २८ ॥

પદાર્થઃ– (एषाम्) પ્રાચીન વ્યુત્થાન સંસ્કારોનું (हान) નાશ (क्लेशवत्) કલેશની પેઠે સમજવું એટલે કે કલેશોનો

નાશ જેમ વિદ્યાથી થાય છે તેમ ઉક્ત સંસ્કારોનો નાશ પણ વિદ્યાથી થાય છે એમ (उक्तम्) કહેલું છે—એમ સમજવું.

ભાવાર્થઃ– સાધનપાદ સૂત્ર ૧૦ અને ૧૧ આ પ્રમાણે છેઃ ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः । (૨–૧૦) ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ (૨–૧૧). આ સૂત્રોમાં સમજાવ્યું છે કે જે સૂક્ષ્મ ક્લેશો છે તેનો નાશ ચિત્તના પ્રતિલોમ પરિણામથી કરવો અને ચિત્તની વૃત્તિઓનો નાશ ધ્યાનથી કરવો; તે જ પ્રમાણે અહીં પણ કહેવામાં આવ્યું છે કે પ્રાચીન સૂક્ષ્મ વ્યુત્થાન સંસ્કારોનો નાશ પણ પ્રતિલોમ પરિણામ અને ધ્યાન દ્વારા કરવો. વિદ્યાથી અવિદ્યા, અસ્મિતા, રાગ, દ્વેષ અને અભિનિવેશરૂપ ક્લેશોનો નાશ થાય છે માટે વિવેકજ્ઞાન-રૂપ વિદ્યાને પ્રાપ્ત કરવી. એ વિદ્યા પરિપક્વ દશાએ પહોંચશે એટલે પ્રાચીન વ્યુત્થાન સંસ્કારો પણ નાશ પામશે. આ કારણથી મુક્તિ મેળવવાને માટે નિરાશ થવાનું કોઈ કારણ રહેતું નથી. જ્ઞાનરૂપ અગ્નિથી જેઓનો બીજભાવ નાશ પામ્યો છે તેવા વ્યુત્થાન સંસ્કારો કોઈ પણ અભેદજ્ઞાન ઉત્પન્ન કરી શકશે નહિ. ભાવ એ છે કે, જૂના વ્યુત્થાન સંસ્કારોને પ્રસંખ્યાન જ્ઞાનરૂપ અગ્નિથી બાળી નાખવા જોઈએ. ફરીથી અભેદ જ્ઞાન ઉત્પન્ન ન થવાનો એ જ ઉપાય છે. ॥ ૨૮ ॥

ઉપર પ્રમાણે પ્રાક્તનવ્યુત્થાન સંસ્કારોનો નિરોધ બતાવીને હવે પ્રસંખ્યાનજ્ઞાનનો પણ નિરોધ શી રીતે કરવો

તે બાબત સૂત્રકાર આ સૂત્રમાં સમજાવે છે. પ્રસંખ્યાનજ્ઞાન પણ વિશુદ્ધ સત્ત્વગુણનું જ પરિણામ છે. ગુણોનું કોઇ પણ પરિણામ આત્મા ઉપર ન હોય ત્યારે આત્માને સાચી મુક્તિ મળી છે એમ કહેવાય. આ રહ્યું તે સૂત્રઃ

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥२९॥

પદાર્થઃ- (प्रसंख्याने)પ્રસંખ્યાન જ્ઞાનમાં (अपि) પણ (अकुसीदस्य) જેને રાગ નથી (सर्वथा) બધી રીતની (विवेकख्यातेः) વિવેકખ્યાતિ હોવાથી (धर्ममेघः) યોગજ ધર્મને વરસાવનારી (समाधिः) સમાધિ થાય છે.

ભાવાર્થઃ- પ્રસંખ્યાન જ્ઞાન એટલે સાંખ્યશાસ્ત્રનાં જે પચ્ચીસ તત્વો ઉપદેશ્યાં છે, તેનો પરમ સાક્ષાત્કાર થવો તે. આ જ્ઞાન મળ્યા પછી યોગીને સર્વભાવોનું અધિષ્ઠાન અને સર્વભાવોનું યથાર્થ-જ્ઞાન મળે છે. જુઓ સૂત્ર–सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ (૩–૪૯.) આવા ઉત્તમ જ્ઞાન પાસેથી યોગી કશું પણ મેળવવા ન માગતો હોય ત્યારે તેને સર્વ રીતે વિવેકખ્યાતિ સ્થિર અને પરિપક્વ થયેલી હોય છે. આ સૂત્રમાં 'અકુસીદ' શબ્દ વાપર્યો છે તેનો શબ્દાર્થ આ પ્રમાણે થાય છે: કુસીદ એટલે 'વ્યાજ.' જે વ્યાજખોર હોય છે તે માણસ લોભીઓ હોય છે. 'અકુસીદ' એટલે જે વ્યાજ ન ખાતો હોય તે માણસ નિર્લોભ=લોભરહિત હોય છે. આ ઉપરથી અકુસીદ શબ્દનો લાક્ષણિક અર્થ લોભ વગરનો અથવા નિષ્કામ યોગી કહેવાય છે. જ્યારે યોગીને કેવળ વિવેકખ્યાતિ

જ કાયમ વહેતી હોય છે ત્યારે તેને ધર્મમેઘ નામની સમાધિ ઉત્પન્ન થાય છે. ધર્મ એટલે યોગજ ધર્મ, કે, જેનું ફળ મુક્તિ જ છે. धर्मं मेहतीति धर्ममेघः જે કેવળ યોગજ ધર્મની વૃષ્ટિ કરે તે સમાધિ 'ધર્મમેઘ' કહેવાય છે. આ ધર્મમેઘ સમાધિ સંપ્રજ્ઞાત યોગની ચરમ સીમા છે. આ ધર્મમેઘ સમાધિ પછી તરત જ 'અસંપ્રજ્ઞાત' યોગ યોગીને પ્રાપ્ત થાય છે. ॥ ૨૯ ॥

'ધર્મમેઘ' સમાધિ યોગીને મળી ગયા પછી શું થાય છે તે આ સૂત્રમાં બતાવે છેઃ

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥

પદાર્થઃ– (ततः) ધર્મમેઘ સમાધિ મળી ગયા પછી (क्लेशकर्मनिवृत्तिः) કલેશ અને કર્મોની નિવૃત્તિ થઈ જાય છે.

ભાવાર્થઃ– ધર્મમેઘ સમાધિ મળ્યા પછી કલેશો, અવિદ્યા, અસ્મિતા, રાગ, દ્વેષ અને અભિનિવેશ, સારા અને ખરાબ કર્મજન્ય સંસ્કારો, જે ધર્મ અને અધર્મ કહેવામાં આવે છે તેની નિવૃત્તિ અર્થાત્ નાશ થઈ જાય છે. જ્યારે બધા જ કલેશો મૂળમાંથી નાશ પામે છે અને સારા અને ખરાબ કર્મના આશયો પણ નાશ પામે છે, ત્યારે વિદ્વાન અને સર્વસિદ્ધિઓમાં નિઃસ્પૃહ બનેલો યોગી 'જીવન-મુક્ત બને છે અને વિદ્યમાન શરીર નિશ્ચેતન થયા પછી અર્થાત્ મરણ પછી એ યોગી 'મુક્ત' બની રહે છે; ફરીથી જન્મ લેતો નથી. ફરીથી જન્મ ન લેવાનું કારણ એ છે–કલેશાદિ કારણો ન રહેવાથી જન્મ શી રીતે થાય?

શું કારણ વગર પણ કાર્ય થાય ખરું? ઉત્તર તો સ્પષ્ટ નકારમાં જ છે. ન્યાયદર્શનમાં ભગવાન્ અક્ષપાદ મહામુનિ ગૌતમે પણ કહ્યું છે કે, वीतरागजन्मादर्शनात् । જેનામાં અવિદ્યા રાગ આદિ ક્લેશો નાશ પામ્યા છે તેનો જન્મ થતો જણાયો નથી; જેનામાં રાગ હોય તે જ જન્મે છે. રાગ એટલે આસક્તિ. કારણના ઉચ્છેદથી કાર્યનો ઉચ્છેદ થાય એ ન્યાયસંગત છે. ભાષ્યકાર વ્યાસ મુનિ પણ લખે છે કે, 'विपर्ययो भवस्य कारणं नहि क्षीणविपर्ययः कश्चित् केनचित् क्वचित् जातो दृश्यते' इतिः। વિપર્યય = અવિદ્યા જન્મનું કારણ છે, જેની અવિદ્યા નાશ પામી છે એવો કોઇ પણ આત્મા કોઈપણ આત્માથી કોઈપણ ઠેકાણે જન્મેલો જોવામાં આવતો નથી. આવું મત પાતંજલ યોગના નિષ્ણાતોનું છે. ॥ ૩૦ ॥

'ધર્મમેઘ' સમાધિ મળ્યા પછી યોગીનું ચિત્ત કેવું બનેલું હોય છે તે આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર બતાવે છે:

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्य आनन्त्यात् ज्ञेयमल्पम् ॥ ३१ ॥

પદાર્થ:– (तदा) તે વખતે (सर्वावरणमलापेतस्य) બધાય આવરણરૂપ મળોથી રહિત થયેલા (ज्ञानस्य) ચિત્તનું (आनन्त्यात्) અનન્તપણું થવાથી (ज्ञेयम्) જાણવા યોગ્ય અર્થો અર્થાત્ પ્રમેયો (अल्पम्) થોડા હોય છે. અર્થાત્ અનન્ત ચિત્તની આગળ જગતના બધાય પદાર્થો થોડા જ જણાય છે.

ભાવાર્થ:– આ સૂત્રમાં જે જ્ઞાન શબ્દ વાપર્યો છે તેનો અર્થ ચિત્ત થાય છે અને એની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે:

ज्ञायते अनेन तद् ज्ञानम् चितम् જેનાથી જાણી શકાય, અર્થનો બોધ કરી શકાય તે 'જ્ઞાન' છે અર્થાત્ ચિત્ત છે. આ ચિત્ત ધર્મમેઘ સમાધિ મળ્યા પછી બધા જ આવરણ રૂપી મળોથી મુકત થઇ જાય છે તેથી ચિત્ત અનન્ત બની જાય છે. ચિત્ત એ સત્વગુણનું પરિણામ છે પણ તેના ઉપર તમોગુણ અને રજોગુણનું દબાવ હોય છે તેથી ચિત્ત સર્વ અર્થોને જાણી શકતું નથી. પણ જ્યારે યોગના અભ્યાસ કરતાં કરતાં યોગી સર્વમેઘ સમાધિને મેળવી લે છે ત્યારે તેનું ચિત્ત શુદ્ધ સત્વ બની રહે છે. સત્વ ગુણ અનંત છે, તેની કોઇ પણ સીમા નથી તેથી જગતના સઘળા પદાર્થો તે સત્વરૂપ પ્રકાશમાં અલ્પ જણાય છે–આકાશમાં આગિયો જેમ કોઇ એક અલ્પ સ્થાનમાં હોય છે તેમ. ચિત્તની આ સ્થિતિ થયા પછી યોગી મુકત થાય છે. જો કોઇ શંકા કરે કે યોગી ભલે મુકત થાય પણ તે ફરીથી જન્મ ધારણ કેમ ન કરે ? આનો ઉત્તર એ છે કે જન્મ ધારણ કરવાનું કોઇ કારણ ન રહેવાથી જન્મ થાય શી રીતે ? આ સંબંધમાં માનવસમાજમાં એક કહેવત થઈ પડી છે કે જો કારણ વગર પણ કાર્ય થાય તો આ પણ થવું જોઈએ–

अन्धो मणिमविध्यत्तमनङ्गुलिरावयत् ।
अग्रीवस्तं प्रत्यमुञ्चत्तमजिह्वोऽभ्यपूजयत् ॥

અર્થઃ– આંધળાઓએ માળાના મણકાઓમાં છેદ પાડ્યા ! આંગળી વગરના માણસે મણકાઓમાં દોરો પરોવી માળા તૈયાર કરી ! આ માળાને જેને ડોક નથી એવાએ

પહેરી ! અને એ માળાને ધારણ કરનારને જેને જીભ નથી એવા માણુસે વખાણ્યો ! શું આંધળો માણુસ મણકામાં છેદ પાડી શકે ? શું આંગળીઓ વગર એમાં દોરો પરોવી શકાય ? ડોક વગરનો કોઈ પણ માળા પહેરી શકે ? અને શું જીભ વગરનો મૂંગો માણુસ વખાણી શકે ? અર્થાત્ નહીં જ.

આ કહેવતને સંસ્કૃત ભાષામાં 'આભાણુક' કહે છે. આ આભાણુક એ જણાવે છે કે જો કારણ વગર કાર્ય થતાં હોય તો આંધળા આદિ મણિવેધાદિ પણ કરી શકે ! જ્યારે એ નથી બની શકતું તો, એ સિદ્ધ થાય છે કે કારણ વગર કાર્ય બનતું નથી. આ કારણથી વીતરાગ યોગીઓનો જન્મ થતો નથી. મુક્ત આત્માઓ પણ આ જ કારણે જન્મ લેતા નથી. આવા નિર્મળ ચિત્તથી પણ મુક્ત આત્માઓ રહિત હોય છે આવું યોગશાસ્ત્રના નિષ્ણાતો માને છે. ॥ ૩૧ ॥

'ધર્મમેઘ' સમાધિમાં જ્ઞાનપ્રસાદ ઉત્તમમાં ઉત્તમ કક્ષાએ પહોંચેલો હોય છે અને એ પરમ વૈરાગ્ય છે, અને વ્યુત્થાન સમાધિ સંસ્કારોનો મૂળમાંથી નાશ કરે છે, ક્લેશ કર્મોનો પણ નાશ કરે છે. આમ છતાં સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ આ ત્રણે ગુણો વિકાર કરવાના સ્વભાવ-વાળા છે તો પછી એ ત્રણ ગુણો મુક્ત પુરુષને દેહ, ઇંદ્રિય અને વાસના વગેરે કેમ ઉત્પન્ન ન કરે ? જો ગુણો પરિણામ ઉત્પન્ન ન કરે તો એ ગુણો જ ન રહે. આ શંકાનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર આપે છે:

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३२ ॥

પદાર્થઃ– (ततः) તે 'ધર્મમેઘ' ના ઉદયથી (गुणानाम्) ગુણો (कृतार्थानाम्) કૃતાર્થ થાય છે અને તેથી તેના (परिणामक्रमसमाप्तिः) પરિણામોના ક્રમોની સમાપ્તિ–પૂર્ણતા થાય છે એટલે કે પરિણામોના ક્રમો પૂરા થઇ જવાથી મુક્ત પુરુષને ઉદ્દેશી તેઓ શરીર અને ઇંદ્રિયો વગેરે ઉત્પન્ન કરતા નથી.

ભાવાર્થઃ– ધર્મમેઘ સમાધિમાં સંપૂર્ણજ્ઞાન અને પરમ વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થવાથી અને ઉત્તમ સ્થિતિએ પહોંચેલા યોગી તરફ ગુણો કૃતાર્થ થઇ જાય છે. ગુણોને પુરુષ માટે બે જ કર્તવ્ય હોય છે, એક ભોગ, અને બીજો મોક્ષ. જ્યારે આ બંને કર્તવ્યો પ્રસ્તુત યોગીને ગુણોએ પૂરાં પાડયાં પછી એ યોગીને ઉદ્દેશીને ગુણોને કશું જ કર્તવ્ય રહેતું નથી.

ત્યારે શું તે વખતે ગુણો પરિણામથી તદ્દન રહિત થઇ રહેશે ? આમ થવું એ તો ગુણોના સ્વભાવથી વિરુદ્ધ છે. સ્વભાવનો નાશ થવાથી સ્વભાવી પણ ન જ રહી શકે. અગ્નિમાં જો દાહકત્વ, પ્રકાશકત્વ વગેરે સ્વભાવ ન રહે તો શું અગ્નિ રહી શકે ? આનો ઉત્તર પણ આગળ આપવામાં આવ્યો છે, છતાં પણ અહીં ફરીથી આપવામાં આવે છે કે મુક્ત પુરુષને ઉદ્દેશી ગુણો શરીર અને ઇંદ્રિયોને ભલે ઉત્પન્ન ન કરે પણ બીજા બદ્ધ પુરુષોને ઉદ્દેશીને શરીર વગેરે ઉત્પન્ન કરતા જ રહેશે આથી ગુણોના સ્વભાવના

નાશ થવાનો પ્રશ્ન જ રહેતો નથી. મુક્ત પુરુષોને ઉદ્દેશીને જ ગુણો કૃતાર્થ થાય છે અને તેને ઉદ્દેશીને જ પરિણામોના ક્રમોની સમાપ્તિ જણાવવામાં આવી છે. અન્ય બદ્ધ પુરુષોની અપેક્ષાએ તો ગુણોમાં પરિણામોના ક્રમો ચાલુ જ રહે છે. ॥૩૨॥

હવે આ સૂત્રમાં 'ક્રમ' શું છે? ક્રમની વ્યાખ્યા શી છે? વગેરે સમજાવે છે:

क्षणप्रतियोगी परिणामाऽपरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३३ ॥

પદાર્થ:– (क्षणप्रतियोगी) ક્ષણ જેનો પ્રતિયોગી એટલે પ્રતિસંબંધી છે તથા, (परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः) પરિણામની પછીની અવસ્થાથી જેનું ગ્રહણ થાય છે તે, (क्रमः) ક્રમ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:– ક્ષણ એટલે સમયનું અલ્પમાં અલ્પ અંતર. આ સૂક્ષ્મ સમય ધર્મીમાં થતા ફેરફાર = (પરિણામ)નો પ્રતિસંબંધી છે. એટલે કે ધર્મીમાં જે ધર્મરૂપ કાર્ય ઉત્પન્ન થાય છે તેની સાથે સંબંધ રાખે છે. કોઇ પરિ-ણામ અથવા કોઈ પણ કાર્યના બે છેડા હોય છે એક પહેલાનો છેડો અને બીજો છેવટનો છેડો. આ બે છેડા જ કાર્યના (પરિણામના) પૂર્વાંત અને અપરાંત કહેવાય છે અને આ છેડા ટૂંકામાં ટૂંકા સમય સિવાય બીજું કશું જ નથી. આ ટૂંકામાં ટૂંકા સમયોની ધારામાં જ ક્રમ રહેલો છે. એ ક્રમ પ્રત્યક્ષજ્ઞાનનો વિષય નથી તેથી તે અનુમાનથી જ જાણી શકાય છે. દાખલા તરીકે–નવું

વસ્ત્ર બજારમાંથી ખરીદી ઘરમાં લાવી રાખી મૂકયું, ત્રણ ચાર પાંચ સાત વરસે તે જૂનું થઈ જાય છે. આ વસ્ત્રનું જૂનાપણું કોઈ અકસ્માત્ નથી તથા કોઈ એક જ વખતનો ફેરફાર નથી. એ તો વસ્ત્રમાં ક્ષણે ક્ષણે થતા ફેરફારોને લીધે છે અને એ ફેરફાર જ્યારે થતા હોય છે ત્યારે જાણી શકાતા નથી પણ કાર્યની છેવટની અવસ્થાથી તેનું અનુમાન કરી શકાય છે. આથી સ્પષ્ટ સમજાય છે કે ગોઘટાદિ કાર્ય ઉપર ક્ષણોની જે ધારા ચાલી રહી છે અને તેનું જે પૌર્વાપર્ય છે તે જ ક્રમ છે.

આ ક્રમ નિત્ય અર્થમાં પણ છે જ. સાંખ્યશાસ્ત્ર તથા મહર્ષિ પતંજલિના મતમાં બે જ અર્થો નિત્ય છે. એક પ્રકૃતિ અને બીજો પુરુષ. પ્રકૃતિ એટલે સત્ત્વ, રજસ્ અને તમસ્ એ ત્રણ ગુણો. ગુણોમાં પરિણામ થયા કરે છે માટે તેમાં ક્રમ છે. પરિણામ વ્યાપ્ય છે અને ક્રમ તેનો વ્યાપક છે એટલે જ્યાં જ્યાં પરિણામ છે ત્યાં ત્યાં ક્રમ છે. પુરુષમાં પરિણામ નથી એટલે ત્યાં ક્રમ પણ નથી. નિત્યતા બે જાતની હોય છે: (૧) કૂટસ્થ નિત્યતા અને (૨) પરિણામિની નિત્યતા. પુરુષ ઉપર કૂટસ્થ નિત્યતા છે અને ગુણો ઉપર પરિણામિની નિત્યતા છે.

વસ્તુમાં પરિણામો ભલે થતા રહે પણ જો તેનું તત્ત્વ નાશ ન પામે તો તે તત્ત્વ નિત્ય ગણવામાં આવે છે. ગુણોમાં પરિણામ એક પછી એક થયા કરે છે પણ તેનું તત્ત્વ જે ત્રણ ગુણો છે તે તો કાયમ રહે છે. માટે ગુણો અથવા

પ્રકૃતિ નિત્ય માનવામાં આવે છે. જેમ સોનામાં એક આકૃતિ થાય, તે નાશ પામે અને તેમાં બીજી આકૃતિ થાય; એમ વારા ફરતી આકૃતિઓ = અલંકારો થયા કરે અને નાશ પામ્યા કરે છતાં 'સોનુ" તો સ્થિર માનવામાં આવે છે, તેમ પ્રકૃતિ નિત્ય છે. આ માન્યતા સાંખ્યાચાર્યોની છે.

પરિણામ પામ્યા વગર સદૈવ એક જ રૂપે રહેવું તે કૂટસ્થ નિત્યતા છે, અને તે આત્મા ઉપર છે. આત્મામાં કશો જ ફેરફાર થતો નથી. બદ્ધમાનવ પ્રાણી આદિમાં જે પરિણામ જણાય છે તે તો તે ચિત્તનો સંબંધી હોવાને લીધે છે એટલે કે તે પરિણામ પુરુષમાં 'અધ્યસ્ત' છે. બીજાનું પરિણામ આત્મા ઉપર જણાય છે તેથી તે પરિણામ અધ્યસ્ત છે. ગુણોમાં પરિણામોની ધારાનો કોઇ છેડો જ નથી, એ ધારા નિઃસીમ છે. અનુલોમ, પ્રતિલોમ અને સદૃશ અને વિસદૃશ પરિણામો ગુણોમાં થયા જ કરે છે. આ જ કારણથી સૃષ્ટિ પ્રવાહરૂપે અનાદિ અને અનન્ત છે. વેદમાં પણ જણાવ્યું છે કે 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्' સૂર્ય અને ચન્દ્ર જેમ પહેલા બન્યા હતા તેમ આ સૃષ્ટિમાં બન્યા છે.

આ ઠેકાણે કોઇ શંકા કરે છે કે પુરુષમાં પણ 'अस्ति' ક્રિયા છે, અસ્તિ એટલે હોવું. એટલે પુરુષમાં પણ ક્રમ માનવો જોઇએ. ક્રિયા છે એટલે પરિણામ પણ તેમાં માનવું જ રહ્યું.

આનો ઉત્તર ભાષ્યકાર વ્યાસમુનિ એ આપે છે કે अस्ति=હોવું એ કોઇ ક્રિયા નથી. વ્યાકરણમાં ભલે તેને ક્રિયા કહી હોય પણ તે ગૌણ છે, માટે જો પુરુષમાં કોઇને ક્રમ જણાતો હોય તો તે 'કલ્પિત' ક્રમ છે એમ સમજવું.

આ સંસાર મુકત આત્માને નથી અને બદ્ધ આત્માને છે, આ સ્થિતિ કાયમ રહી છે અને રહેવાની છે. અર્થાત ગુણોનાં પરિણામોનો ક્રમ કદી પણ આથમતો નથી. જો કોઈ પૂછે કે, સંસાર નિત્ય છે કે અનિત્ય ? તો ઉપર કહેલી વાતને લક્ષમાં લઈ ઉત્તર આપવો. વિચાર કર્યા વગર સંસાર નિત્ય છે એમ પણ ન કહેવું અને અનિત્ય છે એમ પણ ન કહેવું. આ બધું સાપેક્ષ છે માટે અપેક્ષાને જાણ્યા પછી ઉત્તર આપવો. ॥ ૩૩ ॥

મુક્ત પુરુષ પ્રત્યે ગુણોના અધિકારોનો ક્રમ પૂર્ણ થવાથી તે બંધ પડે છે. એ સમજાવ્યા પછી હવે મુક્તિનું સ્વરૂપ કેવું છે તે આ સૂત્રમાં શાસ્ત્રકાર સમજાવે છેઃ

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं
स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ३४ ॥

પદાર્થઃ- (पुरुषार्थशून्यानाम्) પુરુષાર્થ અર્થાત્ ભોગ અને અપવર્ગ કરાવી અધિકારથી રહિત થયેલા (गुणानाम्) ગુણોનો (प्रतिप्रसवः) જે પ્રતિલોમ પરિણામ થાય છે તે જ (कैवल्यम्) કૈવલ્ય છે એટલે કે મુક્તિ છે. (वा) અથવા (चितिशक्तिः) ચેતનસ્વરૂપ આત્માની (स्वरूपप्रतिष्ठा) જે 'સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠા' છે તે જ મુકિત છે.

ભાવાર્થઃ- પુરુષાર્થ ઉત્પન્ન કરી ગુણો મુક્ત આત્મા તરફ કૃતાર્થ થયા છે. હવે તે પુરુષાર્થશૂન્ય હોવાથી કાર્યકારણાત્મક ગુણોનું પોતપોતાના કારણમાં વિલીનીકરણ થાય છે જેમકે, વ્યુત્થાન, સમાધિ અને નિરોધના સંસ્કારોનો મનમાં લય થાય છે, કારણ કે સંસ્કારોનું કારણ મન છે. મન અસ્મિતા અર્થાત્ અહંકાર તત્વમાં લય પામે છે. કારણ કે મનનું ઉપાદાનકારણ–અસ્મિતા (અહંકાર) છે; અસ્મિતા લિંગમાં અર્થાત્ મહતતત્વમાં લય પામે છે કારણ કે અસ્મિતાનું ઉપાદાનકારણ મહત્તત્ત્વ છે. મહતતત્ત્વ અલિંગસ્વરૂપ પ્રધાનમાં અર્થાત્ પ્રકૃતિમાં લય પામે છે. આ પ્રકારનો જે પ્રતિસર્ગ છે અર્થાત્ કાર્યનું કારણમાં મળી જવું તે કૈવલ્ય કહેવાય છે. આ કૈવલ્ય કોઈ એક સિદ્ધ યોગી પુરુષ પ્રત્યે પ્રધાનનું હોય છે અર્થાત્ અમુક મુક્ત આત્મા માટે પ્રધાન (પ્રકૃતિ) કાર્ય કરતું બંધ પડયું છે.

આ રીતે તો જડ પ્રધાન અર્થાત્ પ્રકૃતિનો મોક્ષ થયો એમ કહેવાય. જડ અર્થને બંધન અને મુકિત માનવાં એ બુદ્ધિમાં ઊતરે એવી વાત નથી, એ અરુચિને કારણે સૂત્રકાર આગળ ઉપદેશે છે કે, ચિતિશકિતની જે સ્વરૂપ-પ્રતિષ્ઠા છે, તે મુકિત છે. આ મુક્તિ બદ્ધ પુરુષ કે જે ચેતન છે તેની થઈ. માટે સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠાને મુક્તિ માનવી એ જ યોગ્ય છે. જ્યારે મુકત ચેતન આત્માની સ્વરૂપ-પ્રતિષ્ઠા થાય છે ત્યારે આત્મા ઉપર કોઈ પણ પ્રકારનું વૃત્તિસારૂપ્ય રહેતું નથી.

આ ઠેકાણે જો કોઇ શંકા કરે કે મહાપ્રલય વખતે પણ ચેતન આત્મા સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠાવાળો જ હોય છે તો તે વખતે પુરુષમાત્રને મુક્ત ગણવા કે નહિ ?

આનો ઉત્તર એ છે કે, મહાપ્રલય વખતે પુરુષો તરફ ગુણો સાધિકાર હોય છે એટલે એ પ્રલય પછી પાછા બદ્ધ પુરુષોને ઉદ્દેશી કામ કરવા લાગી જાય છે. આ કારણથી મહાપ્રલય વખતમાં જણાતી પુરુષની સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠા મુક્તિ નથી. જો કોઇ એમ માને કે મહાપ્રલય પછી સૃષ્ટિ થતી જ નથી તો એવો મહાપ્રલય હોવામાં કોઇ પણ પ્રમાણ નથી. સંસાર પ્રવાહરૂપે અનાદિ અને અનંત છે. આથી મુક્તિ બંધનમુક્ત કોઈ એક સિદ્ધ યોગીને હોઇ શકે છે, તે સૂત્રમાં સારી રીતે સમજાવ્યું છે.

આ મુક્તિમાં કોઇ પણ જાતનું દુઃખ રહેતું નથી કારણ કે દુઃખ એ તો રજોગુણનું પરિણામ છે, જ્યારે મુક્ત પુરુષ પ્રત્યે ગુણો જ કાર્ય કરવાને અસમર્થ બને છે તો રજોગુણના પરિણામસ્વરૂપ દુઃખ મુક્ત પુરુષ પ્રત્યે શી રીતે હોઇ શકે ?

મહર્ષિ કપિલ ત્રિવિધ દુઃખની અત્યંત નિવૃત્તિને મુક્તિ કહે છે અને મહામુનિ ગૌતમ દુઃખનો અત્યંત વિમોક્ષ હોવો એ જ અપવર્ગ છે. આ બંને આચાર્યો મહર્ષિ પતંજલિ સાથે મળતા થાય છે. અદ્યતન મહર્ષિ દયાનંદ સરસ્વતીજી પણ દુઃખના અભાવને મુક્તિ માને છે. વૈદિક આચાર્યો, ઋષિઓ અને મહર્ષિઓનો મુક્તિના સંબંધમાં

કોઈ વિવાદ નથી. આ સૂત્રમાં અંતે જે 'इति' શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે તે આ શાસ્ત્રની સમાપ્તિને સૂચવે છે. ॥૩૪॥

इति पातञ्जलयोगदर्शने गुर्जरभाषाभाष्ये चतुर्थः कैवल्यपादः ।

ऋषिचन्द्रनभोनेत्रमिते (२०१७) विक्रमवत्सरे।
भाद्रपदस्य मासस्य पूर्वपक्षे [1]मरुत्तिथौ (१२) ॥

गुरोर्वारे च नम्रेण मयाशङ्करशर्मणा ।
कृतं पातञ्जले योगदर्शने शुभदर्शने ॥

क्लेशकर्माद्यसम्बद्धविशिष्टपुरुषादरात् ।
गुर्जरवाङ्मयं भाष्यमगात्पूर्तिं सुदुर्लभाम् ॥

૧. બારશ તિથિનો દેવ (દેવતા) મરુત (વાયુ) છે, એવું સ્વામી શ્રી દયાનંદ સરસ્વતીજીએ સંસ્કારવિધિના "નામકરણ સંસ્કાર'માં લખ્યું છે. એને આધારે મરુતતિથિનો અર્થ બારશ થાય છે.

સમાપ્તિનો દિવસ–

સંવત્ ૨૦૧૭ ભાદ્રપદ માસ, શુકલપક્ષ બારસ ને ગુરુવાર.
(તા. ૨૧-૯-૧૯૬૧)

